२८०४

परिषद् परीक्षाबोर्डमें स्वीकृत धार्मिक ग्रन्थ—

विद्यार्थी

जैन धर्म शिक्षा।

—स्व० पूज्य ब्र० शीतलप्रसादजी।

विद्यार्थी जैनधर्म शिक्षा।

लेखक.-

स्व० ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी।

समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, तत्त्वभावना, समयसार कलशा, स्वयंभूस्तोत्र, समाधिशतक, इष्टोपदेश, तारणतरण श्रावकाचार आदिके टीकाकार तथा गृहस्थधर्म, जैनधर्मप्रकाश मोक्षमार्ग प्रकाश द्वि०, प्राचीन जैन स्मारक, बृहद् जैन शब्दकोष, पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठापाठ, जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान, सहजसुख साधन आदि आदि ग्रन्थोके लेखक।

प्रकाशकः-

मूलचन्द किसनदास कापडिया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय

कापडियाभवन,

सूरत।

★

द्वितीयावृत्ति] वीर सं० २४६८ [प्रति ५००

मूल्य—रु० १-०-०

जैनविजय
प्रिन्टिंग
प्रेस
सूरतमें
मूलचन्द
किसनदास
कापड़ियाने
मुद्रित
किया

निवेदन

कॉलेज, स्कूल और बोर्डिंगोंके जैन विद्यार्थियोंमे धार्मिक ज्ञानकी अत्यन्त आवश्यक्ता है। धार्मिक शिक्षाकी यह कमी श्री० स्व० ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीको बहुत खटक रही थी। अत. आपने सात वर्ष पूर्व बड़े परिश्रमपूर्वक इस पुस्तककी रचना प्रश्नोत्तर रूपमे इटारसीके चातुर्मासमे ठहरकर की थी तथा आपकी ही प्रेरणासे श्री० दानवीर श्रीमत सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी भेलसाने इसे प्रकाशित कराकर 'जैनमित्र' के ३५ वे वर्ष (वीर स० २४६१) के ग्राहकोंको भेटमे बटवाया था, जिससे इसका अच्छा प्रचार हो गया। उस समय इसकी कुछ प्रतियां हमने विक्रयार्थ भी निकाली थी जो अल्प समयमें ही बिक गईं, क्योंकि यह पुस्तक भारत दि० जैन परिषद परीक्षाबोर्डने भी अपने अभ्यास-क्रममे प्रविष्ट की है। अतः इस पुस्तककी यह दूसरी आवृत्ति वर्तमान महायुद्धके कारण कागजकी चौगुनी महंगी होनेपर भी प्रकट की जाती है और मूल्य भी १) ही रखा है।

स्वर्गीय माननीय विद्वान ब्रह्मचारीजीने इस पुस्तककी रचना करके विद्यार्थी समाजका बडा भारी और स्थायी उपकार किया है जो कभी भी भुलाया नहीं जा सकेगा।

इस पुस्तककी विषयसूचीसे ही ज्ञात हो सकता है कि श्री०

ब्रह्मचारीजीने इसमें 'गागरमें सागर' भर दिया है। अत. यह विद्यार्थियोंके लिये तो बहुत उपयोगी है ही, लेकिन सर्वसाधारणके लिये भी यह स्वाध्यायकी एक चीज बन गई है। हरएक धार्मिक संस्थाके पठनक्रममें भी यह पुस्तक प्रवेश करनेयोग्य है।

प्रथमावृत्तिमें जब इस पुस्तकके १३ अध्याय थे तब इस आवृत्तिमें (४था अध्याय व कुछ पृष्ठ परिषद परीक्षाबोर्डके पाठ्य-क्रममें न होनेसे कम कर दिये है। अत) बारह अध्यायमें पुस्तक पूर्ण हुई है। जिनने जैनधर्मका समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं किया है वह आबाल युवक वृद्ध सभी ही विद्यार्थी हैं। अत यह पुस्तक सभीको पढने व स्वाध्याय करनेयोग्य है।

आशा है जैनधर्मका गूढ ज्ञान करानेवाली तथा साथमें अन्य धर्मोंके सिद्धांतोंका भी सुलभतया परिचय करानेवाली इस पुस्तककी इस दूसरी आवृत्तिका भी शीघ्र ही प्रचार हो जावेगा।

निवेदक—

सूरत
वीर सं० २४६८
ता० २१-८-४२

मूलचन्द किसनदास कापडिया।
—प्रकाशक।

भूमिका।

बहुधा हाईस्कूल और कालेजके छात्रोंको धार्मिक ज्ञान नहीं होता है इसलिये वे नास्तिक भावके बन जाते हैं। यही दशा जैन छात्रोंकी भी है, अतएव जैन छात्रोंको सुगमतासे जैनधर्मकी रुचि करानेके लिये प्रश्नोत्तर रूपमें यह पुस्तक लिखी गई है। इसको ध्यानसे पढनेसे हरएक बुद्धिमान छात्रको जैनधर्मका ज्ञान होजायगा। तथा अन्य धर्मोंसे जैन धर्म किन बातोंमें मिलता है यह भी जान लिया जायगा। स्कूल, कालेज और बोर्डिंगोंमें इसके प्रचारकी जरूरत है।

जो जैन धर्मका विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहें वे नीचे लिखी हुई पुस्तकें भी पढें-जो **दि० जैन पुस्तकालय-सूरतसे मिलेंगी।**

द्रव्यसंग्रह सार्थ	।−)	समयसार टीका (गुजराती)...	३)
तत्वार्थसूत्र सचित्र सार्थ	१)	समयसार कलश टीका .	३)
अर्थप्रकाशिका (तत्वार्थ टीका)	४)	नियमसार टीका ..	२)
सर्वार्थसिद्धि टीका (संस्कृत)	२)	तत्वभावना टीका	१॥।)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय टीका ।॥),	१।)	गोम्मटसार टीका	५)
स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ...	१)	राजवार्तिक टीका .	३०)
जैनधर्म प्रकाश . ..	॥)	परमात्मप्रकाश टीका	४॥।
इष्टोपदेश टीका ..	१।)	ज्ञानार्णव टीका .	४)
समाधिशतक टीका ..	१।)	पंचाध्यायी टीका ..	६)
पंचास्तिकाय टीका	२।=)	What is Jainism	2-0
प्रवचनसार टीका	५)	The Practical Dharma	1-8
बृहद्द्रव्य संग्रह सार्थ	२।)	Sanyas Dharma	1-8
अष्टपाहुड टीका	१॥=)	House Holder's Dharma	0 12
समयसार टीका (अप्राप्य)...	२॥)	Faith, Knowledge & Condect	1 8

Rishabhadeo . .	4-8
Jainism, Christianity & Science	3-6
Jain Penance	2-0
Confluence of opposites	2 8
Key of Knowledge	10 0
Dravyasangraha	5-8
Tattwartha Sutra	4 8
Panchastikaya	4 8
Purusharth Sidhyupaya	4 8
Gomatsara Jivakand	5-8
" Karmakand	4-8
Atmanushasana	2-8
Samayasara	3 0
Niyamsara ..	3-0
Pure Thoughts	0-1

इटारसी,
३१-१०-१९३३ }

जैन धर्मप्रेमी—ब्र० सीतल ।

विषय-सूची।

आठवां अध्याय ।

नववां अध्याय ।

दशवां अध्याय ।

ग्यारहवां अध्याय ।

बारहवां अध्याय ।

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

विद्यार्थी जैनधर्म शिक्षा।

प्रथम अध्याय।

मैं कौन हूं ?

प्रश्न—आपका धर्म क्या है ?

उत्तर—मै जैनधर्मी कहलाता हू। मेरे घरमे सब जैनधर्म पालते है।

प्रश्न—क्या आप कुछ जैनधर्मको जानते हो ?

उत्तर—मै तो कुछ भी नहीं जानता हू, क्योंकि मेरी माताने मुझे शिशुपनमे कुछ बताया नहीं। पिताजीने सर्कारी स्कूलमे भेज दिया, पिताजीने कभी शिक्षा नहीं दी, न दिलानेकी चेष्टा की।

प्रश्न—क्या आपकी इच्छा है कि आप जैनधर्मको जाने ?

उत्तर—मैं तो कालेजमे पढता हू। मेरे मनमे तो मुझे धर्मकी ही जरूरत नहीं मालूम पडती हे। मुझे किसी भी धर्मके जाननेकी जरूरत नहीं दीखती तब मै जैनधर्मको जानकर क्या करूगा ?

प्रश्न—क्या आप बता सकेंगे कि आप कौन है ?

उत्तर—मैं मनुष्य हू, विद्यार्थी हू और मै अपनेको जैन भी कह देता हू।

प्रश्न—आप यह बतावे कि मुर्दे और जिन्दे मानवमें क्या फर्क है, जब दोनोंका शरीर एकसा दीखता है। मुर्दा समझता क्यों नहीं ?

उत्तर—मै समझता हू कोई कल बिगड जाती है जिससे मानव मुर्दा होजाता है तब वह नहीं समझ सकता।

प्रश्न—आपके हाथ, पग, मुख, बाल, नख, मांस, चर्बी, रुधिर आदि किस वस्तुके बने हुए हैं।

उत्तर—जो कुछ हम खाते पीते हवा लेते उससे बने हैं।

प्रश्न—आप जो हवा लेते, पानी पीते, अन्नादि खाते, दूध पीते ये चीजे किस वस्तुसे बनी हैं ?

उत्तर—ये सब चीजे जरूर किन्हीं परमाणुओं (Atoms) से बनी हैं।

प्रश्न—ये परमाणु जड है या चेतन ? क्या उनमे जाननेकी शक्ति है ?

उत्तर—मै समझता हू परमाणु जड है। हमारे सामने बहुतसी जड वस्तुऐं दीखती है। जसे वालू, ककड, पत्थर, काठ, टीन, सोना, चांदी, लोहा ये सब जड है, ये कुछ समझ नहीं सकते। ये सब टुकडे करने पर टूट टूटकर बहुत छोटे हो सकते है।

प्रश्न—आप उनके टुकडे करते चले जावे, आखरी टुकडेको क्या कहेंगे ?

उत्तर—बस उसीको परमाणु कहते है।

प्रश्न—तब यह शरीर व उसके आंख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि जड नहीं है क्या ?

उत्तर—ये सभी जड है।

प्रश्न—तब बताइये क्या जड त्वचा छूकर जानती है, क्या जड जबान चाखकर जानती है, क्या जड नाक सुघकर जानती है, क्या जड आंख देखकर जानती है, क्या जड कान सुनकर जानता है ?

उत्तर—जडसे बनी वस्तुए तो जान नहीं सक्ती है परन्तु कुछ रुधिर व मज्जकी ताकतसे जाना जाता होगा, आप बताइये अब क्या समझते हैं ?

शिक्षक—भाई, जब आंख, नाक, कान आदि जड हैं व भोज्य पदार्थ जड है तब इनसे बना हुआ रुधिर व मज्ज भी जड क्यों नहीं होगा ? जडसे जड ही बन सक्ता है, जैसे गेहूंसे गेहूंकी रोटी, लोहेसे लोहेकी कडी, सोनेसे सोनेके गहने, रुईसे रुईके कपडे, रेशमसे रेशमके कपडे बनते है। जब जड परमाणुओंमे जाननेकी ताकत नहीं है तब उनके बने हुए जितने भी कार्य होंगे उनमें जाननेकी ताकत नहीं हो सकती।

विद्वानोंने कहा है जैसा कि मूल कारण होता है वैसा उसका बना कार्य होता है।* जो गुण मूलमें होते हैं वे ही उसके बने कार्यमें झलकते हैं। देखो जड मिट्टीमे स्पर्श है, स्वाद है, गन्ध है, वर्ण है, तब उसके

---

*—उपादानकारणसदृशं कार्यं भवति।

बने हुए बर्तनोंमे भी, मटकैनोंमे भी, प्यालोंमे भी ठंडा व चिकना स्पर्श है, रस है, गन्ध है व वर्ण है।

इसलिये जब जड परमाणुओंमे व उनसे बने हुए पदार्थोंमे जडपना दीखता है-उनमे जानपना नहीं दिखलाई पडता है, तब उनसे बने शरीरमें व शरीरके किसी अंगमे जानपना कैसे होसकता है।

इसलिये तुमको जानना चाहिये कि जो कोई जानेनेवाला है वह जडसे भिन्न कोई और है। उसीको हम लोग आत्मा, जीव, चेतन, इत्यादि नामोंसे पुकारते है। जानना जब जडका गुण नहीं है तब किसीका तो होना ही चाहिये, क्योंकि गुण किसी चीजमे ही रहते हैं, गुण कभी किसी चीजसे भिन्न नहीं मिल सकते है। जसे मीठापना शक्करमे, ईखमें, अंगूरमे मिलेगा। खट्टापना नीबू, खटाई, इमलीमे मिलेगा। कडुआपन नीममे मिलेगा। सज्जनपना सज्जनमे, दुर्जनपना दुर्जनमे, धर्म धर्मात्मामें, अधर्म अधर्मीमे, सत्य सत्यवादीमे, क्षमा क्षमावानमे, क्रोध क्रोधी मानवमें पाया जायगा। इसीतरह ज्ञान गुण या जानपना (consciousness) किसीमे मिलना चाहिये।

जिस द्रव्यमे यह गुण सदा रहता है उसे ही आत्मा कहते हैं। यह जड शरीर उसके रहनेका घर है। जबतक वह शरीरमे रहता है तबतक शरीर द्वारा सब जाननेका काम हुआ करता है। जब वह शरीरसे निकल जाता है तब शरीर जड कुछ भी जान नहीं सकता। इसलिये उसको मुर्दा कहते हैं। इसलिये आपको यही विश्वास रखना चाहिये कि मै आत्मा हू, शरीर नहीं हू।

प्रश्न—प्रिय मित्र ! क्या विज्ञानवेत्ता (scientists) आत्माको मानते हैं ?

उत्तर—यद्यपि साफ २ नहीं मानते है तौ भी बहुतसे विज्ञानवेत्ताओंकी यह सम्मति होती जाती है कि मात्र जडमें ही ज्ञान, इच्छा, स्मरण आदि नहीं हो सकता है, इसलिये कोई दूसरा पदार्थ और है।

लन्दनमें सर ओलीवर लाज विज्ञानके बहुत बडे विद्वान हैं। उनके वाक्य हैं "हम मरनेके बाद मिट नहीं जाते हैं, हम बने रहते हैं, हम

स्वय अपने मूल स्वभावसे कभी नष्ट नहीं होते हैं, हम इस जड मांसमई शरीरके जीवनसे आगे भी अविनाशी जीवनमे बने रहते है।"

सर ओलाइवर लाज अपनी पुस्तक रेमडमे नीचे प्रमाण कहते है—

शरीर और शक्तिपर स्वाधीनता रखनेवाले असरका बद हो जाना ही मृत्यु है। मरनेके बाद शारीरिक शक्तियां बिखर जाती है। मृत्युसे मतलब जीवनका अन्त नहीं है, किंतु शरीरसे किसी जीवन शक्तिका भिन्न होजाना है। इसीको हम यह कह सकते है कि शरीरसे आत्मा भिन्न होगया।

प्रोफेसर हडसन साहब अपनी पुस्तकमे लिखते हैं—"जाननेवाला मन एक भिन्न पदार्थ है जिसमे स्वाधीन शक्तिय व क्रियाए होती है उसका मानसिक प्रबन्ध अपना ही है, वह शरीरसे स्वतत्र अपनी मौजूदगी रखता है। दूसरे शब्दामे यही आत्मा है।" *

---

* Sir Oliver Lodge says ' I am convinced that we ourselves are not extinguished when we die Personality continues we ourselves in our own real essence do not decay or wear out, we continue in a permanent existence beyond the life of the material, fleshly organism (appeared in Bombay Chronicle 29-11-1926)

Raymond by Sir Oliver Lodge–

Death is the cessation of that controlling influence over matter and energy, so that thereafter the uncontrolled activity of physical and chemical forces supervence Death is not the absence of life merely, the term signifies its departure or separation, the severance of the abstract principle from the concrete residue The term only truly applies to that which has been living

Death, therefore, may be called a dissociation, a disolution, a separation of a controlling entity from a physico-chemical organism, it can only be spoken of general and vague terms as a separation of soul and body if the term 'soul' is reduced to its lowest denomination when used in connection with animals and plants.

तीसरे पश्चिमीय विद्वान प्रोफेसर विलियम मैकडागल साहब अपनी पुस्तकमे लिखते है "हमको अवश्य मानना पडता है कि अन्तःकरणके कार्य किसी एक पदार्थके कुछ कार्य है। वह पदार्थ मगजका कोई भाग नहीं है न वह कोई जड पदार्थ है किंतु वह सब तरहके जड पदार्थोंसे जुदा है। हम उसे एक अमूर्तिक पदार्थ या जीव मान सकते हैं।*

इसलिये जडसे भिन्न कोई जाननेवाला पदार्थ आत्मा है ऐसा आपको मानना पडेगा। यह भी आपको समझना चाहिये कि यह आत्मा एक अखण्ड पदार्थ हमारे शरीरमे व्यापक है, फैला है, क्योंकि हमे दुःख या सुखकी वेदना सर्वांग होती है।

यदि पगमे चोट लगे तब सर्व शरीरभरमे दुःख मालूम पडता है। जब हम किसी मित्रको देखकर खुशी होती है तब सुखका भान सर्वत्र होता है। जब कि शरीरमें जहां बिगाड होता है वहीं होता है। यदि पगमे फोडा हुआ है तब वह पगमे ही बिगाड है, मस्तकमे नहीं है परन्तु दुःखकी वेदना हमे सब तरफ होती है। इससे यह बात समझनेकी है कि आत्मा तो एक अखण्डे सादा पदार्थ है। (is one whole unbroken simple substance) जब कि शरीर मकानके समान हड्डी, मांस आदि अंग उपांगोंके जुडनेसे बना है।

---

* Professor I J Hudson in his book A "scientific demonstration of future life' says "The subjective mind is a distinct entity, possessing independent powers and functions having a mental organisation of its own, and being capable of sustaining an existence independent of the body in other words, it is the Soul

Professor William Macdongall in his book "Physiological Psychology" say "we are compelled to admit that the so-called Psyachicul elements are partial affections of a single substance or being and since this is not any part of the brain, is not a material substance, but differs from all material substiances We must regard it as an immaterial substance or being"

शिष्य—गुरुजी, मुझे आपसे आज यह जानकर बडा आनन्द हुआ कि मै आत्मा हू, और शरीर मेरे रहनेका घर है। आत्मा चेतन है, शरीर अचेतन जड है। क्या शरीरके छूटने वक्त आत्माका नाश नहीं होता है?

शिक्षक—प्रिय भाई! आप तो बडे विद्वान है। आपको तो मालूम है कि इस लोकमे न कुछ नया आता है न कुछ नाश ही होता है। मात्र अवस्थाएँ ही बदला करती है। जो कोई वस्तु बनती है वह किसी पहली वस्तुकी दूसरी बदली हुई शकल है। जो कोई वस्तु बिगडती है वह कोई दूसरी शकलमे बदल जाती है। कपडा रुईकी बदली हुई शकल है। कपडेको जलानेपर कपडेकी राख कपडेकी बदली हुई शकल है। पानीकी बदली हुई शकल भाफ है या मेघ है। मेघोकी बदली हुई शकल वर्षाका पानी या ओले है।

कोई वस्तु नहींसे नहीं बनती है, कोई वस्तु सर्वथा नही बिगडती है। * अवस्थाए ही बनती व बिगडती है। जिनमे अवस्थाए होती है वे न बनते न बिगडते है, जैसे परमाणु जड सदा बने रहते है, उनसे अनेक वस्तुएँ बनती है तथा बिगडती है। वैसे आत्मा पदार्थ भी सदा बना रहता है। न कभी जन्मता है और न कभी मरता है। शरीरके भीतरसे जब आत्मा निकलता है तुर्त ही कहीं न कहीं किसी शरीरमे चला जाता है। आपका आत्मा किसी शरीरको छोडकर ही आपकी माताके गर्भमें आया था। आत्मा अविनाशी है इससे इसका कभी नाश नहीं होगा।

शिष्य—तो क्या परलोक है, पुनर्जन्म है? तब यह बताइये कि इस आत्माका स्वभाव क्या है और क्यों यह कभी पशु होता है, कभी मनुष्य होता है, कभी वृक्ष होता है? जगतकी आत्माओमे भिन्नता क्यों है?

शिक्षक—हम आपको बता चुके है कि जगतमे कोई भी मूल पदार्थ नाश नहीं होता है तब आत्माका बने रहना मानना ही होगा, परलोक मानना ही होगा, पुनर्जन्म मानना ही होगा। आपने अपने

---

* Nothing new is created, nothing is destroyed, only modifications appear Nothing comes out of nothing, nothing altogether goes out of existence

आपके जाननेकी इच्छा प्रगट की है यह जानकर मुझे बडा हर्ष हुआ है। भाई, आत्मा प्रत्येक शरीरमे भिन्न २ है। तथापि सर्वका मूल स्वभाव एकसा है। कोई भी अन्तर नहीं है। परन्तु ये सब ससारी आत्माए अशुद्ध है। इनके साथ पुण्य पापरूपी कर्मोका सम्बन्ध है। उन कर्मोके ही फलमे कोई पशु व कोई मानवके शरीरमे पैदा होता है तथा इनकी विचित्र अवस्थाओके होनेका कारण भी पुण्य पाप कर्मोका फल है।

पहले हम आपको हरएक आत्माका मूल स्वभाव बताएगे, फिर यह समझाएगे कि यह अशुद्ध कैसे होता है, इसके पाप व पुण्यकर्मका बध कैसे होता है व किस तरह कर्म अपना फल देता है। आपको इन बातोंके जाननेसे बडा ही लाभ होगा। आत्माका मूल स्वभाव ज्ञानमय है, शांतिमय है, आनन्दमय है, अमूर्तीक है, यह स्वभावसे परमात्मा है, ईश्वर है, भगवान है।

शिष्य—क्या हमारा आत्मा भी स्वभावसे ईश्वर है? कृपाकर विशेष समझाइये।

शिक्षक—यह आपको याद रखना चाहिये कि हरएक द्रव्य या पदार्थमे बहुतसे गुण और स्वभाव हुआ करते है। जैसे जड मिट्टी आदिमे चार गुण साफ प्रगट है-स्पर्श, रस, गध, वर्ण, वैसे आत्मामे ज्ञान, शांति, आनद व अमूर्तीकपना मुख्य गुण है। यद्यपि गुण तो और भी है परतु आत्माका स्वभाव समझनेके लिये आपको समझा देंगे कि ये गुण आत्मामे स्वभावसे है या नहीं। आप दिल लगाकर सुनें, आप थोडी देरके लिये और चिंताए छोड दें।

शिष्य—मुझे बडा आनन्द आरहा है। आप अच्छी तरह कहिये, मैं निश्चिन्त हू।

शिक्षक—आत्मामे ज्ञान गुण है यह तो आप भले प्रकार समझ गए हैं। वर्तमानमे हमारी और आपकी आत्मामे ज्ञान गुण मलीन है इससे हम व आप कम जानते हैं। मूल स्वभावमें ज्ञान गुण उसको कहते है जो सब जाननेलायक बातोंको जान सके। मूल स्वभावमें हरएक आत्मा सर्वज्ञ स्वरूप है। सब कुछ जाननेकी शक्ति इसमें है।

यदि पूर्ण ज्ञानकी शक्ति हरएक आत्मामें न हो तो ज्ञानका विकाश या प्रकाश न हो। ज्ञान भीतरसे ही उन्नति करता हुआ बढ़ता हुआ चला जाता है। जितना २ हमारा अज्ञान पुस्तकोंके निमित्तसे व शिक्षकोंके निमित्तसे हटता जाता है उतना २ ज्ञान प्रगट होता जाता है। जैसे मैले सुवर्णमे सुवर्णकी सारी चमक है लेकिन वह मैलमे ढकी हुई है। जितना २ मैल हटता जाता है, चमक अधिक २ झलकती जाती है। जब पूर्ण मैल हट जाता है, सोना अपनी असली चमकमे चमक जाता है।

यह तो आप जानते है कि जब बालक थे तब बहुत कम जानते थे, अब आपका ज्ञान बहुत बढ गया है। क्या आप बताएँगे कि आपका ज्ञान कैसे बढा ?

शिष्य—पढनेसे, सुननेसे, अनुभवसे ज्ञान बढ गया है।

शिक्षक—परन्तु आप मुझे यह बताइये कि आपके ज्ञानकी जो बढ़वारी हुई सो यह अधिकता कहांसे आकर मिली। क्या आपके अध्यापकोंने आपको दी, क्या पुस्तकोंने आपको दी ?

शिष्य—मै समझता हू कि मैने ज्ञान अध्यापकोंसे तथा पुस्तकोंसे पाया है।

शिक्षक—जब अध्यापकोंने ज्ञान दिया तब जितना आपको उनसे मिला उतना ज्ञान क्या अध्यापकोंका कम होगया ? पुस्तकोंसे आपने जितना ज्ञान पाया क्या उतना ज्ञान पुस्तकोमेंसे घट गया ? क्योंकि यह नियम है कि कहीं बढती होगी तो कहीं घटती भी होगी। जैसे आपको कोई सौ रुपये दे तो सौ रुपये देनेवालेके पाससे जरूर कम हो जांयगे।

शिष्य—मै समझता हू कि मेरे पढानेवालोंका ज्ञान भी घटा नहीं न पुस्तकोंका ज्ञान घटा, किन्तु मेरा बढ जरूर गया है।

शिक्षक—तब यह बढती अवश्य किसी बाहरकी वस्तुसे आपके पास नहीं आई किन्तु आपके पास ही इस ज्ञानकी उन्नति हुई है। जितना २ अज्ञान मिट गया आपका ज्ञान विकसित होता गया। यदि पूर्ण ज्ञानकी शक्ति न होती तो ज्ञानका प्रकाश नहीं होता। जगतमे भी यही प्रसिद्ध है कि इसने विद्यामे बहुत उन्नति की।

उन्नति शब्द वहींपर आता है जहाँ शक्ति अप्रगट हो वह प्रगट हो जावे। यह रत्न चमक गया इसके अर्थ यही है कि रत्नमे चमकनेकी शक्ति थी ही, शानमे घिसनेसे ऊपरका मैल कट गया, रत्न चमक उठा। यही बात ज्ञानके प्रकाशमे है। एक आत्माके ज्ञानकी उन्नतिकी कोई सीमा नहीं हो सकती है। जितना २ साधन मिले उतना २ इसके ज्ञानका विकाश होता जाता है। कोई २ आत्माको अल्पज्ञानी ही मानते हैं। जब हवाई विमान नहीं निकले थे, बेतारका तार नहीं चला था तब वे लोग यही जानते थे कि आत्माको कभी ऐसा ज्ञान हो ही नहीं सकता है।

अब इन आविष्कारोंको देखते हुए उनका मानना पडेगा कि वे भूलमे थे। वास्तवमे हरएक आत्मा परमात्माके समान स्वभावसे सर्वज्ञ है या पूर्ण ज्ञानकी शक्ति रखता है, विना ऐसा समझे हुए ज्ञानका प्रकाश नहीं बन सकेगा।

शिष्य—आपकी बात मेरी समझमे बहुत अच्छी तरह आ गई। असलमे ज्ञानका भीतरसे ही विकाश होता है। क्योंकि इसका अमर्यादित विकाश हो सकता है इसलिये आत्माके भीतर पूर्णज्ञानकी शक्ति अवश्य मानना पडेगी।

शिक्षक—इसी तरह आपको मानना होगा कि आत्माका स्वभाव शीतल व शांतिमय है। यह स्वभावसे क्रोधी, मानी, लोभी आदि नहीं है। क्या आप क्रोध मान माया लोभको दोष समझते हैं या गुण?

शिष्य—मैं क्या, सारी दुनिया क्रोधादिको दोष मानती है।

शिक्षक—वास्तवमे क्रोधादि विकार हैं, दोष है, उपाधियाँ हैं। ये क्रोधादि कभी भी आत्माके स्वभाव नहीं हो सकते है। हम आपको एक मोटी पहचान बताते है। ज्ञानगुण आत्माका है, यह बात तो आपकी समझमे आ गई है। इसीसे विचारिये कि ये क्रोधादि ज्ञानके शत्रु हैं या मित्र है? आप क्या कहेंगे बतावे?

शिष्य—जरूर यह बात ठीक है कि ये क्रोधादि ज्ञानको विकारी बना देते हैं, ज्ञानकी उन्नति नहीं करने देते, इससे ज्ञानके शत्रु हैं।

शिक्षक—बस, इनके विरोधी गुण क्षमा, मृदुता, सरलता, सन्तोष हैं। ये आत्माके गुण हैं, इनहीको हम शांति या शांतभावके नामसे

पुकारते है । आप विचार करिये, जब शांति होती है तब ज्ञानका विकाश होता है । शांतिमे ज्ञान निर्मल रहता है, इसी कारणसे बुद्धिमान लोग एकांतमे बैठकर ज्ञानाभ्यास करते है, पुस्तकोका मनन करते है, जिससे ज्ञानका लाभ लेते हुए क्रोधादि तीव्र न हो जावे । शांतिके होते हुए ज्ञान प्रफुल्लित रहता है इसलिये शांतिको आत्माके ज्ञानका मित्र मानना ही पडेगा । अर्थात् शांति भी आत्माका एक गुण है ।

क्रोधके आवेशमे बडे २ ज्ञानी अनुचित शब्द बोलने लगते है, मानके मदसे बडे २ विकारी बन जाते है, ज्ञानको भूल भी जाते है । मायाचारीका ज्ञान विकारी हो जाता है । लोभके जोरसे बडे २ ज्ञानी भी चोरी, बेईमानी आदि करने लग जाते है ।

इसलिये क्रोधादि आत्माके गुण नहीं है किन्तु शांत भाव आत्माका गुण है । एक मानव थोडी देर क्रोध करके थक जायगा लेकिन शांत भावको विना किसी कष्टके दीर्घकाल तक रख सकता है। जैसे जलका स्वभाव शीतल है वैसे आत्माका स्वभाव शांत है । (Peacefulness) शांति भी इस आत्माका एक गुण है, इसे कभी भी भूलना न चाहिये ।

इसी तरह आनन्द गुण भी इस आत्माका स्वभाव है । इसका मोटा प्रमाण यह है कि जब हमारे भीतर शांति रहती है तो सुख स्वय मालूम पडता है और जब अशांति होती है तो क्लेश स्वय अनुभवमे आता है इसलिये जैसे ज्ञानके साथ शांतिकी मित्रता है वैसे सुखकी भी मित्रता है। हमारे सुख गुणको अधिकतर मोहने विपरीत कर रक्खा है । मोहका अधेरा ऐसा छाया हुआ है कि हम यही जानते है कि इन्द्रियोके भोगोंमे ही सुख होता है। इन्द्रिय सुख ही सुख होता है ।

इस (sensual pleasure) इन्द्रिय सुखके लिये हम रात दिन इन्द्रियभोग सम्बन्धी पदार्थोंको लिया करते है, छोडा करते है। उन हीके मोहमे भूले रहते है । देखो, सवेरेसे शामतक व शामसे सवेरेतक शरीरकी, धनकी, कुटुम्ब परिवारकी, मित्रोंकी ही चिंतामे, उन हीकी तरफ आकर्षित रहते है । कभी भी इस अन्ध मोहको छोडते नहीं हैं, इसीसे अपने ही पास जो सच्चा सुख है उसे हम नहीं भोग रहे हैं ।

शिष्य—यह बात मेरी समझमें नहीं आई कि इंद्रिय सुखसे भी भिन्न कोई सुख है। हम तो यह जानते है कि जब हम स्वादिष्ट वस्तु खाते है, सुन्दर वस्तु खाते है, अपने मित्रके हाथका स्पर्श करते है, सुगंधित फूलोंको सूघते है, सुन्दर वस्तु देखते है, रसीला गाना सुनते है तब हमे सुख होता है, इसके सिवाय भी कोई सुख क्या जाननेमे आता है ?

शिक्षक—प्रिय भाई ! इंद्रियोंके द्वारा होनेवाला सुख सुखसा दीखता है परन्तु यह सुख यथार्थ नहीं है, यह तो दुःखकी कमी है जिसे सुख समझ लेते है। जब इंद्रिय द्वारा भोगकी चाह उठती है यही दुःख है। जब यह दुःख कुछ कम होजाता है तब हम सुख कहते है।

यह सुख इसलिये नहीं है कि इस सुखाभाससे तृप्ति नहीं होती है, उलटी चाहकी दाह बढ जाती है, तृष्णा अधिक हो जाती है। जितनी इच्छाऐं हम रखते है उतनी ही बीमारियां हमारे पास है Desires are diseases यदि कोई बीमारी कुछ कम होती है, हम सुख मान लेते है। हमे पांचों इंद्रियोंकी बहुतसी इच्छाऐं रहती है जिनमे बहुतसी पूरी ही नहीं होती है। हम आपको बताएंगे कि इंद्रियसुखके सिवाय भी कोई सुख है। अच्छा क्या आपने कभी स्वयसेवकी की है ?

शिष्य—मैंने एक दफे जब मेरे यहां एक जैन मेला था तब स्वयसेवकीका काम किया है।

शिक्षक—क्या उस कर्तव्यको पालन करते हुए कभी आपत्तियां या कष्ट तो नहीं आए थे ?

शिष्य—एक रातको मेरी ड्यूटी यह बांधी गई थी कि मै डेरोंके आसपास पहरा दूं। कारणवश उस रातको पानी खूब बरसा। मैं पानी हीमे छतरी लगाकर अंधेरी रातमे लालटेन लिये घूमा किया। एक पहरेदारके समान सब कर्तव्य पाला।

शिक्षक—अच्छा बताओ। ऐसा कष्ट सहनेहुए तुम्हें मनमे दुःखका अनुभव हुआ था या सुखका ?

शिष्य—क्या कहूं ? मुझे तो बडा सुख मालूम पडा था।

शिक्षक—ऐसा क्यों मालूम पडा ? यदि आप घरमे आरामसे बैठे

हों और कोई आज्ञा करे कि रातको पानी बरसतेमे घुमो तो आप इस आज्ञाको नहीं मानोगे, क्योंकि यह जानते हों कि पानीमे घूमेगे तो कष्ट होगा फिर इस स्वयसेवकीका कर्तव्य पालते हुए सुख केसे मिला ? प्रगट रूपसे तो यह दु खकारक काम था ।

शिष्य—मै समझता हू कि उस समय मे जातिसेवाका काम मनसे कर रहा था इसमे मुझे सुख मिला था ।

शिक्षक—तब उस समय क्या आपने पांचों इन्द्रियोंके भोग भोगे थे जो सुख मिला ?

शिष्य—नहीं, पांचो इन्द्रियोके भोग नहीं भोगे थे, वहां तो भोगके साधन नहीं थे। अधेरी रातमे खडे २ घुमता था, न कोई गाना था न बजाना था, न खाना था, न पीना था, न सुन्दरताका देखना था, न सूघना था, न किसी मित्रका समागम था ।

शिक्षक—तब आपके कहनेसे ही यह बात आगई कि आपने इन्द्रियोके भोगोंके विना भी कोई सुख पा लिया जो सुख इन्द्रिय सुख नहीं है किंतु इन्द्रियसुखसे भिन्न है ।

शिष्य—इसमे सन्देह नहीं कि यह सुख इन्द्रियसुखसे भिन्न है तो क्या यही आत्माका स्वाभाविक सुख हे ? यदि ऐसा है तो मुझे स्वय-सेवकीका कर्तव्य पालते हुए क्यों झलका तथा और समयपर क्यों नहीं मालूम पडता ?

शिक्षक—वास्तवमे वह सुख भीतरसे उठा है वह आत्माके स्वाभाविक गुणका ही झलकाव है। स्वयसेवकी एक परोपकारका काम हे। जब आपने इस ड्युटीको हाथमें लिया तब यह मशा करली थी कि हम शरीरसे, धन घरसे, आरामसे मोह छोडकर जो कुछ छोटीसी भी सेवा होगी उसको बजायगे अर्थात् अपने मोहको कम किया था। और जब स्वयसेवकीका कर्तव्य पाल रहे थे तब भी मोहको छोडे हुए वर्ताव कर रहे थे। मोहने ही आत्माके सुख गुणको ढक रक्खा था। जितना अश आपका मोह हटा था उतना अश उस अन्तरगके सच्चे सुखका कुछ स्वाद आपको आगया ।

यदि आत्मामे सुख गुण नहीं होता तो कभी भी परोपकार करते हुए सुख नहीं भासता। यदि कोई एक क्षणके लिये बिलकुल मोह छोड दे और आत्माकी ओर प्रेमी हो जावे तो वह यह अनुभव करेगा कि वह परम सुखी है। इसलिये आपको यह निश्चय करना चाहिये कि आत्माका एक गुण आनन्द है।

शिष्य—गुरुजी! आज तो आपने मुझे बडी ही कामकी बात बता दी, मै तो बहुत अन्धेरेमे था। मै विषयभोगको ही सुख जानता था। आज मैने निश्चय करलिया और खूब समझ लिया कि सच्चा सुख मेरे आत्माका स्वभाव है, इन्द्रिय सुख अतृप्तिकारी है व चाहकी दाहको बढानेवाला है। वास्तवमे दुःखकी कुछ कमीको ही इन्द्रिय सुख कहते है।

शिक्षक—इसी तरह यह आत्मा अमूर्तीक है, इसमे जड Matter के गुण जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है सो नहीं है इसीसे हम आत्माको हाथोंसे छूकर, जबानमे चाखकर, नाकसे सूंघकर व आंखसे देखकर नहीं जान सकते है। वह जड परमाणुओंसे बना नहीं है, वह तो एक अखण्ड अदृश्य पदार्थ है इसीसे वह अमूर्तीक immaterial है।

शिष्य—इस आत्माका कुछ आकार है या नहीं।

शिक्षक—हरएक वस्तु जो इस जगतमे है कुछ न कुछ आकाशको घेरती है, क्योकि आकाश सबका आधार है। जैसे कोई कहे कि घडी कहां है? जवाब मिलेगा वहां है। फिर वह पूछे कि वहां कितनी जगहको घेरे हुए हैं? जवाब होगा कि वह घडी जितनी जगह घेरे हुए हैं वही उस घडीका आकार है।

इसी तरह हम जितनी जगह घेरे है वह हमारा आकार है। आप जितनी जगह घेरे हुए हो वह आपका आकार है। तथा हम ज्ञानका काम व सुख दुःखका जानना सर्व शरीरभरसे कर सकते है, शरीरसे बाहरकी चीजको जो हमसे नहीं छूरही है उसके स्पर्शको हम मालूम नहीं कर सकते, न उसके बिगाड सुधारका कोई दुःख सुख हमें सहन होता है। यदि एक ही समयमे हमारे सारे शरीरभरमे सुइयां चुभा दी जावें तो हमे सारे शरीरभरमे एकसाथ दुःखका अनुभव होगा।

यदि हमारे शरीरसे एक इन्च दूर हवामे सुइयां हिलाई जावें या भोंकी जावे तो हमें उसका कुछ भी दुख नहीं मालूम होगा। इससे यह जाना जाता है कि हरएक संसारी आत्माका आकार उसके शरीरभरके बराबर है। आत्मा अपने शरीररूपी घरमे फैला रहता है।

शिष्य—परन्तु शरीर तो छोटेसे बडा होता है, कभी बीमारीमे बडेसे कुछ छोटा हो जाता है। बालकावस्थामे शरीर जरासा था युवानीमे बडा होगया, तब क्या आत्मा भी छोटेसे बडा व बडेसे छोटा होता है?

शिक्षक—वास्तवमे यही बात है, जैसे एक दीपकका उजाला एक घडेमे घडेभरमे ही फैलेगा, वही उजाला एक कोठरीमे कोठरीभरमे फैलेगा, वही एक कमरेमे कमरेभरमे फैलेगा, वही मैदानमे और भी अधिक फैलेगा।

जैसे दीपकके प्रकाशमे फैलनेकी व सकुडनेकी शक्ति स्थान व पात्रके आधारसे है वैसे इस संसारी आत्मामे शरीरके आधारसे फैलने सकुडनेकी शक्ति है। यही कारण है कि एक मानवका जीव मरनेके बाद एक गायके गर्भमे जाकर छोटा उसी बछडेके आकार हो जाता है या एक हाथीका जीव मरनेके बाद यदि चींटी जन्मे तो चींटीके आकार हो जाता है। यह बात प्रत्यक्ष प्रगट है, हम व आप सब अनुभव कर सकते है।

शिष्य—तब यह तो बताइये कि आत्मामे कहांतक फैलनेकी शक्ति है?

शिक्षक—इस आत्माका आकार निश्चयसे या असलमे इतना बडा है जितना बडा यह जगत है। किसी समय यह सब जगतमे भी व्याप जाता है।

शिष्य—फिर इसको निराकार क्यों कहते है?

शिक्षक—जडमई आकार आत्माका ऐसा नहीं है जिसे हम देख सकें या छूसकें, इसलिये इसे निराकार कहते हैं। यह अमूर्तीकके ही अर्थमें है। कोई भी आकार आत्माका नहीं है, यह अर्थ निराकारके नहीं है।

शिष्य—अच्छा! आपने यह बताया था कि सब आत्माएं स्वभावसे बराबर हैं, सबका मूल स्वभाव एकसा है, सो मैं आपके समझानेसे समझ गया कि हरएक आत्मा स्वभावसे सब कुछ जाननेकी शक्ति रखता है, परम शान्तिमय है, परमानन्दमय है व अमूर्तीक है अर्थात् हरएक आत्मा स्वभावसे परमात्मा या ईश्वर है।

अब यह बताइये कि फिर यह अशुद्ध क्यों है तथा यह विचित्रता जगतकी आत्माओंमें क्यों मालूम पडती है ? क्यों एक पशु है, क्यों एक पक्षी है, क्यों एक मानव है, क्यों एक स्त्री है, क्यों एक पुरुष है, क्यों एक सुखी दिखता है, क्यों एक दुखी दिखता है, क्यों एक बलवान है, क्यों एक निर्बल है, क्यों एक धनवान है, क्यों एक निर्धन है, क्यों एक जल्दी मरता है, क्यों एक दीर्घकाल जीता है, क्यों एक शांत स्वभावी है, क्यों एक क्रोधस्वभावी है, क्यों एक चतुर है क्यों एक मूर्ख है ?

शिक्षक—आपका प्रश्न बहुत उपयोगी है और अच्छी तरह समझने-लायक है। पहले हम आपको एक दृष्टांत देकर बतावेंगे। यदि हमने रुईके बने कपडेसे ५० कुरते बनवाए और हमने पचासो कुरतोंको पचास किस्मके रंगोंमे घोल करके रंगीन कर दिया। अब वे कुरते एक रुई जातिके सफेद होनेपर भी विचित्र दीख रहे है।

इसका कारण भिन्न २ प्रकारके रंगका संयोग है। इसी तरह इस आत्माके साथ किसी ऐसे जड पदार्थका सम्बन्ध है जो नाना प्रकारका है। इसी कारण जगतके संसारी जीवोंमे भिन्नता दिख रही है। पहला सम्बन्ध तो इस दिखनेवाले मोटे शरीरसे ही है।

सबका शरीर एकसा नहीं है, परन्तु यह तो छूटता है व फिर दूसरा मिलता है। एक ऐसा महीन जड पदार्थ संसारी आत्माके साथ रहता है जिसके असरसे इसकी दशा भीतरी व बाहरी तरह २ की होती है। इस सूक्ष्म जड पदार्थको **कार्मण शरीर** (Karmic body) या कारण शरीर कहते हैं।

इस स्थूल शरीरके छूटने पर भी वह साथ रहता है। उसीके असरसे पशु, पक्षी, पुरुष, स्त्री, गाय, भैंस, हिरण, मक्खी, चींटी, लट, वृक्ष आदि रूपधारी होता है। उसीके असरसे भीतरी व बाहरी दशा जीवोंकी होती है।

यह कार्मण शरीर सूक्ष्म जड स्कन्धोंसे बनता है जिनको कार्मण-वर्गणा (Karmic molecules) कहते हैं। हम सब संसारी जीव जब कुछ भी अपने मनसे, वचनसे या कायसे अच्छा या बुरा काम करते हैं तब हमारे भीतर हरकत पैदा होती है उसी समय ये कर्मोंके स्कन्ध खिंचकर आजाते हैं और हमारे कार्मण शरीर बन्ध जाते हैं।

जैसे गर्मीका निमित्त पाकर पानी स्वयं भाफरूप हो जाता है, वैसे हमारे अच्छे या बुरे भावोंके निमित्तसे वे स्कन्ध स्वयं आकर मिल जाते हैं तब इन्हींको पुण्य पापकर्म कहते हैं भाग्य कहते हैं, किस्मत कहते हैं, फेट (fate) कहते हैं, अदृष्ट कहते हैं, प्रकृति कहते हैं, माया कहते हैं।

शिष्य—पुण्य पापमें क्या भेद है?

शिक्षक—जब हमारे भाव अच्छे कार्योंकी तरफ होते हैं तब हम जिन कर्मोंको बांधते हैं उनको पुण्यकर्म कहते हैं। जब भाव बुरे कार्योंकी तरफ होते हैं तब हम जिन कर्मोंको बांधते हैं उनको पापकर्म कहते हैं।

शिष्य—कृपा कर अच्छे या बुरे भावोंके नमूने बताइये।

शिक्षक—जब हम जीवदया, परोपकार, दान, सत्य वचन, सत्य व्यवहार, इमानदारी, सन्तोष, ब्रह्मचर्य पालन, क्षमा, विनय, सरलता, शुचिता, इन्द्रियनिग्रह, मननिग्रह, वैराग्य, परमात्मभक्ति, उत्तम शास्त्र पठन, सच्चे गुरुकी सेवा आदि प्रसन्नताके भाव करते हैं तब पुण्यकर्म बंधते हैं।

जब हम हिंसा, परपीड़ा, असत्य वचन, चोरी, कुशील, अति लोलुपता, इन्द्रिय लम्पटता, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम विकार, कुटिलता, अविनय, ईर्षा, घृणा, हंसी, शोक, चुगली, परका बुरा, जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार खेलना, वेश्या प्रसंग, परस्त्री प्रसंग आदि खोटे भाव करते हैं तब पापकर्म बंधते हैं।

ये पुण्य वा पापकर्म बन्धनके पीछे जब काल पाकर पकते हैं तब अच्छा या बुरा फल देते हैं। जैसे हम शरीरमें हवा, पानी, भोजन लेते हैं। ये सब भीतर पककर अपना फल स्वयं खून, चरबी, मांस, हड्डी व वीर्यमें पलटते हैं।

वीर्यकी शक्तिसे हम लोग चलते फिरते, देखते सुनते, दौड़ते बैठते आदि जीवनके काम करते हैं, वैसे ही इस सूक्ष्म कार्माण देहमें सञ्चय किये हुए पुण्य या पापकर्म अपने अवसरपर पककर अच्छा या बुरा फल दिखाते हैं। जो कर्म सूक्ष्म शरीरमें बंधते हैं उनके मूल आठ भेद हैं.—

(१) **ज्ञानावरण कर्म**—जो ज्ञान स्वभावको ढकता है।

(२) **दर्शनावरण कर्म**—जो देखनेके स्वभावको ढकता है।

(३) **मोहनीय कर्म**—जो मदिराके समान भ्रममे डालता हैं, रागद्वेष मोह पैदा करता है, शांतभाव व सच्चे विश्वासको भ्रष्ट करता है।

(४) **अंतराय कर्म**—जो आत्मबलको रोकता है।

(५) **आयु कर्म**—जो किसी शरीरमे कैद रखता है।

(६) **नाम कर्म**—जो शरीरकी रचना करता है।

(७) **गोत्रकर्म**—जो माननीय व निन्दनीय कुलमे जन्म कराता है तथा जिसके असरसे हम जगतमे ऊँच व नीच कहलाते है।

(८) **वेदनीय कर्म**—जो सुख दु खकी सामग्रीका सम्बध मिलाकर सुख दु ख भोगनेमे कारण होता है। इनमेसे ऊपरके चार कर्मोको घातिया (destructive) कहते है। क्योंकि ये चार कर्म आत्माके स्वभावको बिगाडते है। बाकीके चार कर्मोको अघातीय (non destructive) कहते है, क्योंकि ये केवल बाहरी सम्बध मिलाते है।

जितना ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मका जोर हटा हुआ है उतना ज्ञान व दर्शन गुण हमारा प्रगट है। जितना ज्ञान व दर्शन ढका हुआ है वह ज्ञानावरण दर्शनावरणका असर है। जितना अन्तराय कर्म हटा हुआ है उतना आत्मबल प्रगट है। जितना आत्मबल ढका हुआ है वह अन्तराय कर्मका असर है।

एक बात यह भी समझ लो कि जितना गुण आत्माका प्रगट है उसे पुरुषार्थ कहते है। जितनी कर्मोके असरसे मलीनता है या कर्मोका बाहरी फल होता है उसे दैव कहते है।

शिष्य—जरा कृपा करके दैव और पुरुषार्थको ठीक ठीक बताइये। मैं इस बातको अच्छी तरह जानना चाहता हू।

शिक्षक—ऊपर हमने बताया है कि चार घातीय कर्म आत्माके गुणोंको बिगाडते है। इनमेसे तीनके दबनेसे जितना ज्ञान, दर्शन, आत्मबल प्रगट है, वही वह शक्ति है जिससे हम विचारपूर्वक किसी कामका उद्यम कर सकते है। यह दैव व कर्मसे उल्टी वस्तु है, इसे ही पुरुषार्थ या उद्योग कहते हैं। यह हमारा शस्त्र जगतमे काम करनेके लिये है।

चौथा मोहनीय कर्म है, जब वह कुछ दबता है तब जितनी शांति

प्रगट होती है वह भी पुरुषार्थमे गर्भित होजाती है। वह शांति भी हमारे उद्योगमें सहायक होती है।

हरएक मानवको उचित है कि वह इस पुरुषार्थसे विचारपूर्वक लौकिक या पारमार्थिक काम करे। यदि कभी कर्मका उदय प्रतिकूल होगा तो काम सिद्ध न होगा। यदि अनुकूल होगा तो काम सिद्ध हो जायगा। बहुधा हमारी उत्तम बुद्धि द्वारा विचार किये हुए काम सफल होजाया करते है।

जैसे हम किसी व्यापारको बुद्धिसे विचारकर अपने आत्मबलके अनुकूल करे, यदि सातावेदनीय कर्म अनुकूल होगा व अतराय कर्म बाधक न होगा तो हमारे मनके अनुकूल कार्य सिद्ध होजायगा। व्यापारमे लाभ होगा। यदि कर्म प्रतिकूल होगा तो हानि होगी। हमने विचारपूर्वक किसी गाडी घोडेकी सवारी की और मार्गमे जाने लगे, यदि कर्म प्रतिकूल होगा तो हमारी गाडी लडखडायेगी और हमे चोट लगजायगी। जगतमे पुरुषार्थ और दैव दोनोंकी आवश्यकता है। एक दूसरेसे विरुद्ध है। जो प्रबल होता है उसकी विजय होजाया करती है।

अब आप यह समझ गये होंगे कि यह आत्मा कर्म जडके सयोगके कारण अशुद्ध है जब कि स्वभाव उसका शुद्ध है। जैसे मैला पानी मैलके सयोगसे अशुद्ध है, पानीका स्वभाव शुद्ध है। मैला कपडा मैलके सयोगसे अशुद्ध है, स्वभावसे सफेद रुईका है। मैला सुवर्ण कालिमाके सयोगसे मैला है, स्वभावसे शुद्ध है। इसी तरह आत्मा स्वभावसे शुद्ध है, मात्र जड कर्मके सयोगसे अशुद्ध है।

अब आपसे कोई पूछे कि आप कौन हैं तो आप क्या उत्तर देंगे?

शिष्य—अब तो मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया हू। मैं यही कहूगा कि स्वभावसे मैं शुद्ध आत्मा हू, जिसमें पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण शांति है, पूर्ण आनन्द है, स्वभावसे मै अमूर्तीक हू, कर्मके सयोगसे मैं अशुद्ध हू। मेरेमे जो वर्तमान अवस्था होरही है वह कर्मोंका असर है।

शिक्षक—वास्तवमे आप समझ गए हैं कि आप कौन हैं। जब अपनेको समझ गए हैं तब क्या आपने दूसरेको नहीं समझा है?

शिष्य—मैंने सर्व ही चेतन शरीरधारी प्राणियोंको अपने समान समझ लिया है। सर्व ही शरीरधारी प्राणियोंमे स्वभावसे आत्मा शुद्ध है, कर्मसयोगसे अशुद्ध है।

शिक्षक—एक बात ध्यानमें रक्खो कि यह ससार एक नाटक-घर है जिसमे यह जीव जडकी सगतिसे नाना प्रकार पशु, पक्षी, कीट, वृक्ष, मनुष्य आदिके रूप बनाकर वर्तन किया करता है। स्वभावसे सब ही शुद्ध आत्मा है।

शिष्य—आप यह बताइये कि मेरा कर्तव्य क्या है?

शिक्षक—कल इसी समय मिलेंगे तब बतावेंगे।

दूसरा अध्याय।

मेरा कर्तव्य।

शिक्षक—आपने कल प्रश्न किया था कि मेरा कर्तव्य क्या है, मैं आपको बतानेकी कोशिश करूंगा। आप भीतरसे क्या चाहते है?

शिष्य—हम यही चाहते है कि सुखशांतिसे जीवन बितावे व जगतकी कुछ सेवा बने तो कर जावे। मैं समझता हू कि हरएक बुद्धिमान मानव ऐसा ही चाहता है। कोई भी दुःख व अशांतिको नहीं चाहता है।

शिक्षक—आपका विचार बहुत ही ठीक है। मानवके दो ही मुख्य उद्देश्य हैं—एक सुखशांतिका लाभ, दूसरा परोपकार। मानव सबसे बडा प्राणी है, ऐसा यह अपनेको समझता भी है। इसलिये जो बडा होता है उसका काम यही होता है कि अपनेसे छोटोंकी रक्षा करे व सेवा करे, उनका उपकार करे, बराबरवालोंका भी भला करे व उनसे प्रेम रक्खे।

इसलिये मानवका कर्तव्य है कि यदि त्यागी हो तो जगतका उपकार करे, सबको समानभावसे देखकर उत्तम उपदेश देवे, मार्ग बतावे। यदि गृहस्थ हो तो अपने कुटुम्ब सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिका सच्चा उपकार करे, अपने

कुटुम्बियोंकी सच्ची भलाई करे, अपनी जातिकी सेवा करे, धर्मकी सेवा करे, नगर व ग्रामकी सेवा करे, स्वदेशकी सेवा करे, जगतके मानवोंकी सेवा करे, पशु समाजकी सेवा करे, वृक्षादि क्षुद्रसे क्षुद्र प्राणियोंकी सेवा करे, जितना अधिक व जितना विस्तारसे होसके करे। परोपकारसे ही मानवका मनुष्यपना सफल होता है।

शिष्य—कृपाकर यह बताइये कि सुखशांतिका लाभ कैसे हो?

शिक्षक—यह बात हम आपको बहुत अच्छी तरह बताएगे, आप ध्यान देकर सुन। यह तो आप भले प्रकार जान चुके है कि सुख व शांति ये दोनो आत्माके स्वाभाविक गुण है। जो आत्मा शुद्ध होता है उसको परमात्मा कहते है, उसके भीतर तो सर्व आत्मीक गुण पूर्णपने शुद्धतासे प्रकाशमान होजाते है। हम ससारी आत्माए अशुद्ध है तथापि हमारी आत्मामे भी ये गुण है। हम किस तरह इन गुणोका स्वाद ले यही बात समझनेयोग्य है। हम आपसे पूछते है कि आपको मीठी नारगीका स्वाद कैसे आता है?

शिष्य—जब हम नारगीका गूदा जबानपर चखते है तब उसका मीठा स्वाद आता है।

शिक्षक—यदि नारगी खाते वक्त आपका मन व्याकुल हो, कहीं जानेकी आकुलता हो तो आपको स्वाद आयेगा या नहीं?

शिष्य—मै समझता हू कि जब हम स्थिरतासे चखेगे तब ही हमको स्वाद आयेगा। घबडाहटमे स्वाद नहीं आयगा।

शिक्षक—आपका कहना ठीक है। असल बात यह है कि स्वादको जाननेवाला हमारा ज्ञान है जो जीभके द्वारा काम कररहा है। जब हमारा ज्ञान बिलकुल उस नारगीकी ओर एकाग्र होगा अर्थात् उसी तरफ जम जायगा तब ही नारगीका स्वाद आयगा। यदि डावांडोल ज्ञान होगा—उस नारगीके स्वाद जाननेमे स्थिर न होगा तो कभी भी उसका स्वाद न आयगा।

इसी दृष्टांतसे आपको मालूम हो जायगा कि जब सुख शांति अपने आत्मामे है तब अपनी आत्माकी ओर एकाग्र होकर स्थिर होनेसे अर्थात् आत्मामें ज्ञानको

रोकनेसे या आत्मध्यानसे सुखशांतिका लाभ होगा। इसलिये यदि आपको सुखशांतिका लाभ करना है तो आत्मध्यान करनेका अभ्यास करना चाहिये।

शिष्य—गुरुजी ! हम आत्माका ध्यान कैसे करें ?

शिक्षक—आप विद्यार्थी है। आप ध्यानका थोडासा अभ्यास कुछ देर प्रारम्भ कर दीजिये। मै आपको आत्मध्यानका उपाय बताता हू। लोग कहते है बहुत कठिन है परन्तु आत्माको अभ्यास करनेसे सुगम मालूम होगा।

आत्मध्यान एक तरहका व्यायाम है। जेसे शारीरिक व्यायाम करनेसे शरीर पुष्ट होता है वैसे आत्मिक व्यायाम करनेसे आत्मा बलवान होता है। जैसे शरीरकी कसरत शुरू करते हुए कठिन मालूम होती है लेकिन एक दफे शुरू कर दी गई और कुछ दिन जारी रखी गई तो फिर सुगम होजाती है वही हाल आत्मीक व्यायामका है।

आप सबेरे सूर्यके उदयके कुछ पहले जब आकाशमे लाली छारही हो, बिछौना छोडकर व हाथ पग धोकर यदि कुछ मनमे ग्लानि हो तो बदन पोछकर व कपडे बदल कर एक आसन या पाटा बिछाकर एकांतमे अलग बैठ जावे। ५, १०, १५ जितने मिनट आप दे सके उतनी देरके लिये आप यह इरादा करल कि इतनी देरके लिये मैने दुनियकि सब कामोसे छुट्टी ले ली है। मै इतनी देर सिर्फ अपने आपसे बातें करूंगा। अपनी तरफ देखूगा। किसी और वस्तुकी तरफ दिल न लगाऊँगा। ऐसा दृढ सकल्प करके आप बैठ जाइये और अपना आसन पद्मासन या अर्ध पद्मासन बना लीजिये।

दोनो पैर जांघपर रखकर बाए हाथपर दाहना हाथ रखकर सीधे बैठनेको पद्मासन कहते है। आपने कभी जैन मदिरमे मूर्तिको देखा होगा। मूर्तिका आसन जो बैठे हुए मिलता है वह ऐसा ही पद्मासन होता है। जिसमे एक पग जाघके ऊपर हो एक पग जाघके नीचे हो वह अर्ध पद्मासन है। हाथ दोनों वैस ही रहते है। आसन लगानेसे शरीर निश्चल हो जाता है। ऐसा दृढ हो जाता है कि तेज पवन भी नहीं हिला सकता है।

आसनसे बैठकर अपने भीतर देखो कि निर्मल जलके समान आत्मा

भरा हुआ है। जैसे निर्मल जल शुद्ध, शीतल व मीठा होता है वैसे यह आत्मा शुद्ध ज्ञानपूर्ण, शांतिमय व आनन्दमई है। इस जल समान आत्मामे अपने मनको डुबादो। उसी तरह डुबादो जैसे नदीमे नहाते हुए पानीमे डुबकी लेते है। जब मन हटे तब नीचे लिखे मन्त्रोमेसे कोई धीरे धीरे पढते रहो, कभी मन्त्र पढना बदकर आत्माके ज्ञान, शांति व आनन्दके गुणोंको विचार लो, फिर उसी जलस्वरूप आत्मामे मन डुबाओ।

इस तरह तीन बातोको बदलते हुए अभ्यास करो। (१) मनको आत्मामे डुबाना, (२) मन्त्र पढना, (३) गुणोका विचार।

मन्त्र कई है पर थोडेसे तुम्हे बताता हू—

(१) ॐ, (२) **अरहंत**, (३) **सिद्ध**, (४) **अरहंत सिद्ध**, (५) **सोऽहम**, (६) ॐ **ह्री**, (७) **अर्हं**, (८) **णमो अरहंताणं**, (९) **णमो सिद्धाणं**।

इनमेसे कोई भी मन्त्र पढ सकते हो। इस तरह जितनी देरका नियम हो उतनी देर अभ्यास करो। यदि मनमे दूसरे विचार आवे तो उसकी तरफ दिल न लगाओ, उनको तुर्त हटा दो—यह कह दो कि इस समय तुम्हारा काम नही है फिर आना। जैसे हम किसी जरूरी हिसाबको कर रहे हो, उस समय कोई बात करनेको आता है तो हम कह देते है कि फिर आना, इसी तरह जो दूसरे विचार आवे उनकी तरफ यही उदासीन (indifference) भाव रखना चाहिये।

आप देखेंगे कि ५–१० दिनके अभ्याससे ही आपको सुख शांति मिलने लगेगी व आपकी आत्मामे कुछ बल भी बढेगा, जो आपके कालेजके पाठके स्मरणमे सहाई होगा।

शिष्य—आपने यह कहा था कि यह आत्मा अमूर्तीक है फिर इसका जलके समान कैसे मान सकते है?

शिक्षक—आपका कहना ठीक है कि आत्मा अमूर्तीक है, परन्तु हमारे ज्ञानमे अमुर्तीकका ध्यान एकदमसे होना कठिन है। इसलिये हमे उस आत्माकी स्थापना (representation) किसी वस्तुमे करके मनको स्थिर करनेका अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास करते करते कभी

ऐसा समय आयगा कि जलके देखनेकी जरूरत न पडेगी। आत्मा स्वय अपने ध्यानमे आ जायगा।

शिष्य—मै तो कलसे ही ऐसा अभ्यास शुरू कर दूगा। क्या ध्यानकी सिद्धिके लिये और कुछ भी काम जरूरी है।

शिक्षक—बहुत अच्छा प्रश्न तुमने किया। ध्यानका अभ्यास वास्तवमे एक चित्रका खींचना है। जसे चित्रके खींचनेका अभ्यास चार बातोंसे होता है, वैसे ध्यानका अभ्यास चार बातोंसे होता है।

वे चार बाते है—(१) चित्रका नकशा देखना, (२) नकशा खींचना किसी शिक्षकसे सीखना, (३) चित्रविद्याकी पुस्तके पढना, (४) कागज व पेंसिल लेकर चित्र खींचनेका अभ्यास करना। इसी तरह आत्मध्यानके लिये चार बातोंकी जरूरत है।

(१) आत्मध्यानमे लीन आदर्श मूर्तिका देखना व उसको देखते देखते आत्माके गुणोका विचार करना व गुणसूचक पाठको पढना।

(२) आत्मज्ञानी गुरुसे समझना।

(३) आत्मज्ञानवर्द्धक शास्त्रोंको पढना।

(४) ध्यानका अभ्यास एकांतमे बैठकर करना।

शिष्य—क्या मूर्ति द्वारा भक्ति लाभकारी है, सो किस तरह?

शिक्षक—हम लोगोका मन चञ्चल है, इसलिये मूर्तिके द्वारा देरतक गुणोंके विचारमे लग सकता है। आंखोकी दृष्टि जिस मूर्तिपर पडती है वैसा ही चित्तका भाव होजाता है। यदि हमारे सामने लोकमान्य तिलककी मूर्ति आवे तो उसका देखते ही तिलकके गुण स्मृतिमे आजाते है, देश-भक्ति पैदा होजाती है। यदि हमारे सामने किसी सुन्दर स्त्रीकी मूर्ति आती है तो रागभाव पैदा कर देती है। यदि किसी पहलवान योद्धाकी मूर्ति आती है तो वीर भाव पदाकर देती है।

इसी तरह वैराग्यपूर्ण शात ध्यानमय मूर्ति शुद्ध आत्माका स्मरण करा देती है। मूर्ति मात्र मूर्तिमानके भावोंको दर्शानेका एक चित्र है। फोटो देखकर यह हम जान सकते है कि जिसका फोटो है वह किस विचारमे फोटो लेते वक्त था—क्रोधमे था, लोभमे था, मानमे था, मायामे

था, भयमे था, कामभावमे था। जिस किसी भावमे मानवका मन जमता है, वैसी ही छाया उसके मुखपर चमकती है, फोटोमे वही छाया आती है।

इसलिये फोटोका चित्र उसी चित्रकी दशाको बताता है, जो उस मानवमे उस समय था जब उसका फोटो लिया गया था। मूर्तिका सम्मान व निरादर उसीका सम्मान समझा जाता है जिसकी मूर्ति है। यदि हम स्वामी दयानन्दके चित्रके सामने झुककर नमें तो स्वामीका ही सन्मान किया गया ऐसा समझा जायगा।

इसी तरह यदि हम स्वामी दयानन्दके चित्रकी अविनय करें—कदाचित् उसे पगके नीचे दबालें या उसको मुँहसे चिढावे तो स्वामी दयानदका निरादर समझा जायगा। आपने क्या नगरमे देखा नहीं है कई स्थानोंपर महापुरुषोंकी मूर्तियां खडी है। कहींपर कौन विकटोरियाकी मूर्ति है। ये सब क्यों खडी कीगई है? वे इसीलिये है कि उनको देखते ही देखनेवालोंके दिलोंमे उनके गुण याद आवे जिनकी ये मूर्तियां है।

यदि कहींपर प० मदनमोहन मालवीयाकी मूर्ति या फोटो हो और हम देरतक देखते रहें तो हमारा मन उनके जीवनके कार्योपर चला जायगा कि देखो यह वही मालवीयाजी है जिन्होने हिन्दू विश्वविद्यालयको काशीमे बडे परिश्रमसे स्थापित कराया, जो हिन्दू धर्मके कट्टर माननेवाले व नियमरूपसे पूजापाठ जप तप करनेवाले व बडा ही चित्ताकर्षक व्याख्यान देनेवाले है।

यदि कोई मालवीयाजीके गुणोका भक्त उस मूर्तिके सामने उनकी गुणावलीको कहनेवाला पाठ पढ डाले तो वह पाठ मालवीयाजीके लिये पढ़ा गया ऐसा समझा जायगा। क्योकि यद्यपि वह आंखोसे मालवीयाजीकी मूर्तिको देख रहा है परन्तु उसका ध्यान पाठ पढते हुए मालवीयाजीके गुणोंकी ही तरफ है। यह पाठ पढ़ना उस पढनेवालोंके मनमें यह असर भी पैदा करेगा या वह इस उत्साहको अपने भीतर पैदा कर लेगा कि मुझे भी कुछ थोडेसे भी गुण मालवीयाजीके अपने जीवनमें जाग्रत करने चाहिये।

इसी तरह यदि कोई श्री महावीर तीर्थंकरकी मूर्तिके सामने जाकर

बैठ जावे व उनकी ध्यानमई मूर्तिको वारवार देखे और महावीर भगवानके गुणानुवाद गावे व भक्तिसे भर करके मस्तक झुकावे तो वह सब भक्ति व गुणानुवाद महावीर भगवानका ही समझा जायगा और उस भक्तके मनके भीतर यही असर पैदा होगा कि मुझे भी कुछ गुण श्री महावीर भगवानके समान अपनेमे जगाना चाहिये।

यह तो आप जानते है कि महावीर भगवान गौतमबुद्धके समकालीन जैनियोंके चौवीसवे व अन्तिम तीर्थंकर या महान धर्मप्रचारक थे और उन्होने आत्मध्यानसे आत्माको पवित्र किया था, परमात्म पद पाया था। जैन लोग उनकी ध्यानमय मूर्ति उसी आदर्शकी बनाते है जब वे अर्हंत पदमे जीवन्मुक्त परमात्मा थ। उस समय उनका आत्मध्यान व आत्मामे एकाग्रता भाव नमूनेदार होता है।

वास्तवमे ध्यानमय मूर्ति द्वारा दर्शन, भजन, मनन या पूजन आत्म-ध्यान जगानेका व बनानेका एक प्रबल साधन है। और यह साधन वहां-तक आवश्यक है जहांतक ध्यानकी पूरी सिद्धि न होजावे। जैसे-चित्र खीचने-वालेको सामने चित्रको बारबार देखते रहनेकी उस समयतक जरूरत है जहांतक चित्र पूरा न खिच जावे।

शिष्य—आपने बहुत अच्छा समझा दिया कि वैराग्यमई ध्यानका चित्र आत्मध्यानमे सहायक है। परन्तु यदि कोई मूर्तिका सम्बन्ध न करे तो क्या उसको ध्यानकी सिद्धि न होगी?

शिक्षक—प्रिय भाई! मुख्य बात तो यह है कि हमारा मन आत्माके स्वरूपमे एकाग्र होजावे। यह बात सबेरे या शाम थोडी देर अभ्यास करनेसे पैदा होगी। इस अभ्यासमे दूसरी तीनों बातें सहकारी हैं, इन्हींमे मूर्ति द्वारा पूज्यकी भक्ति भी है।

यदि किसीको विना मूर्ति देखे व मूर्तिद्वारा भक्ति किये ध्यान सिद्ध होजावे तो कोई बाधा नहीं है, परन्तु गृहस्थोंका ध्यान बहुत कमदेर होसकता है—थोडी देरमे दिल घबडा जाता है, परन्तु मूर्ति द्वारा भक्ति घंटा दो घण्टा हो सकती है, क्योंकि उसमे कभी मूर्तिका दर्शन है कभी पाठ पढना है, कभी गुण विचारना है, कभी चढानेकी सामग्री उठाना व धरना है।

नाना प्रकारके आलम्बन होनेसे मन परमात्माके गुणोकी तरफ लगातार लगता जाता है।

सवेरे या शामको मात्र आत्मध्यानमे मन बहुत कम देर लगता है। मूर्ति द्वारा भक्ति हमारे आत्मध्यानमे साधक है, बाधक नहीं है। तथापि यदि किसीको ऐसा सम्बन्ध न मिले तौ भी गुरुके उपदेशसे व शास्त्रकी सहायतासे आत्मध्यानकी सिद्धि हो सक्ती है।

जैसे कोई चित्रकारको किसी ऐस चित्रको खींचनेके लिये कहा जावे जिसका पहलेका चित्र नहीं है तो वह चित्रकार कहनेवालेके मुखसे उस मानवके शरीरका सब हाल सुनेगा जिसका चित्र खीचना है और सुनकर पहले एक चित्र उस कथनके अनुसार दिलमे बना लेगा, फिर वैसा चित्र खींच सकेगा।

इसमे एक बात यह होगी कि ठीक वैसा ही चित्र नहीं आसकेगा, जैसा उस मानवका खास मुख था। दूसरे, चित्रकारको कुछ कठिनता होगी। यदि चित्र सामने होगा तो चित्रकारको चित्र खींचनेमे बडी सुगमता होगी। इसी तरह मूर्तिके द्वारा भक्ति विना भी आत्मध्यान होसकेगा। परन्तु कुछ देरम व कुछ कठिनतासे होगा।

शिष्य—हमने सुना है कि जैनोम एक ऐसा फिरका है जो मूर्तिको स्थापन नहीं करता है, तो क्या उस फिरकेवाले ध्यान नहीं कर सकते?

शिक्षक—यदि गुरु बतावे तो इस फिरकेवाले भी आत्मध्यान कर सकते है। परन्तु एक साधन जो ध्यानमे सहायक होता उसको न माननेसे अवश्य कुछ कठिनता होगी तथा देवभक्तिमे जो आत्मध्यान होकर सुखशांति मिलती है उस लाभसे उनको वचित रहना पडेगा।

शिष्य—यदि ऐसे लोग मात्र गुणानुवाद गावे तो क्या भाव निर्मल न होगा?

शिक्षक—अवश्य भाव निर्मल होगा परन्तु ध्यानमय मूर्तिके द्वारा जो चित्तकी एकाग्रतामे सहायता मिलती उसकी कमी अवश्य रहेगी।

शिष्य—तो ऐसे फिरकेवाले मूर्ति स्थापनका प्रचार क्यों नहीं करते है?

शिक्षक—जगतका ऐसा नियम है कि चली आई प्रथाको बदलना

बडा दुर्लभ काम है। यदि कोई इतना प्रबल सुधारक हो जो अपना असर उस फिर्केके भाई बहनों पर पूरे तौरसे कर सके तब ही एक प्रथा बदल कर दूसरी चल सकती है अन्यथा नहीं। उस फिर्केवालोंमें जो यथार्थ विचार करनेवाले है वह अवश्य वीर पूजाके (Hero worship) समान मूर्तिपूजाको समझते है परन्तु पिछली प्रथाको बदलना कठिन होता है। तथापि हमको उन लोगोके साथ एकता व प्रेम रखनेमे कोई कमी न करनी चाहिये।

उनका भी असली भाव वही है जो हमारा है कि आत्मध्यानसे आत्माको लाभ होगा, सुखशांति मिलेगी, आत्मोन्नति होगी। तब उसके साधनोंमे यदि हम तीन साधन बताते है व वे दो ही बताते है इतनेसे बाहरी फर्कके कारण जैनत्वके नातेसे अप्रेम न करना चाहिये।

जो विशेष ज्ञानी है उनके विचारोंमे अवश्य एकता हो सकती है। विशेष ज्ञानी सब जैनी परस्पर एक भावमे पहुच सकते है। भिन्न २ फिरकोंके भाई यदि परस्पर एकता करना चाहे तो उनको एक दूसरेके शास्त्रोंको शांतिसे पढकर मनन करना चाहिये, तब विचारवानके दिलोमे जो कुछ यथार्थ तत्व है सो स्वय झलक जायगा।

हमे बाहरी साधनोंके सम्बधमे परस्पर विवाद न करना चाहिये न एक दूसरेमे अप्रेम करना चाहिये। स्वय अपनी बुद्धिसे विचारना चाहिये। असली सुख शांतिके साधनमे हम सबको एकमत रखना चाहिये। बाहरी साधनोंके सम्बधमे मतभेद होनेपर भी बुद्धिसे निर्णय कर लेना चाहिये।

शिष्य—जब ध्यानमय मूर्ति वैराग्य दर्शानेवाली होती है तब ऐसी मूर्तिको जैनीके कोई फिरकेवाले आभूषणोंसे अलकृत क्यों करते है? मुकुटादि क्यो पहनाते है?

शिक्षक—हमारी रायमे तो वीतरागताके भावको दिखलानेवाली मूर्तिको आभूषणोसे शृंगारित न करना चाहिये। ऐसा करनेसे अवश्य वीतरागताके दृश्यमे अन्तर पडेगा। परन्तु वे लोग भक्तिवश ऐसा करते है। यदि वे शांतिसे लाभ हानिपर विचार करें तो हमारी रायमें ये ऐसा न करें।

हमने सीलोन तथा ब्रह्मदेशमे बौद्धोंको ध्यानमय मूर्तियां बहुत देखी हैं। वे मूर्तियां शृङ्गारित नहीं की जातीं। हां, वस्त्रका चिह्न उनपर होता है। गौतम बुद्ध धोती या चादर पहनते थे उन्हींका चिह्न मूर्तिपर होता है। वीतरागता व शांति तो बहुत अच्छी तरह झलकती है।

शिष्य—जो जैनी मूर्तियोंको वस्त्र रहित बनाते हैं उनका क्या अभिप्राय है?

शिक्षक—वे लोग ऐसा मानते हैं कि वस्त्रादिको त्यागे विना साधुपद नहीं हो सकता, इसलिये वस्त्रादि रहित मूर्ति बनाते हैं। जो मूर्तियों-पर वस्त्रादिका चिह्न करते हैं वे ऐसा मानते हैं कि वस्त्र सहित भी साधु हो सक्ता है। किन्तु सभी बौद्ध व सर्व ही जैनी आत्मध्यानसे उन्नति मानते हैं। उस आत्मध्यानमे एक सहायक साधन ध्यानमय मूर्ति है।

शिष्य—क्या जैन और बौद्ध मतमे साम्यता है?

शिक्षक—जैन मत और बौद्ध मतमे बहुत कुछ साम्यता है सो हम फिर आपको बताएंगे। अभी तो आपको यह समझाना था कि ध्यानमय मूर्तिके द्वारा गुणानुवाद भी आत्मध्यानमे एक सहकारी साधन है।

अब हम दूसरे साधनकी जरूरत बताते हैं कि आत्मज्ञानी व आत्म-ध्यानी गुरुसे आत्मध्यानको समझा जावे। विना गुरुके ज्ञान ठीक नहीं होता।

जैसे कालेजमे जो बात सीखनी है उनको बतानेवाली पुस्तक तो सब होती ही है, परन्तु यदि समझानेवाले प्रॉफेसर या अध्यापक न हो तो उनका ठीक२ भाव शिष्योंकी समझमे न आयगा। इसी तरह आत्मध्यानका उपाय जैन शास्त्रोंमे तो लिखा है, परन्तु आत्मध्यानी गुरुके विना ठीक२ समझमे नहीं आयगा। इसीसे गुरु भक्ति या गुरु सेवाकी भी आवश्यकता है।

शिष्य—मैंने तो आपसे बहुतसा ज्ञान सीखा है। मै तो आपको ज्ञानदाता गुरु मानता हूं।

शिक्षक—भाई! मैं भी एक श्रावक हूं। सच्चे अनुभवी गुरु साधु-जन होते है जो रातदिन आत्मध्यानका अभ्यास करते है। यदि ऐसे गुरु मिल जावें तो उनसे ध्यानके मार्गका ज्ञान बहुत अच्छी तरह हो

सकता है। यदि ऐसा समागम दुर्लभ हो तो जो श्रावक कुछ आत्म-ध्यानके अभ्यासी हो उनहीसे लाभ लेना चाहिये।

तीसरा साधन आत्म-ज्ञानवर्द्धक शास्त्रोंका पढना नित्य जरूरी है। शास्त्रको ध्यानमे पढनेसे मनके विकार शांत होजाते है व आत्माका स्वभाव और भी साफ झलकता है, ज्ञानकी दृढता होती जाती है।

शिष्य—कृपाकर बताइये कि मै कौनसा शास्त्र देखा करूं ?

शिक्षक—मै आपको इष्टोपदेशके देखनेकी सम्मति दूगा व उसके पीछे आप आत्मधर्म फिर समाधिशतकको देख जाइये। ये तीनों ग्रन्थ दिगम्बर जैन पुस्तकालय, कापडियाभवन-सूरतसे हिन्दी भाषामे मिलेगे, आप खूब समझ सकेंगे।

चौथे साधनको मै आपको पहले बता चुका हू इसलिये जीवनमें सच्चे सुख व सच्ची शांति पानेका उपाय एक आत्मरसपान है, जिसका मुख्य उपाय आत्मध्यान है उसके साधनके लिये अन्य तीन साधन हैं।

आप कालेजके विद्यार्थी है, आपको समय यद्यपि कम है तथापि यदि आप अबहीसे आत्मोन्नतिके मार्गमे न लगेगे तो गृहस्थ जीवनमें जाकर तो आप और भी बहुधन्धी होजावेगे, आपको फुरसत ही नहीं मिलेगी, परन्तु जो विद्यार्थी अवस्थामे अभ्यास जम जाएगा तो जन्मपर्यंत कभी न छूटेगा। और जीवन आनन्दमय होता चला जायगा।

शिष्य—मै आपके उपदेशको मस्तकपर चढाता हू। मेरे बोर्डिंगमे जिन मंदिर है। मै रोज प्रतिमाके सामने कुछ भक्ति कर लिया करूंगा। आप कोई स्तुति बता दीजिये जो छोटीसी हो। मै इष्टोपदेश मंगाकर कुछ मिनिट पढ लिया करूंगा। आपसे तो मै रोज मिलकर कुछ देर बातें करूंगा तथा बडे सवेरे १० मिनिट मे आत्मध्यानका अभ्यास भी शुरू कर दूगा।

मैंने समझ लिया है कि यह मेरा साधन मेरे चित्तको निर्मल करेगा जिससे मुझे मेरे कालेजकी पढाईमे भी सुभीता मिलेगा।

शिक्षक—नीचे लिखी छोटीसी स्तुति आप पढ लिया करे।

छन्द स्त्रग्विणी।

जय चिदानन्द आनन्दरूपी जिनं,
ज्ञानमय दर्शमय वीर्यमय मलहनं।
राग नहि द्वेष नहि क्रोध नहि मान ना,
मोह ना शोक ना भाव अज्ञान ना ॥ १ ॥
है कपट कोई ना लोभ ना काम ना,
पंच इन्द्रिय मई सौख्यका धाम ना।
जन्म ना मर्ण ना खेद ना दोष ना,
कोई सन्ताप ना कोई पर रोष ना ॥ २ ॥
कर्म आठो हने शुद्ध आपी भये,
आपसे आपमें आप जानत भये।
नाहि है वर्ण रस गंध अरु फर्श ना,
जड़ मई मूर्ति ना जड़ मई दर्श ना ॥ ३ ॥
आप तो ज्ञान मय आप ध्याता बली,
आपने सर्व बाधा जगतकी दली।
आप ही पूज्य हो आप ही सिद्ध हो,
आपको देखते आप सम रिद्ध हो ॥ ४ ॥
आदिनाथं तुम्हीं शान्तिनाथं तुम्हीं,
नेमिनाथं तुम्हीं पार्श्वनाथं तुम्ही।
हो महावीर सम्मति परम शिव मई,
सुक्खसागर तुम्हीं, देख समता भई ॥ ५ ॥

भक्ति करते समय आपको जैनियोंका परमपूज्य महामंत्र भी पढ़ लेना चाहिये। मैं आपको अर्थ सहित बताये देता हू।

शिष्य—जरूर बताइये—मैं उसे भी कण्ठ कर लूंगा।

शिक्षक—इस महामन्त्रमे सब अक्षर ३५ पैंतीस हैं। इसे शुद्ध पढ़ना चाहिये।

महामन्त्र ।

१—णमो अरहंताणं	अक्षर	७
२—णमो सिद्धाणं	,,	५
३—णमो आइरियाणं	,,	७
४—णमो उवज्झायाणं	,,	७
५—णमो लोए सव्वसाहूणं	,,	९
		३५

अर्थ—इस लोकमे सर्व अर्हंतोंको नमस्कार हो, इस लोकमे सर्व सिद्धोंको नमस्कार हो, इस लोकमे सर्व आचार्योंको नमस्कार हो, इस लोकमे सर्व उपाध्यायोंको नमस्कार हो, इस लोकमे सर्व साधुओंको नमस्कार हो।

नोट—यहां लोए और सव्व ये दो शब्द पांचो ही पदोंके लिये है। सर्व शब्द भूत, भविष्य, वर्तमानकालको झलकाता है। इसलिये इस मन्त्रमे अनन्त शुद्धात्माओंको नमस्कार है। इस ही लिये इसको महामन्त्र कहते है।

इस जगतमे जितने बडे २ पद है, इन्द्र, धर्णेन्द्र, चक्रवर्ती, महाराजा आदि सर्व जिनको नमस्कार करते है, ऐसे ये पांच पद (offices) है।

जो आत्मध्यानके अभ्याससे चार घातीय कर्मोंको नाश करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख व अनन्त बल इन चार विशेष गुणोंको प्रकाश करके आयु पर्यंत जीवन्मुक्त परमात्मा शरीर सहित होते है, धर्मोपदेश देते हैं, विहार करते है उनको अरहन्त कहते हैं। ये ही अरहन्त जब शेष अघातीय चार कर्मोंको भी नाश कर देते है और शरीर रहित मात्र आत्मा रह जाते हैं, वे सर्व अपने गुणोंका प्रकाश धारते हुए नित्य ज्ञानानन्दमे मगन रहते है तब उनको सिद्ध कहते हैं।

जो साधुओंमें प्रधान व प्रभावशाली होते है, अन्य साधुओमें शासन कर सकते है उनको आचार्य कहते हैं। जो साधुओंमें शास्त्रज्ञानमें प्रधान होते हैं, और अन्य साधुओंको शास्त्र ज्ञान देतेहैं उनको उपाध्याय कहते हैं।

जो मात्र मोक्षका साधन करते है उनको साधु कहते है। अन्तके तीनों ही पद साधुओंके है। मात्र कार्यका अन्तर है। ये सब साधु तेरह प्रकारके चारित्र पालते है।

पाँच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति।

हमको गुणोंका आदर करना चाहिये। जो कोई आत्माए इन पाच पदोंके योग्य गुण पालेती है वे ही अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय या साधु कहलाती है। जिन मन्दिरोमे मूर्ति अरहतोंकी मुख्यतासे विराजमान की जाती है उनकी परम वीतरागताका दृश्य मूर्तिमे रहता है। इस मन्त्रके पढनेसे अनन्त आत्माओंकी भक्ति होजाती है।

आप आत्मध्यानके समय भी इस मत्रको पढकर जप सकते है व गुणोंका विचार कर सकते है।

शिष्य—कृपा करके महाव्रत, समिति, गुप्तिको भी समझा दीजिये।

शिक्षक-पाँच महाव्रत—या महान प्रतिज्ञाए है जिनको साधु पालते है—

१-**अहिंसा महाव्रत**—सर्व प्राणीमात्रकी रक्षा करना, किसीको कष्ट न देना, सर्वपर प्रेमभाव या साम्यभाव रखना।

२-**सत्य महाव्रत**—आत्महितकारक सत्य प्रिय वचन मर्यादापूर्वक कहना।

३-**अचौर्य महाव्रत**—विना दी हुई कोई वस्तु लेना नहीं। स्वय फलादि व जल भी नहीं लेना। गृहस्थ जो भक्तिसे दे उसे ही स्वीकार करना।

४-**ब्रह्मचर्य महाव्रत**—मन वचन कायसे शील व्रत पालना। परिणामोंको काम विकारसे शुद्ध रखना।

५-**परिग्रह महाव्रत**—क्षेत्र, मकान, धन, धान्यादि सामानको त्यागकर ममतारहित निर्ग्रन्थ होजाना। इन्हीं पांच महाव्रतोंकी रक्षाके हेतु पांच समिति पालना चाहिये।

पांच समिति—पांच बातोंका ठीकर वर्ताव।

१-**ईर्या समिति**—दिनमे रौंदी हुई भूमि पर चार हाथ जमीन आगे देखते हुए पग रखना।

२-भाषा समिति—कोमल, मिष्ट, अल्प वचन बोलना।

३-एषणा समिति—जिस भोजनपानको गृहस्थने अपने कुटुम्बके लिये तय्यार किया हो उसीका कुछ भाग भिक्षावृत्तिसे भक्तिपूर्वक दिये जानेपर लेना।

४-आदाननिक्षेपण समिति—अपने शरीरको व शास्त्रको व पीछी कमण्डलादिको देखकर रखना व उठाना।

५-प्रतिष्ठापना समिति—मलमूत्रादि निर्जंतु भूमिपर देखकर करना।

पांचो महाव्रतोंमे सावधान रहनेके लिये तीन गुप्ति पालना चाहिये।

तीन गुप्ति—तीन वस्तुओंको अपने आधीन रखना।

१-मनोगुप्ति—मनको वश रखना, आत्मविचार व साम्यभावमे लगाये रखना।

२-वचनगुप्ति—वचनोंको वश रखना, मौन रहना, काम पडने पर ही अल्प कहना।

३-कायगुप्ति—शरीरके अग उपांगोंको वश रखना, एक आसनसे ही बैठना, लेटना, प्रमाद रूप न रहना।

शिष्य—वास्तवमे ये तेरह प्रकार चारित्र बहुत ही सुन्दर है। मैंने आपसे बहुत उपयोगी बाते जानीं। मैं आपकी कही हुई बातोंको याद रक्खूगा और जिन चार साधनोंको आपने बताया है, कालेजकी पढाई करता हुआ भी साधन करूगा। मुझे समझमे आगया कि मै आत्मा हू। मुझे आत्माकी उन्नतिका हर समय ध्यान रखना चाहिये। सच्ची सुखशांति इसीसे मिलेगी।

आपने मेरे कर्तव्यमें दो बाते बताई थीं। एक सुखशांतिका लाभ, दूसरा परोपकार। पहली बातको मै अच्छी तरह समझ गया हू। परोपकारके सम्बन्धमें मैं पूछना चाहता हू कि मुझे त्याग जीवन बिताना चाहिये या गृहस्थका जीवन। अभी मेरी शादी नहीं हुई है। आप बतावें कि मुझे क्या करना चाहिये?

शिक्षक—आपका प्रश्न बहुत ही उत्तम है। इसमें सन्देह नहीं जितना परोपकार त्यागी जीवनमे हो सकता है उतना गृहस्थमें नहीं हो

सकता है। गृहस्थको घरकी चिन्ताए बहुतसी रहती है। उसे समय भी कम मिलता है, तथापि यह आप स्वय विचार सकते हैं कि आप कौनसा जीवन पालनेकी शक्ति रखते है। परोपकार दोनोंहीमे हो सकता है, एकमें अधिक एकमे कम।

शिष्य—यदि त्यागी जीवनमे रहकर परोपकार किया जावे तो परोपकारकी क्या रीति होगी?

शिक्षक—विवाह न करके त्यागी जीवनको पालनेका वही अधिकारी है जो ब्रह्मचर्यको भले प्रकार पाल सकता हो, जिसने पांचों इन्द्रियोंपर अपना पक्का स्वामित्व प्राप्त कर लिया हो, जो जबानका लोलुपी न हो, सुगन्धका आसक्त न हो, सुन्दरताका प्रेमी न हो तथा ताल, स्वर, गानेका रागी न हो, जिसको सच्ची सुखशांतिकी गाढ रुचि हो, आत्मध्यानका अभ्यासी हो व परोपकारके लिये जीवनतक अर्पण करनेमें कुछ भी सकोच न रहता हो।

परोपकारी त्यागी नवयुवकोंके लिये अभी तेरह प्रकार चारित्र लेकर साधु होनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि साधुकी प्रतिज्ञाओंमे रहते हुए स्वदेश परदेशगमनमे बहुत बाधाए पडेंगी व खानपानकी बहुत कठिनताए होंगी। यह साधुका पद उसीके लिये योग्य है जो बिलकुल विरक्त हो। जिसका मुख्य ध्येय मात्र आत्मसाधन हो, परोपकारकी मुख्यता न हो, आत्मसाधन यथार्थ करते हुए जितना परोपकार सभव हो उतना ही साधन किया जासकता है।

आजकल जैन समाजमे ऐसे त्यागियोंकी जरूरत है जो मनसे विरक्त हों, वीर हों, धैर्यवान हों, विद्वान हों, परिश्रमी हों, दुःखोंके सहनेवाले हों, अपमान व मानको एक समान जानते हों, कष्टोंके पडनेपर भी परोपकारको न त्यागनेवाले हों, सत्यके अनुयायी हों, निर्भीक हों, धनवानोंके मुँह ताकनेवाले न हों, वे बाहरी चारित्र खानपानादिको उतना ही पालें जितने पालनेसे वे हर देशमे जीवननिर्वाह कर सकें, सवारीपर चलसकें, जहाज व रेलपर सफर कर सके, वे मदिरा व नशा न पीवें, मांस न खावें, अन्यायपूर्वक किसीको सतावें नहीं, अन्यायरूप झूठ न बोलें, चोरी

न करें, जरूरी वस्त्रादि व पैसा व नौकर आदि रख सके, ब्रह्मचर्यको अच्छी तरह पाले। उनको रेलपर, जहाजपर बिकता हुआ खान . पान लेनेका परहज न हो, केवल मद्य माससे जरूर बचे। ऐसे त्यागियोंकी बहु सख्यामे इसलिये जरूरत है कि वे भारतमे सर्वत्र जाकर आत्मकल्याणका व सुखशांतिका मार्ग बता सके तथा भारतके बाहर सीलोन, ब्रह्मा, यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, आफ्रिका आदि स्थानोंपर भी जासके और सत्यका प्रचार करसके, सच्चा सुख शांतिका उपाय व परोपकारका मार्ग बतासके, प्राणियोंको मांसाहारसे छुडा सके, जीवदयाका प्रचार कर सके।

इस समय जैन व्यापारी व जैन कर्मचारी ब्रह्मदेशमे, श्याममे, जापानमे, चीनमे, यूरुपमे, आफ्रिकामें प्राय हर जगह फैल गये है। उनको भी उपदेशकी जरूरत है, नहीं तो वे बिगड कर मांसाहारी आदि हो जायगे व जैन धर्मको भूल जायगे। जैन साधु पैदल चलनेवाले व भिक्षासे भोजन करनेवाले वहां पहुच नहीं सकते हैं। जगतमें सत्यका प्रचार करना बहुत जरूरी है।

शिष्य—ऐसे विरक्तोंके लिये भोजनपानादि खर्चका क्या प्रबन्ध होगा?

शिक्षक—जो घरसे धनसम्पन्न है उनको इतना धन कहीं जमा करके त्यागी होना चाहिये जिसके व्याजसे वे अपना सर्व खर्च चला सकें। हां! ऐसे त्यागियोंको यह छुट्टी सबै व मानरहित भावसे रखनी चाहिये कि यदि कोई भक्तिके साथ निमन्त्रण दे, भोजन करावे तो कर लेना चाहिये। यदि कोई यात्रा खर्च व अन्य कार्यके लिये द्रव्य दे तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये व उसे परोपकारमे लगाना चाहिये।

इसके सिवाय जो धनरहित महोदय त्यागी होकर परोपकार करना चाहें उनके लिये एक धर्मप्रचारक सस्था रहनी चाहिये जिसमे योग्य भण्डार रहना चाहिये, जिससे कुछ नियमित सख्याके त्यागियोंका सर्व खर्च जो उनके द्वारा धर्मप्रचारमें हो उसे देना चाहिये। वह सस्था उन धनरहित त्यागियोंके जीवन निर्वाहकी जिम्मेदार होगी। वास्तवमें इस जमानेमे ऐसे ही त्यागी ईसाई पादरियोंकी तरह बहुत कुछ जगतका हित कर सकते हैं। इनको हम पाक्षिक विरक्त श्रावक कह सकेंगे।

जो महाशय इन्द्रियविजय करनेको असमर्थ हैं उनको किसी योग्य

गृहिणीके साथ विवाह करके रहना चाहिये। ऐसे विवाहित युगल भी परोपकारी विरक्त हो सकते है। दोनों युगल साथ साथ रहते हुए धर्म, समाज व जगतकी सेवा करें। यदि वे धनसम्पन्न हों तो धनकी आमदसे सब खर्च चलावें।

यदि वे धनवान न हों और दम्पति परोपकारमे अपनी शक्ति लगाना चाहें तो धर्मप्रचारक संस्थाको व अन्य किसी परोपकारिणी संस्थाको उचित है कि दम्पतिको प्रतिष्ठासहित सादगीसे निर्वाहका सब खर्च देना स्वीकार करके उनकी जीवनपर्यन्त सेवा करें। वे युगल बहुत अधिक धनोपार्जनकी योग्यता रखते हुए भी थोडे खर्चमे सन्तोष करें। आवश्यक खर्च ही लेकर सेवा करें।

संस्थाओके प्रबन्धक, अधिष्ठाता, शिक्षक, सुपरिन्टेन्डेन्ट, संरक्षक, प्रचारक आदि कार्य वे परोपकारभावसे कर सकते है। अन्य जो गृहस्थ-जीवनमे रहकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहे उनको उचित है कि न्यायपूर्वक आजीविकासे धन कमावें व न्यायपूर्वक इद्रियोंके भोग करें, इद्रियोके दास न बनें किन्तु इद्रियों पर स्वामित्व रखते हुए नियमित इद्रिय भोग करें जिससे कभी शरीरमे निर्बलता न हो—वीरता, साहस बना रहे, कोई बीमारी पास न आवे तथा आत्मध्यानके लिये जो साधन अभी हम आपको बता चुके है उनको करते रहें तथा परोपकारके लिये तन, मन, धन खर्च करनेका उत्साह रखे। वे गार्हस्थ जीवनमें रहते हुए समाजका सुधार करें।

बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल विवाह, कन्या विक्रय, पुत्र विक्रय, मरणमे बिरादरीका भोज, आतिशबाजी, वेश्यानृत्य आदि बुराइयोंको दूर करावें। व्यर्थ व्ययको मिटावें। ब्याहादिके खर्चोंको बहुत कम करावें। जनताका धन अधिकतर शिक्षाप्रचारमे खर्च करावें। अनाथ व विधवाओंकी रक्षा करावें। औषधालय, पशुशाला आदिका प्रचार करें। गुरुकुलोंको स्थापित करावें, समय निकाल कर साहित्यकी सेवा करें। अच्छे पत्र निकालें, पुस्तकें लिखें। इन गृहस्थोंको भी दिनमें घण्टा दो घण्टा समय परोपकारके लिये अवश्य निकाल लेना चाहिये।

मानवोंका कर्तव्य है कि वे अन्य मानवोंको शिक्षित, स्वास्थ्ययुक्त, न्यायमार्गी, व आत्मज्ञानी बनावें—उनको सताकर अपना स्वार्थ साधन न करे, किन्तु यथाशक्ति उनके साथ भलाई करे, उनके कष्टोंको मेटे। भूखेको अन्नपान, रोगीको दवाई, अज्ञानीको विद्या, तथा निराश्रय व भयभीतको आश्रय देकर भय रहित करे।

पशुओं, पक्षियों व जलचरोंकी हत्या शिकारके लिये, देवताओं पर बलि देनेके लिये व मांसाहारके लिये न करे। खानपान वस्त्रव्यवहारमें यह ध्यान रखें कि जितनी कम हिंसासे काम चले वैसा वर्ताव करें। पशु समाजपर भी दया पालें, वृथा वे सताए न जावें, इसपर ध्यान रखें।

जो पशु हमारे उपयोगमें आसकते है, उनको पालकर हम उनसे दूध ले, उनसे हल चलाव, उनपर बोझा ढोवें, उनपर सवारी करें परन्तु उनसे उतनी ही मिहनत लेवें जितनी वे आरामसे देसकें। उनको हमें अन्नपान समयपर देना चाहिये। चमडेका व्यवहार हम बहुत अल्प करें क्योंकि इस चमडेके लिये बहुत पशु मारे जाते हैं। हमे छोटे २ जन्तुओं पर भी दया रखनी चाहिये। पानी भलेप्रकार छान कर पीना चाहिये। इससे हमारी भी रक्षा है व हमारे मुखमे कीट व तृणादि नहीं जा सकते। देशकालके अनुसार यथाशक्ति पानी छानकर पीनेका एक साधारण गृहस्थको अभ्यास रखना चाहिये तथा यह भी अभ्यास करना चाहिये कि भोजन दिवसमे किया जावे। इससे रात्रिको उडनेवाले जन्तुओंके प्राण बचते है व अपने भी मुखमे उन जन्तुओंके कलेवर नहीं आते हैं तथा दिवसका दिया हुआ भोजन पचना भी अच्छी तरह है। अपने देशकालके अनुसार जिसमें किसी आवश्यक काममे बाधा नहीं आये इस रात्रिआहार-त्यागका अभ्यास करना चाहिये।

गृहस्थोंको उचित है कि वे भलेप्रकार अपनी ही विवाहिता स्त्रीमें सन्तोष रक्खें तथा वे सम्पत्तिकी एक मर्यादा करलें कि इतना धन पैदा कर लेनेपर हम सन्तोषसे रहकर जीवन बिताएँगे। व्यापारादि द्वारा धन पैदा करनेका काम अपने पुत्रोंको सौंप देंगे। इससे लाभ यह होता है कि तृष्णा अपने वश होती है व अन्तिम जीवनका समय भलेप्रकार परो-

प्रकारमें बिताया जा सकता है। हरएक गृहस्थ अपनी इच्छानुसार सम्पत्तिका प्रमाण कर सकता है। जैसे दसहजार, पचासहजार, एक लाख, दोलाख, दश लाख, एक करोड, दश करोड इत्यादि।

गृहस्थोंको योग्य है कि जब पुत्रादि समर्थ हों व गृहीजीवनसे मन भरगया हो तो वे त्यागका जीवन बिता सकते हैं। जिस तरह त्यागके जीवनका वर्णन हम ऊपर कर चुके है वैसा जीवन बिताया जा सकता है। यदि परिणामोंमे वैराग्य अधिक हो तो तेरह प्रकार चारित्र पालकर साधुका जीवन बिताया जासकता है।

प्रिय भाई! आत्मोन्नति व परोपकार करना यही हमारा मुख्य कर्तव्य है। आप मानवजीवनका सर्व ध्येय समझ गए होंगे।

शिष्य—मै बहुत अच्छी तरह समझ गया हू। अब कल मै आपसे यह जानना चाहता हू कि जैन धर्मके तत्व क्या है।

तीसरा अध्याय।

जैनोंके तत्त्व।

शिष्य—तत्त्व किसे कहते है?

शिक्षक—किसी वस्तुके भावको तत्त्व कहते है। तत् यह सर्वनाम (pronoun) है। तत्का भाव सो तत्त्व है। जो पदार्थ जैसा है उसका वैसा होना भाव है।

शिष्य—जैनोंके तत्त्वसे क्या मतलब है?

शिक्षक—जिन तत्त्वोंको जैन सिद्धान्तमे आत्माका हितकारी बताया गया है उनको जैनोंका तत्त्व कहा गया है। हम पहले बता चुके हैं कि आत्माका सचा हित सुखशांतिकी प्राप्ति है। और यह भी समझा चुके है कि सुख व शांति आत्माका स्वभाव है तथा यह भी बता चुके है कि आत्माका असली स्वभाव शुद्ध है परन्तु ससार अवस्थामे पाप पुण्य रूपी कर्मोंसे मैला है।

जैन तीर्थंकरोंने तथा जैनाचार्योंने आत्माका पूर्ण हित स्वाधीनताका लाभ बताया है, जिसमें आत्माके स्वाभाविक सर्व गुण प्रकाशित होजावें, सर्व कर्मके मैलसे आत्मा छूट जावे। इस ही को मोक्ष या मुक्ति भी कहते है। जब आत्मा पूर्ण मुक्त होजाता है तब इसको परमात्मा कहते हैं। उस ही का सिद्ध कहते है।

मुक्त अवस्थामें परमात्मा सदा अपने स्वभावमे मग्न होकर निजानन्दका भोग करता है। इस ही मुख्य उद्देश्यको ध्यानमे रखकर तत्त्वोंका कथन जैनाचार्योंने किया है। इन तत्त्वोंसे यह बताया है कि यह आत्मा वास्तवमें तो शुद्ध है परन्तु जड कर्मोंके संयोगसे अशुद्ध होरहा है।

इन कर्मोंका किस तरह सयोग होता है और किस तरह इन कर्मोंसे वियोग होता है इतनी ही बात जैन तत्त्वोंमे बताई है। जैसे रोगी रोगसे पीडित हो जब वैद्यके पास जाता है तब वैद्य रोगीकी परीक्षा करके यह बताता है कि तू असलमे तो रोगी नहीं है परन्तु तेरे साथ रोग इस समय लगा हुआ है। तब वह रोग होनेका कारण बताता है, रोग न बढने पावे इसका परहेज बताता है तथा रोग दूर करनेकी औषधि बताता है, जिससे यह रोगसे छूट जावे। अथवा एक मलीन कपडेको साफ करनेके लिये हमे कपडेका और मैलका अलग२ स्वभाव जानना होगा। मैल किस तरह चिपका है, किस तरह मैल अधिक न बढे व किस तरह मौजूद मैलको हटा दिया जावे व मैल हटनेपर यह शुद्ध हो जावेगा।

जो इन बातोको जानता है वही मैलको धोकर कपडेको साफ कर देता है। हरएक मलीन वस्तुको शुद्ध करनेका यही तरीका है। इसी स्वाभाविक जानने योग्य बातको जैनाचार्योंने जैन तत्वमे बताया है। इनका जानना बहुत ही जरूरी है। इनको जाननेसे ही हम अपने आत्माको शुद्ध करनेका उपाय कर सकते है।

शिष्य—जैनोंके तत्त्व कितने है ?

शिक्षक—मुख्य तत्व सात है, इनमे दो और जोडनेसे नौ तत्व या पदार्थ होजाते हैं।

शिष्य—इनको पदार्थ क्यों कहते है ?

शिक्षक—पदसे समझने लायक अर्थको पदार्थ कहते है, अक्षरोंके समूहको पद कहते हैं। जिसका निश्चय करना जरूरी है या जो निश्चय किया जासके उसे अर्थ कहते है। ये नौ निश्चय करनेलायक बातें हैं जो नौ भिन्न२ पदोंके द्वारा जानी जाती है। इसलिये नौ तत्वको पदार्थ कहते हैं।

शिष्य—सात तत्व या नौ तत्वोंके नाम बताइये।

शिक्षक—वे सात तत्त्व है–१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बन्ध, ५ सवर, ६ निर्जरा, ७ मोक्ष।* इनमे पुण्य तथा पाप जोडनेसे नौ तत्व या नौ पदार्थ होजाते है।

शिष्य—इनका कुछ स्वरूप बता दीजिये।

शिक्षक—जो अपने चेतना (consciousness) लक्षण (differentia) को रखने हुए सदा जीता रहे उसे जीव कहते है। चेतनाको उपयोग भी कहते है। ×

शिष्य—लक्षण किसे कहते है ?

शिक्षक—जिस चिह्न या गुणके द्वारा एक पदार्थको दूसरोंसे जुदा पहचान सकें उसे लक्षण कहते है। जैसे निमक व शक्कर दोनों सफेद सफेद दिखते है। निमकका लक्षण खारापना है व शक्करका लक्षण मीठापना है। जबान पर दोनोंको रखनेसे हम निमकको शक्करसे अलग पहचान सकेंगे।

निर्दोष लक्षण उसको कहते है जिसमे तीन दोष न हों—अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असभव। जो लक्षण या चिह्न पदार्थके एक हिस्सेमें पाया जावे, सबमे न पाया जावे वह लक्षण अव्याप्ति दोष सहित है। जो सब पदार्थमे न हो उसे ही अव्याप्ति कहते हैं। जैसे कोई कहे कि जानवर उसको कहते है जिसको सींग हो।

इस लक्षणमे अव्याप्ति दोष है, क्योंकि सींगके विना भी जानवर

---

* जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वं ॥४।१॥ त. सू.

× उपयोगो लक्षणं ॥ ८।५ ॥ त. सू.

मिलते है। या कोई कहे जीवका लक्षण क्रोध करना है, इसमें भी अव्याप्ति दोष है। क्योंकि हर समय जीवमे क्रोध नहीं मिलता। क्रोध बिना भी जीव मिलते हैं। लक्षण उसे ही कहते है जो सदा पाया जावे।

अतिव्याप्ति दोष उसे कहते हैं जो उस पदार्थमे भी रहे जिसका लक्षण करते है और उसके सिवाय अन्य परार्थोमे भी पाया जावे। जैसे गौका लक्षण सींग करना। क्योंकि सींग भेस, हिरन, बकरे आदिमें भी पाए जाते है, इसलिए इस लक्षणमे अतिव्याप्ति दोष है। क्योंकि यह लक्षण उस पदार्थकी हदके बाहर चला गया। इससे गौकी पहचान नहीं हो सकती। या यह कहना कि जीव उसे कहते है जो अमूर्तिक (immaterial) हो।

इसमे भी अतिव्याप्ति दोष है, क्योंकि अमूर्तिक तो आकाश भी है। इससे जीवकी पहचान न हो सकेगी। कोई आकाशको ही जीव मान लेगा। असभव दोष उसको कहते है जो साफ साफ न होता सा दीख पडे। जैसे कहना शक्कर उसे कहते हैं जो मीठी न हो। जीव उसको कहते हैं जो जड हो।

शिष्य—आपने जीवका लक्षण चेतना या समझना बताया। क्या इसमे तीनों दोष नहीं आते हैं? समझा दीजिये।

शिक्षक—चेतनामे अव्याप्ति दोष इसलिये नहीं है कि जितने जीव हैं सबमे कुछ न कुछ समझ पाई जाती है। कीटमे, चींटीमे, मक्खीमे, मोरम, कबूतरम, दानवमे, मबमे चेतना है। जितने सजीव प्राणी है वे चेतना रखते है तब ही जीव सहित कहलाते है। जब चेतना निकल जाती है तब उनको अचेतन, जड, मुर्दा कहते है। वृक्षोंमे भी चेतना है। वे इच्छा करके भूख मिटानेको कमती या ज्यादा हवा लेते हैं, पानी व मिट्टीको खींचते हैं।

अतिव्याप्ति दोष इसलिये नहीं है कि कोई ऐसा और पदार्थ जगतमें नहीं है जो जीव न हो और उसमे चेतना पाई जावे। असम्भव दोष इसलिये नहीं है कि यह हमारे अनुभवमे या जाननेमे बराबर आरहा है कि मैं समझ रहा हू, जान रहा हू। यह बात साफ २ सबको प्रगट है। इसलिये जीवका लक्षण चेतना निर्दोष है।

चेतना लक्षण जिसमे हो वही जीव तत्व है। ससारमे सर्व जीव आठ कर्मोंके सयोगसे है इसलिये ससारी जीवोंको अशुद्ध कहते है। जो कर्मोंके बन्धनसे छूट जाते है उनको शुद्ध, मुक्त व सिद्ध जीव कहते है।

शिष्य—अजीव तत्व किसे कहते है?

शिक्षक—जिसमे जीवका लक्षण चेतना न हो उसको अजीव कहते है। अजीव इस लोकमे पांच है–पुद्गल, आकाश, काल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय।

शिष्य—पुद्गल किसे कहते है?

शिक्षक—पुद्गलका लक्षण स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है।* जिसमे ये चार गुण पाए जावें उसको पुद्गल कहते हैं। जो छुआ जासके, जिसमे कुछ स्वाद हो, जिसमे कोई गन्ध हो, जिसम कोई वर्ण हो वह सब पुद्गल है।

इसीलिये पुद्गलको मूर्तीक (material) कहते है। पुद्गलका उल्था इंग्रेजीमे (matter) मैटर किया जाता है। पुद्गलम ही परस्पर मिलकर एक स्कन्ध या समूहरूप पिंड होजानेकी व स्कन्ध या पिडका बिगडकर विछुड जानेकी शक्ति है। मिलना व विछुडना पुद्गलमे ही होता है। देखिये, हमारे सामने शक्कर रखी है, इसको हम छूसकते, इसका स्वाद लेसकते, इसको सूघ सकते, इसका देख सकते है इसलिये इसमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है, इसीलिये यह शक्कर पुद्गल है। इस शक्करको घोलकर एक शक्करका गोला बना सकते है। फिर चूरा करके एक एक दाना अलग कर सकते है।

हमारी पांचों इन्द्रियोंसे जो ग्रहणमे आता है सब पुद्गल है। स्पर्शन इन्द्रिय या त्वचा या चर्मसे हम ठंडा गरम स्पर्श जानते है। रसना इन्द्रियसे हम रसको जानते है। नाक इंद्रियसे गन्धको जानते है। आंखसे वर्णको जानते हैं। कानसे शब्दको जानते है। शब्द भी पुद्गल है, हम उसे देख नहीं सकते है परन्तु उसका कठोरपना या नम्रपना मालूम करते है।

---

*—स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला ॥ २३।५ त० सू० ॥

यह लोक पुद्गलसे भरा हुआ है। सबसे छोटे पुद्गलको जिसका दूसरा भाग नहीं होसकता परमाणु (particle) कहते हैं। दो परमाणुओंके बने हुए पिंडको लेकर कितनी भी सख्याके परमाणुओंके बने हुए पिंडको स्कन्ध (molecule) कहते हैं।* हमारी किसी भी इन्द्रियमे शक्ति नहीं है जो हम परमाणुओंको जान सकें। स्कन्धोंको हम इन्द्रियोंसे जान सकते है तौ भी बहुतसे ऐसे स्कन्ध हैं जिनको हम इद्रियोंसे नहीं जान सकते है, किन्तु उनका अनुमान उनके कार्योंसे करते है।

ऐसे सूक्ष्म स्कन्धोंमे ही कार्मण वर्गणाए (Karmic molecules) है जिनसे कार्मण या शरीर या पुण्य पापका सञ्चित शरीर बनता है, जैसा हम आपको पहले बता चुके है। पुद्गलका लक्षण हम मूर्तिमय या मूर्तीक (material) भी कर सकते है। क्योंकि मूर्तीकपना (materiality) पुद्गलके सिवाय और किसीमे नहीं पाया जाता है। जैसे जीव अमूर्तीक है वैसे आकाश, काल, धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय भी अमूर्तीक है।

शिष्य—मै भलेप्रकार समझ गया कि यह अपना कर्मरूप सूक्ष्म शरीर, यह स्थूल दिखनेवाला शरीर, यह मेरे शरीरके कपडे, कलम, दावात, कागज, वर्तन आदि सब पुद्गल है तथा मै जाननेवाला जीव हू। अब चार अजीवोंका लक्षण और बताइये।

शिक्षक—आकाश एक अखण्ड अनन्त सर्वव्यापक द्रव्य है जो और सब द्रव्योंको अवकाश देता हे या जगह देता है।+ हम आकाशमे ही चलते, बैठते, खडे होते, हाथ पग फैलाते है। पक्षी आकाशमें उडते है। आकाश (space) के दो विभाग हैं। अनन्त आकाशके मध्यमे जहांतक जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय पाए जावे वह लोक (universe) है। जहां चारों तरफ मात्र आकाश ही है उसे अलोक (non-universe) कहते है।

काल द्रव्य वह है जिसके निमित्तसे सब पदार्थोंमे अवस्थाए बदलती

---

* अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५-५ त० सू०

+ आकाशस्यावगाहः ॥ १८-५ ॥ त. सू.।

हैं।* द्रव्यको पुराना करनेवाला कालद्रव्य है। हमारा कपड़ा कुछ दिनोंमे पुराना पड जाता है, क्योंकि कालद्रव्यकी सहायतासे वह हर समय हाल-तोंको बदलता है।

हम बालकसे युवान तथा युवानसे वृद्ध होजाते है। हमारे शरीरको पुराना होनेमे निमित्त काल (time) है। जगत परिवर्तनशील है, हर क्षणमे बदलता है। कोई वस्तु एक ही दशामे नहीं रहती है—बदलनेवाला काल है। मिनट, घडी, घण्टा, दिन, रात, सप्ताह, मास आदि व्यवहार काल है जो द्रव्यकी अवस्थाए है। काल द्रव्यकी पर्याय सबसे कम काल एक समय (instant) है। समयोंसे मिनट आदि बनते हैं। इस व्यवहार कालका ज्ञानयन्त्र तीन तरहसे होता है।

(१) अवस्थाओंके बदलनेसे, जैसे चावलका भात बना। जितना समय भात बननेमे लगा वह व्यवहार काल है।

(२) एक स्थानसे दूसरे स्थानमे जानेसे, जैसे हम कलकत्तेसे दिहली गए, जितना समय लगा वह व्यवहार काल है।

(३) कई आदमी एक प्रकारके कामको करें व कहींपर जावें इसमे सबका एकसा समय न लगेगा कम व अधिक लगेगा, यही व्यवहार काल है। असली या निश्चय कालद्रव्य कालाणु Time atom) है जो सर्व लोकमे भिन्न २ रत्नोंके ढेरके समान फैले हुए है। ये ही कालाणु उसी तरह अपने पासके पदार्थोंके बदलनेमे कारण है जैसे गाडीके पहियेके पलटानेमे कारण धुरी होती है।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों अलग २ अमूर्तीक अखड द्रव्य हैं। हरएक लोकव्यापी है। धर्मास्तिकाय (midium of motion) जीव और पुद्गलोंको गमन करते हुए उसी तरह मदद देता है जैसे पानी मछलीको चलनेमे मदद देता है। अधर्मास्तिकाय (midium of rest) जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमे मदद देता है जैसे छाया पथिकको ठहरनेमे मदद देती है। ये दोनों चलाने या ठहरानेमे प्रेरक नहीं है।+

---

* वर्तनापरिणामक्रिया परत्वा परत्वे च कालस्य ॥ २२।५ ॥ त. सू.

+—गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार. ॥ १७।५ त० सू० ॥

इन दोनों द्रव्योंका जहांतक फैलावा है वहीं तक जीव पुद्गल जासकते है और फिर ठहर जाते है। इन ही दोनों द्रव्योंके कारण लोक अपनी मर्यादामे स्थिर है, नहीं तो अनन्त आकाशमें जीव पुद्गल चले जाते-सर्व लोक बिखर जाता।

शिष्य—इनको आपने द्रव्य क्यों कहा ?

शिक्षक—जो अपने ही गुणोंमे अवस्था किया करें उसे द्रव्य कहते है। जीव और अजीव तत्त्वोंमे छ द्रव्य गर्भित हैं। एक जीव द्रव्य, पांच अजीव द्रव्य। ये छहों पदार्थ कूटस्थ नहीं है, अपने २ स्वभावोंमें रहते हुए कुछ काम किया करते है इसीलिये इनको द्रव्य (substance) कहते है। छ द्रव्योंके सिवाय जगतमें कुछ नहीं है, इनहीकी सारी रचना है। छ द्रव्योंमे काम करनेवाले (actors) ससारी अशुद्ध जीव और पुद्गल है।

ये चार काम करते रहते है-चलना, ठहरना, जगह पाना तथा बदलना। इनके इन चारो कामोंमे क्रमसे सहायता देनेवाले चार द्रव्य हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। यह नियम है कि हरएक कार्यके लिये दो कारणोकी जरूरत है-एक उपादान या मूल कारण (root or primary cause) दूसरा निमित्त या सहायक कारण (auxiliary cause) जैस रुईसे तागे बने। उपादान कारण रुई है, निमित्त कारण चरखा व चरखा चलानेवाला आदि है। रोटीका उपादान कारण गेहू है, निमित्त कारण चक्की, चकला, आग व बनानेवाली है।

शिष्य—द्रव्यका भी कोई लक्षण है ?

शिक्षक—जो सदा बना रहे, न कभी पैदा हो न कभी नाश हो उसको द्रव्य कहते है। दूसरा लक्षण यह है कि उसमे हर समय तीन बाते पाई जावे-उत्पत्ति, व्यय तथा स्थिरपना (rise, decay and continuity) अवस्थाको बदलते हुए पुरानी अवस्थाका व्यय या नाश होता है। नवीन अवस्थाकी उत्पत्ति या पैदाइश होती है तौ भी मूल द्रव्य अपने गुणोंके साथ बना रहता है।

जैसे सोनेकी डलीकी अँगूठी बनाई गई तब डलीकी दशाका व्यय

हुआ, अँगूठीकी दशाकी उत्पत्ति हुई, सुवर्ण द्रव्य बना हुआ है। चनेका दाना हमारे हाथमे है उसको उँगलीसे मल डाला तब चनेकी दशा बिगडी। चूरेकी दशा प्रगट हुई तो भी जो कुछ चनेमे था, सो ही चूरेमे है। क्रोधभाव किसी जीवमें था, वह जब मिटा तब शांतभाव प्रगट हुआ तथापि जिसमें भाव पलटा वह जीव वही है।

यह लक्षण यदि द्रव्यमे न हो तो द्रव्यसे कोई काम न हो। कोई बाजारसे चांदी खरीद करके लाता है, यदि चांदीका गहना न बने अवस्था न बदले तो चांदी खरीद करके न लावे तथा चांदी अपनी हरएक दशामे बनी न रहे–नाश हो जावे तो भी कोई चांदीको न खरीदे।

द्रव्यका एक लक्षण गुण पर्यायवान पना है, जिसमें गुण तथा पर्याय सदा पाए जावें। गुण द्रव्यके साथ सदा रहता है, पर्याय बदलती रहती है। जैसे चांदी पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण है, उसकी हालत कुछ न कुछ बदलती रहती है, यही पर्याय है। कोई द्रव्य, गुण तथा पर्यायके विना नहीं मिल सकता है।

हम जीव है, चेतना आदि हमारे गुण है, हमारी अवस्था जो कुछ है, या होगी सो पर्याय है।‡

आप समझ गए होंगे कि ये छहों द्रव्य बहुत जरूरी है। ये छहों ही द्रव्य जीव अजीव तत्वमे गर्भित हैं।

शिष्य—हम इन दो तत्वोंको तो समझ गए हैं, अब तीसरे तत्वको समझाइये।

शिक्षक—शुभ या अशुभ कर्मोंके बंधने लायक कार्मणवर्गणाओंके आनेके द्वार या कारणको तथा उन कर्म-पिंडोंके आत्माके निकट आनेको आस्रव कहते हैं। जो कर्मपिंडके आनेके द्वार या कारण हैं उसको भावास्रव कहते हैं और कर्मपिंडके आजानेको द्रव्यास्रव कहते हैं। जैसे नावमें छेद होनेपर पानी आजाता है, छेद पानी आनेका द्वार है, इसी तरह

---

‡–सत् द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥ गुणपर्ययवत् द्रव्यम् ॥ ३८।५ ॥ त. सू।

भावास्रव छेदके समान है और द्रव्यास्रव नावमें पानी आनेके समान है।

हमारे पास तीन कारण अच्छे या बुरे काम करनेके हैं। वे हैं मन, वचन, काय। मनसे हम सोचते हैं इरादा करते है, वचनसे बात करते हैं, शरीरसे क्रिया करते है।

हमारा आत्मा शरीरमात्रमे फैला हुआ है। इसलिये मन या वचन या कायकी कुछ भी क्रिया जब होती है तब आत्मामे हलनचलन होजाता है, इसीको योग कहते हैं। जो सयोग करावे उसे योग कहते हैं। यही योग कर्मवर्गणाओंको खींच लेता है। यही कर्मपिंडीके आनेका द्वार है। इसीलिये इसीको भावास्रव या आस्रव कहते है।*

जब मन वचन कायकी क्रिया शुभ भावोंसे या शुभ इरादेसे की जाती है तब उसको शुभ योग कहते है और जब मन, वचन, कायकी क्रिया अशुभ भावोंसे या बुरे इरादेसे की जाती है तब उसे अशुभ योग कहते है। शुभ योगसे मुख्यतासे पुण्य कर्म बन्धने लायक कर्मपिंड आते हैं। अशुभ योगसे पाप कर्म बंधनेलायक कर्मपिंड आते हैं।+

शिष्य—शुभभाव तथा अशुभ भावोंके कुछ नमूने बता दीजिये।

शिक्षक—शुभ भावोंके नमूने इस तरह हो सकते है—

जीवदया, सत्य वचन बोलनेका भाव, ईमानदारीसे पैसा कमानेका भाव, सन्तोष भाव, ब्रह्मचर्य पालनेका भाव, देवपूजा, गुरुसेवा, शास्त्र स्वाध्याय, सयम, तप या दानके भाव, भूमि देखकर चलनेका भाव, परोपकार भाव, स्वार्थत्याग भाव, दुःख पडनेपर समतासे सहलेनेका भाव सुख होनेपर उन्मत्त न होनेका भाव, क्षमा, विनय, सरलता, शुचिभाव, ममताकी कमी, प्राणीमात्रपर मैत्री, गुणवानोंको देखकर आनन्दभाव, अपनेसे विरुद्ध जो हों उनपर माध्यस्थ भाव या क्षोभ रहित भाव

अशुभ भावोंके नमूने ये हो सकते है—

हिंसक भाव, असत्य वचन बोलनेका भाव, चोरीका भाव, कुशीलका भाव, तीव्र ममता, मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या शास्त्र व मिथ्या धर्मकी

---

* कायवाङ्मनःकर्मयोगः ॥१॥ त सू. ॥ स आस्रवः ॥२॥६॥ त. सू.।

+ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३।६ ॥ त सू.

भक्ति, प्रतिज्ञा या व्रत भग करनेका भाव, दुष्ट या दुर्जनताका भाव, हिंसाके उपकरण बनानेका भाव, दूसरोंको संतापित या दु खित व शोकित करनेका भाव, प्राण लेनेका भाव, रागी होकर रमणीक रूप देखनेका भाव, रागी होकर रमणीक स्त्री आदिके स्पर्शनेका भाव, शास्त्राज्ञा यथार्थ होनेपर भी निरादरका भाव, परिग्रह बढानेका भाव, तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, जिह्वा आदि इंद्रियोंकी लम्पटता, शिकार खेलनेका भाव, मदिरा पीनेका भाव, अभक्ष्य भोजनकी लालसा, वेश्याप्रसग व परस्त्री प्रसगके भाव आदि।

शिष्य—इन अशुभ भावोंके होनेके मूल कारण क्या है?

शिक्षक—मिथ्याज्ञान इंद्रियोंकी इच्छाए और क्रोधादि कषाय है। मिथ्याज्ञान उस ज्ञानको कहते है जो असत्यको सत्य समझे। मैं पहले बता चुका हू कि हमारा आत्मा स्वभावसे पूर्ण ज्ञानमय, पूर्ण शांतिमय तथा पूर्णानन्दमय है। जो ऐसा न समझ कर यह माने कि आत्मा रागी द्वेषी है, शरीरकी अपेक्षा आत्मा ही पशु, पक्षी, मानव, कीटादि है, जो शरीरको और आत्माको, पाप पुण्यमई कर्मको और आत्माको भिन्न २ न जाने, जो ससारके क्षणभगुर सुखको सच्चा सुख माने, जो आत्मीक आनन्दको न जाने, जो ससारके नाशवान धनादि व पुत्रादिको अपना ही जान मोह करे–उनके मोहमे अपने आत्माके गुणोको भुलादे, यह सब मिथ्या ज्ञान है। इसे अविद्या, अज्ञान, मोह भी कहते है।

ससारके जालमे फँसानेका यही मूल है। जिसके भीतर यह मिथ्याज्ञान रहता है वही अपनी स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियोंसे जिन जिन विषयोंको या पदार्थोंको जानता है उनमे रागद्वेष कर लेता है। यदि अच्छे मालूम होते है तो राग करता है, बुरे मालूम होते है तो द्वेष कर लेता है।

जिनको अच्छे जानते हैं, प्यारे जानते है उनके लेनेके लिये या पानेके लिये लोभ कषाय तथा माया कषाय करता है। जब वे मिल जाते हैं तब मान कषाय करके दूसरोको छोटा बडा देखता है। जिनको बुरा समझता है उनसे क्रोध करता है। इस तरह अविद्याके कारणसे इन्द्रियोंके

विषयोंमें लम्पटता होती है और इन्द्रिय विषयोंकी लम्पटतासे क्रोधादि कषायोंमे फंसता है।

बस, कषायोंमे उलझकर अपना स्वार्थ साधनेको यह हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्रीमे रत होजाता है, धनादि परिग्रहमे तीव्र ममता करके उनको बढाता है। ऊपर कहे हुए सब नमूने विषय कषायमे फंसनेके कारणसे है।

शिष्य—शुभ भावोंके होनेमे मूल कारण क्या है?

शिक्षक—मिथ्या ज्ञानकी जगह सम्यग्ज्ञानका होना मूल कारण है। तब सम्यग्ज्ञानी इन्द्रिय भोगोंकी तृष्णा नहीं रखता है। पांचों इन्द्रियोंसे जानकर जिन विषयोंके सेवनसे आत्मोन्नतिमे बाधा नहीं पडे उनको मन्द रागसे सेवन करता है। उसके क्रोधादि चारों कषाय मन्द होते है।

वह जानता है कि मेरे आत्माका सच्चा हित आत्मीक सुखशांतिको पाना व आत्माको शुद्ध करना है। वह जानता है कि इन्द्रियोंके भोगोंसे तृप्ति नहीं होसक्ती है। सच्चा ज्ञानी जगतको एक नाटक समझता है।

यदि सुखकी सामग्री मिलती है तब उसमे उन्मत्त नहीं होता है। यदि दुखकी सामग्री मिलती है तब उसमे घबडाता नहीं है। सुख व दुःखको समता भावसे भोग लेता है। दोनोंको धूप व छायाके समान नाशवन्त जानता है। इसीसे सम्यग्ज्ञानी न्यायमार्गी होजाता है। वह अपने कष्टोंके समान दूसरोंके कष्टोको समझता है इसीलिये उसके मनमें चार भावनाएँ रहती है।

शिष्य—कृपा करके चार भावनाएँ समझा दीजिये।

शिक्षक—मैत्री भावना—सर्व प्राणी मात्रपर प्रेम रखना कि मुझसे यदि उनका कुछ हित हो तो ठीक है।

प्रमोद भावना—गुणवानोंको, सज्जनोंको, धर्मात्माओंको देखकर मनमें प्रसन्न होजाना।

करुणा भाव—दुःखितोको देखकर व जानकर दयाभाव रखना, उनके कष्टोंको दूर करनेका यथाशक्ति उद्यम करना।

माध्यस्थ भाव—जो अपनी सम्मतिसे विरुद्ध हैं उनपर न राग न द्वेष रखना, उनपर उदासीन भाव (indifference) रखना।

सम्यग्ज्ञानी जीवके शुभ मन, वचन, कायोंका वर्तन ऊपर प्रमाण होता है।

शिष्य—मिथ्याज्ञानीके भी जगतमें शुभ मन, वचन, कायका वर्तन देखा जाता है वो कैसे ?

शिक्षक—मिथ्याज्ञानी भी जीव दया पालते हैं, सत्य बोलते है, चोरी नहीं करते है, अपनी स्त्रीमे सन्तोष रखते है, लाभमें सन्तोष रखते हैं, परोपकार करते हैं, दान देते है परन्तु उनका भीतरी आशय आत्म-शुद्धि व सुख शांतिका लाभ नहीं होता है किंतु कुछ और ही होता है।

जैसे हमे पुण्य कर्म बन्धेगा तो ससारका सुख होगा अथवा हमारा जगतमे यश होगा, अथवा समाजमे हम प्रतिष्ठित माने जावेगे, इस तरह किसी भीतरी लौकिक आशयसे बडे २ पुण्यके कर्म करते हैं।

आपको हमने सक्षेपसे यह बता दिया है कि यह अपने ही भावोंसे कर्मपिंडको खींचते हैं, यही आस्रव तत्व है।

शिष्य—अच्छा ! अब कृपा करके बध तत्वको समझाइये।

शिक्षक—जैसे नावमे पानी आकर नावमें भर जाता है तब नाव पानीसे भारी होजाती है, उसी तरह जो कर्मपिंड आता है वह आत्माके कार्मण शरीरके साथ मिलकर ठहर जाता है, इसीको बध कहते है। बन्ध चार तरहका होता है-**प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध अनुभागबंध।**

यह बध वास्तवमे मन, वचन, काय योगोंसे तथा क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंके कारण होता है। बधके कारणोंको भाव बध कहते हैं। कर्मोंके बन्धनेको द्रव्य बध कहते हैं। जब कर्म बधता है तब जैसी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति होती है उसीके अनुसार उन कर्मपिंडोंमें जो बधते हैं प्रकृति या स्वभाव पड जाता है व उसीके अनुसार कर्मपिंडोंकी सख्या नियमित होती है कि इतना कर्मपिंड इस इस प्रकृतिका बधा उसे प्रदेश बंध कहते हैं।

ये दोनों प्रकृति और प्रदेश बन्ध योगोंसे होते हैं, कर्मपिंड तब बधता है जब उसमें कालकी मर्यादा पडती है कि ये कर्मपिंड इतने

कालतक बन्धे रहेंगे व इस कालके पीछे न रहेंगे। इस कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं। कषायकी तीव्रता व मन्दताके कारण कर्मोंमें स्थिति अधिक या कम पडती है। इसी समय उन कर्मपिंडोंमें तीव्र या मन्द फल-दानकी शक्ति पडती है उसको अनुभाग बन्ध कहते हैं। यह बन्ध भी कषायके अनुसार अधिक या कम होता है। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायोंके अनुसार होते हैं।

वास्तवमे मन, वचन, काय और कषाय ही बन्धके कारण है। जैसे हम भीतमे लाल रग पोत दे तो लाल रगका भीतके साथ बन्ध होजायगा, उसमें भी चार भेद मालूम पडेंगे। उस रगका स्वभाव तो प्रकृति बन्ध है, कितना रग चिपटा सो प्रदेश बन्ध है, कितने कालतक चिपटा रहेगा वह स्थितिबन्ध है, उसकी तीव्रता या मन्दता अनुभाग बन्ध है।× कर्मोंकी प्रकृति यह आठ तरहकी होती है—ज्ञानावरण आदि, यह हम आपको बता चुके है। कर्म बधनेके पीछे उसी तरह पकते रहते हैं जैसे खेतमे बीज बोनेपर वृक्ष पकता है। वे ही कर्म अपनी मर्यादाके भीतर फल देकर झडते भी जाते हैं।

जैसे हम इस दिखनेवाले शरीरमे हवा, पानी, भोजन खाते है वे ही हमारे भीतर स्वभावसे पककर खून आदि बन जाते हैं उन ही का वीर्य बनता है, वीर्यसे ही हम चलते फिरते व काम करते हैं, हमारे अग उपगमें शक्ति रहती है, वैसे ही हम इस सूक्ष्म शरीरमें आप ही पुण्य व पाप कर्म बांधते हैं व आप ही उसका अच्छा या बुरा फल भोगते हैं। आस्रव और बध तत्त्वोंमे हमे यह ज्ञान होता है कि हम किस तरह हर समय कर्मोंको बांधकर अशुद्ध होते रहते है। आप समझ गए होंगे कि ये दोनों तत्त्व कितने जरूरी हैं।

शिष्य—वास्तवमें बहुत जरूरी हैं। अच्छा, कृपाकर आप पांचवें संवर तत्त्वको बताइये।

शिक्षक—आस्रवका विरोधी संवर है। कर्मपिंडके आनेका रुक

× सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः।
प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः॥ २, ३। अ. ८ त. सू.

जाना जो सवर है। जिन भावोंसे कर्म रुकते है उनको भावसवर कहते है, कर्मोंके रुक जानेको द्रव्य सवर कहते हैं।+

हम पहले बता चुके है कि मन, वचन, कायकी क्रियाओंसे कर्मपिंडोंका आस्रव होता है। अशुभ मन, वचन, कायसे पापकर्म तथा शुभ मन, वचन कायसे पुण्य कर्म आता है। यदि हम चाहते है कि पाप कर्म न आने पावे तो हमे चाहिये कि हम अशुभ मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको बद कर द।

जैसे हमको जुए खेलनेकी आदत हो तो जुएको त्याग दें। किसीको सतानेकी व किसीके प्राणघात करनेकी आदत हो तो हम सताना व प्राणघात करना छोड दे। झूठ वचन बोलनेकी आदत हो तो झूठ वचन बोलना छाड द, चोरी करनेकी आदत हो तो हम चोरी करना छोड दे, मदिरा पीनेकी आदत हो तो हम मदिरा पीना छोड दें, भांग पीनेकी आदत हो तो हम भांग पीना छोड दे, वेश्या प्रसग व परस्त्री प्रसगकी आदत हो तो वेश्या या परस्त्री प्रसग छोड दे।

अपने मन, वचन, कायको पापके द्वारोंसे बचानेके लिये हमको सच्चे भावमे उनके त्यागकी प्रतिज्ञा लेलेनी चाहिये फिर उस प्रतिज्ञाको दृढतासे पालनी चाहिये। मानवोंकी बुरी आदतोंको सुधारनेके लिये प्रतिज्ञा बडी आवश्यक बात है।

हम यह भी बता चुके है कि अशुभ भावोंके मूलकारण मिथ्याज्ञान, इद्रियोंकी इच्छाएँ तथा क्रोधादि कषाय है। अशुभ भावोंसे बचनेके लिये हमे सम्यग्ज्ञान, इद्रियोंका निरोध (control of senses) व कषायोंका वश करना या शांत रखना (peacefulness) आवश्यक है। हमको यह सच्चा ज्ञान रखना चाहिये कि हम आत्मा है। हमारा असली स्वभाव कर्मबन्ध रागद्वेषादि व शरीरादिसे भिन्न हैं। सच्चा सुख व सच्ची शांति हमारे ही आत्मामे है। हमे दुःख पडनेपर आकुलित व ससारके सुख होनेपर उन्मत्त न होना चाहिये।

शरीरको एक दिन छूटनेवाला समझकर इस ही शरीरके रहते हुए

+ आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १।१ ॥ त सू.

आत्मोन्नति व परोपकार कर लेना चाहिये। स्त्री, पुत्र, मित्रादिको मात्र शरीरका थोडे दिनका साथी मानना चाहिये। आत्मा अकेला ही शरीरमें आता है व अकेला ही मरता है, तथा अकेला अपने कर्मोंका फल भोगता है, ऐसा समझकर मोहमें पडकर अपने आत्माको पापोंमे नहीं फसाना चाहिये।

धर्म व नीतिसे चलकर जगतके स्नेहमे अपनेको न उलझाना चाहिये। इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना चाहिये। उनके वशमें पडकर अनुचित काम नहीं करना चाहिये। क्रोध, मान, माया, लोभको अपने आधीन रखकर शांत भाव, कोमल भाव, सरल भाव तथा सन्तोष भाव रखना चाहिये।

जीवोंके भाव तीन तरहके होते हैं—अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग, शुद्ध उपयोग। bad thought-activity, good thought-activity, pure thought-activity. अशुभ उपयोगसे पापकर्म बंधता है, शुभ उपयोगसे पुण्यकर्म बंधता है, शुद्ध उपयोगसे कर्मोंका नाश होता है।

पापकर्मसे बचनेके लिये हमे अशुभ उपयोग छोडना चाहिये। शुभ उपयोगमे वर्तना चाहिये। जब हमको शुद्ध उपयोगका लाभ होगा तब पुण्यकर्मका आना भी बन्द हो जायगा। आत्माको सर्व कर्मबन्धसे बचानेका उपाय शुद्ध उपयोग है।

शिष्य—कृपाकर निर्जरातत्वको बताइये।

शिक्षक—कर्म अपने समयपर फल दिखला करके झडते हैं। इसको सविपाक निर्जरा कहते हैं। आत्मध्यानको लिये हुए तप करनेसे व इच्छाओंको निरोध करनेसे जब भावोंमें वीतरागता होती है तब बांधे हुए कर्म अपने पकनेके समयके पहले ही विना फल दिये हुए झड जाते है। इसको अविपाक निर्जरा कहते हैं।* जैसे नावके भीतर भरे हुए पानीको धीरे धीरे निकाल दिया जावे और नये पानीके आनेका छेद बन्द कर दिया जावे तो वह नाव चलनेलायक होकर सीधी अपने स्थान पर चली जायगी, इसी तरह संवरके द्वारा जब नये कर्मोंको रोक दिया

* तपसा निर्जरा च ॥ ९—३

बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ १०—२ ॥ त०

जाता है और आत्मध्यानके द्वारा धीरे२ कर्मोकी निर्जरा की जाती है तो बन्धे हुए कर्म दूर किये जाते हैं तब आत्मा कभी न कभी कर्मोसे खाली या मुक्त होजाता है।

शिष्य—मोक्ष तत्व किसे कहते हैं।

शिक्षक—आत्माका सर्व कर्मोसे छूट जानेको व नवीन कर्म बन्ध होनेके कारणोंके मिट जानेको मोक्ष तत्व कहते हैं। मोक्ष होजानेपर आत्मा शुद्ध होजाता है। इसी शुद्ध आत्माको सिद्ध कहते है।

इस सात तत्वोंसे यह भलेप्रकार जान लिया जाता है कि आत्मा अशुद्ध कैसे होता है व शुद्ध कैसे हो सकता है। इसी लिये इनका जान लेना जरूरी है।

शिष्य—पुण्य पापका क्या स्वरूप है?

शिक्षक—पुण्य कर्मको पुण्य व पाप कर्मको पाप कहते हैं। सात तत्वोंके भीतर इनका स्वरूप गर्भित है। आस्रव तत्व और बन्ध तत्वमे ये दोनों आ जाते है।

शिष्य—फिर इनको अलग कहनेका क्या प्रयोजन है?

शिक्षक—क्योंकि जगतमे पुण्य व पाप प्रसिद्ध है। इसीलिये इनको कहा गया है कि जगतके प्राणी समझ सके कि पुण्य कर्मका व पाप कर्मका बन्ध कैसे होता है तथा उनका फल क्या होता है।

शिष्य—आठ कर्मोमे कौन पाप है कौन पुण्य है?

शिक्षक—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय ये चार घातीय कर्म तो पापरूप ही है, शेष चार अघातीयमे पाप पुण्य दो भेद है। शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र व सातावेदनीय पुण्य कर्म है तथा अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र तथा असातावेदनीय पाप कर्म है।

इन नौ तत्व या पदार्थोंका विशेष स्वरूप आगे बताएगे।

शिष्य—मुझे जैन तत्वोंको जानकर बडा ही आनन्द हुआ। मैं रोज एक घडी आपको दूगा। अब कल आऊंगा, आप कुछ और, विशेष बातें बतावे।

चौथा अध्याय ।

जीवतत्त्व ।

शिष्य—जीवतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ और जरूरी बातें हों तो बताइये।

शिक्षक—जीवोंके प्राण पाए जाते हैं जिनसे ये जीते थे, जीते है व जीते रहेंगे। निश्चयनयसे या मूलद्रव्यके स्वभावसे तो एक जीवका एक चेतना (consciousness) प्राण है तो कभी छूटनेवाला नहीं है। व्यवहारनयसे ससारी जीवके मूल चार प्राण पाए जाते है—इद्रिय, बल, आयु, श्वासोछ्वास। जिनके द्वारा हम स्पर्श रस गध वर्ण शब्द जान सकें उनको इद्रिय कहते है वे पांच हैं—**स्पर्शन इंद्रिय, रसना इंद्रिय, घ्राण इंद्रिय, चक्षु इंद्रिय, कर्ण इंद्रिय।**

जिनसे हम शक्तिपूर्वक कुछ काम कर सकें उसको बल कहते हैं वे तीन प्रकार है—**कायबल** जिससे चलते, उठते, उठाते, धरते हैं। **वचनबल** जिससे शब्द निकालते या बात करते। **मनबल** जिससे हित अहितका व कारण कार्यका विचार करते है। जिसके असरसे हम एक स्थूल शरीरमे बने रहते है वह आयु है। जिमसे हमारे शरीरमे रक्त आदिका मचार होता है ऐसी हवाको लेना व निकालना सो श्वासोच्छ्वास है। इन चार प्राणों (Vitalities) के दश भेद होजाते हैं।

ससारी जीवोंके मूल दो भेद है—स्थावर, त्रस। एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा स्पर्शको जाननेवाले स्थावर होते है। वे पांच प्रकारके है—

१-पृथ्वीकायिक—जीव सहित पृथ्वी—जैसे खेतकी व खानकी।

२-जलकायिक—जीव सहित जल—जैसे कूपका, नदीका।

३-अग्निकायिक—जीव सहित आग—जैसे अग्निकी लौ।

४-वायुकायिक—जीव सहित पवन—जैसे ठडी समुद्रकी हवा।

५-वनस्पतिकायिक—जीवसहित वृक्ष, फूल, फल, शाखा, पत्ते आदि।

इन पांच तरहके एकेन्द्रिय जीवोंके चार प्राण होते हैं— स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोछ्वास।

दो इन्द्रिय जीवसे लेकर पांच इन्द्रिय तक जीवोंको त्रस कहते हैं। त्रसोंके पांच भेद नीचे प्रकार होंगे—

(१) **द्वेन्द्रिय जीव**—जिनके स्पर्शन और रसना ऐसी दो इन्द्रियां पाई जाती हैं। जैसे-लट, शंख, सीप, केचुवा आदि। **इनके** छ प्राण पाए जाते हैं।

स्पर्शन इद्रिय, रसना इद्रिय काय बल, वचन बल, आयु, श्वासोछ्वास।

शिष्य—इनके वचन बल होता है तो क्या य शब्द करते हैं?

शिक्षक—जिनके बल होता है उनके शब्द करनेकी शक्ति होती है। कोई २ बोलते मालूम पडते हैं जैसे समुद्रके शंख व सीप।

(२) **तेन्द्रिय जीव**—जिनके स्पर्शन, रसना घ्राण तीन इद्रिय होती है जैसे चींटी, खटमल, जू, विच्छू, कुन्थु आदि।

इनके सात प्राण होते हैं–तीन इन्द्रिय, काय बल, वचन बल, आयु, व श्वासोछ्वास।

(३) **चौन्द्रिय जीव**—जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इद्रियें होती हैं जैसे–मच्छर, मक्खी, भौंरा, भिंड, आदि। इनके आठ प्राण होते हैं–चार इद्रिय, दो बल, आयु, श्वासोछ्वास।

(४) **पञ्चेन्द्रिय जीव**— असैनी (मन विना) जिनके पांचों इद्रियें होती है कान भी होते है जैसे–कोई २ पानीमे उपजनेवाले सांप। इनके मन बल विना नौ प्राण होते है।

(५) **पंचेन्द्रिय सैनी**—(मनसहित) जिसमे पांचों इद्रिय मन सहित होती हैं ऐसे जीव तिर्यञ्च गतिमें तीन प्रकारके होते है—

(१) थलचर–जैसे हिरण, गाय, भैंस, बकरी, सिंह, कुत्ता, बिल्ली, घोडा, हाथी, ऊँट आदि।

(२) जलचर–जैसे मगरमच्छ, मच्छ, कच्छप, मछली आदि।

(३) नभचर-जैसे कबूतर, मोर, मुरगा, तोता, मैना, तीतर, काक चील आदि।

मनुष्य गतिमें सर्व ही मानव, नरकगतिमें सर्व नारकी, देवगतिमें सर्व देव, इन सबके दश प्राण होते हैं।

शिष्य—मन किसको कहते हैं ?

शिक्षक—एक कमलके आकार सूक्ष्म चिह्न पुद्गलोंका बना हुआ हृदयमे होता है इसके बलसे कारण कार्यका तर्कबुद्धिके साथ विचार किया जाता है।

शिष्य—इन प्राणोंके जाननेका क्या प्रयोजन है ?

शिक्षक—हिंसा तथा अहिंसाको समझनेके लिये इनका जानना जरूरी है। आपको हम बता चुके हैं कि जीव स्वभावसे अविकारी है उसका मरण नहीं होता। शरीर तो जड ही है। इसीलिये प्राणोंकी हिंसाको हिंसा कहते हैं। प्राणोंकी रक्षाको अहिंसा या दया कहते है।

हरएक प्राणीके पास जितने प्राण हैं वे उसके लिये बडे कामकी चीजे है। इनहीके द्वारा वे प्राणी इस स्थूल शरीरमें रहते हुए अपना अपना काम करते हैं। यदि हम उनको मार डालेंगे, हमने उनके प्राणोंको नाशकर उनके काममे विघ्न डाला यही अपराध किया।

जितने अधिक व जितने मूल्यवान प्राणोंका घात किया जायगा व उनके बिगाडसे प्राणीको कष्ट दिया जायगा उतना ही अधिक अपराध होगा। जितने कम व कम मूल्यवान प्राणोंका घात किया जायगा व उनके बिगाडसे प्राणीको कष्ट दिया जायगा उतना ही कम अपराध होगा।

सबसे कम अपराध स्थावरोंके घातका है, उससे बहुत अधिक द्वेइन्द्रियोंके घातका, उससे बहुत अधिक तेन्द्रियोंके घातका, उससे बहुत अधिक चौन्द्रियोंके घातका, उससे बहुत अधिक पञ्चेन्द्रिय असैनीके घातका, उससे बहुत अधिक पञ्चेन्द्रियसैनीके घातका, उनमे पशुके घातसे मानवके घातका अधिक पाप, मानवोंमें भी साधुके घातका, परोपकारीके घातका साधारण मानवकी अपेक्षा अधिक दोष है।

पशुओंमें भी इसी तरह उपयोगिताके विचारसे कम व अधिक अपराध है। इसीलिये यह उपदेश है कि दयावान प्राणीको दया तो सब पर रखना चाहिये। अपने जरूरी कामोंके लिये जितनी कम हिंसासे काम चले वैसा

वर्ताव करना चाहिये। स्थावरोंके भीतर दो प्रकारके भेद हैं-सूक्ष्म तथा बादर। त्रस सब बादर होते है।

जो किसी भी इन्द्रियसे न मालूम पडे व जो इतने महीन हों कि बादरोंसे उनका घात न हो न वे परस्पर घात कर सके उनको सूक्ष्म स्थावर कहते हैं। ऐसे पांचों तरहके स्थावर सर्व लोकमे भरे है। बादर रुक भी जाते है व घाते भी जाते है व परस्पर भी वे घात करते हैं।

इस तरह आपको यह मालूम होना चाहिये कि इस सर्व लोकमें सात तरहके ससारी जीव है-एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय बादर, द्वेन्द्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, पञ्चेंद्रिय असैनी, पञ्चेन्द्रिय सैनी। इनके भीतर दो २ भेद होते है-पर्याप्त developable अपर्याप्त non-developable.

शिष्य—पर्याप्त अपर्याप्तको समझा दीजिये।

शिक्षक—पर्याप्त उनको कहते हैं जो शरीरादि बननेकी शक्तिको पूर्ण करते है। अपर्याप्त उनको कहते है जो शरीरादि बननेकी शक्तिको विना पूर्ण किये ही एक श्वासके अठारवें भाग समयमे अवश्य मरजाते हैं। यहां श्वास एक तन्दुरुस्त मानवकी नाडी चलनेको कहते हैं। ४८ मिनट या एक मुहूर्तमे ऐसे ३७७३ श्वास होते है।

जब कोई जीव कहीं जन्मता है तब जो पुद्गल स्थूल शरीरके बननेके लिये ग्रहण करता हे उनमे शरीरादि बननेकी शक्ति पडती है। जैसे बीज खेतमे डालने पर जो बीज जम जाता है उसमे वृक्ष होनेकी शक्ति बन गई ऐसा मानना होगा। ऐसी पर्याप्तियां छ होती है-आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोछ्वास, भाषा व मन। एकेंद्रियोंके पहली चार, द्वेन्द्रियसे पचेंद्रिय असैनीतक भाषाको लेकर पांच, सैनी पचेन्द्रियोके छहों पर्याप्तिये होती है।

जो पुद्गल शरीर बननेके लिये लेता है उसको स्थूल व सरलरूप करनेकी शक्तिको आहारपर्याप्ति कहते है, इसी तरह और पांचोंको भी समझ लेना चाहिये। जैसे शरीररूप करनेकी शक्तिकी प्राप्ति शरीरपर्याप्ति है।

सातों प्रकारके प्राणी या तो पर्याप्त होते है या अपर्याप्त। बहुतसे पापी प्राणी जन्मते ही मर जाते हैं। यदि हम जगतके सर्व प्राणियोंके भिन्न २ समूह करें तो चौदह होंगे। अर्थात् चौदह जगह उनको बांटकर

ढेर कर सकेंगे। इन समूहोंको जैन सिद्धांतमें चौदह जीवसमास (Soul classes) कहते हैं। क्या आपके चौदह समूहोंके नाम लेसकेंगे?

शिष्य—मैं समझ गया, चौदह जीव-समास इस तरह कहेंगे। १—एकेंद्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त, २—एकेंद्रिय सूक्ष्म पर्याप्त, ३—एकेंद्रिय बादर अपर्याप्त, ४—एकेंद्रिय बादर पर्याप्त, ५—द्वेंद्रिय अपर्याप्त, ६—द्वेंद्रिय पर्याप्त, ७—तेंद्रिय अपर्याप्त, ८—तेंद्रिय पर्याप्त, ९—चौंद्रिय अपर्याप्त, १०—चौंद्रिय पर्याप्त, ११—पचेंद्रिय असैनी अपर्याप्त, १२—पचेंद्रिय असैनी पर्याप्त, १३—पचेंद्रिय सैनी अपर्याप्त, १४—पचेंद्रिय सैनी पर्याप्त।

शिष्य—जीव तत्वके सम्बधमे और कोई जरूरी बात है?

शिक्षक—जीव सब अपनी उन्नति व अवनतिके लिये आप ही स्वतत्र है। ये जीव आप ही पाप पुण्यकर्म बांधते हैं व आप ही उनका फल सुख दुःख भोगते है। ये स्वय कर्ता है व स्वय भोक्ता है। निश्चय-नयसे ये जीव अपने शुद्ध भावोंके करनेवाले है व अपने शुद्ध आत्मीक आनन्दके भोगनेवाले है, परन्तु कर्म सहित अवस्थामे अशुद्ध निश्चयनयसे ये जीव रागद्वेषादि भावोके कर्ता है व मै सुखी व मैं दुःखी इस भावके भोक्ता है, क्योंकि ये भाव ज्ञान शक्तिधारी जीवके ही है।

वे भाव स्वाभाविक नही है, अशुद्ध हैं, इसलिये अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे ये जीवके है। शुद्ध निश्चयनयसे ये जीवके नहीं है क्योंकि यदि जीवके स्वभावका विचार कर तो ये भाव नहीं मिलगे।

व्यवहारनयसे यह जीव कर्मोको बांधनेवाले व घट पट मकानादिके करनेवाले हैं व कर्मोंके फलको भोगनेवाले है। निश्चयसे जीव अपने भावोंके ही करनेवाले है। क्योंकि उन भावोंके निमित्तसे कर्म आप ही बन्ध जाते हैं या हाथ पैर आदि चलकर घटपट मकानादि बन जाते है। इसलिये व्यवहारसे कर्ता कहलाते है। या जीव निश्चयसे अपने भावोंको ही भोगते हैं, क्योंकि सुख या दुखरूप भाव कर्मोंके फलसे या बाहरी कारणसे होता है। इसलिये व्यवहारनयसे ही जीव इनके भोक्ता हैं ऐसा कहनेमें आता है।

जीवोंकी उन्नति करनेके लिये चौदह श्रेणियां हैं इनको गुणस्थान

(spiritual stages) कहते हैं। इन श्रेणियोंको पार करके जीव परमात्मा होता है।

शिष्य—क्या आप इनको नहीं समझाएँगे ?

शिक्षक—यदि आप ध्यान देके सुनेंगे तो हम जरूर बताएंगे क्योंकि इनका जानना बहुत जरूरी है, ये हमारी उन्नतिके मार्ग है।

शिष्य—मै आपके वचनोंपर बहुत ध्यान देरहा हू, आप अवश्य बतावें।

शिक्षक—पहले इनके नाम समझ लो व लिखलो। १-मिथ्यात्व गुणस्थान, २-सासादन गु०, ३-मिश्र गु०, ४-अविरत सम्यग्दृष्टि गु०, ५-देशविरत, ६-प्रमत्तविरत, ७-अप्रमत्तविरत, ८-अपूर्वकरण, ९-अनिवृत्तिकरण, १०-सूक्ष्मसांपराय, ११-उपशांत मोह, १२-क्षीणमोह, १३-सयोगकेवली, १४-अयोगकेवली। *

मानव जीवनकी उन्नतिकी तीन अवस्थाए होती है:-१-गृहस्थ, २-साधु, ३-अरहत (पूज्य)।

इन चौदह गुणस्थानोंमेसे पहलेसे लेकर देशविरत गुणस्थान तक अर्थात् पांच गुणस्थान गृहस्थोंके होने है। प्रमत्तविरत छठेसे लेकर क्षीणमोह बारहवे गुणस्थानतक सात गुणस्थान साधुओंके होते है। दो अन्तके गुणस्थान अर्हतोंके होते है। इन गुणस्थानोंका सम्बन्ध मोहनीयकर्म तथा योगोंसे है। मोह और मन, वचन, कायके योग ही ससारके मूल हैं।

जितना जितना मोहका असर घटता जाता है उतना उतना गुणस्थानका दरजा बढता जाता है। जब ये दोनों मोह और योग बिलकुल नहीं रहते है तब आत्मा परमात्मा, मुक्त या सिद्ध होजाता है। मोहनीय कर्म आठों कर्मोंमे बडा ही बलवान है, इस कर्मके अट्ठाइस (२८) भेद समझनेकी जरूरत है, आप लिख ले।

---

* मिथ्यादृक्सासनो मिश्री संयतो देशसंयत ।
प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्तिकरणौ तथा ॥ १६ ॥
सूक्ष्मोपशांतसंक्षीणकषाया योग्ययोगिनौ ।
गुणस्थानविकल्पाः स्युरिति सर्वे चतुर्दश ॥ १७ । २ ॥ त० सार ।

शिष्य—आप कहिये मैं बराबर लिखता आरहा हू।

शिक्षक—मोहनीय कर्मके मूल दो भेद हैं-(१) दर्शन मोहनीय जो आत्माके सम्यग्दर्शन गुणको या आत्म प्रतीतिको बिगाडे।

(२) चारित्र मोहनीय जो आत्माके शांत भावको या वीतरागता रूप चारित्र गुणको बिगाडे।

दर्शन मोहनीयके तीन भेद है-(१) मिथ्यात्व कर्म। जिसके उदय या असरसे सच्चा श्रद्धान बिलकुल न हो। (२) सम्यक्त मिथ्यात्व कर्म-जिसके उदयसे सच्चा झूठा मिला हुआ मिश्र श्रद्धान हो जसे दही गुडका मिला स्वाद आवे। सम्यक्त कर्म-जिसके उदयसे सम्यग्दर्शन या सच्चे विश्वासमे कुछ मल या दोष लगे-निर्मल सम्यक्त न हो। चारित्र मोहनीयके पच्चीस भेद हैं-**सोलह कषाय** और **नौ नोकषाय** या ईषत् कषाय या हल्के कषाय।

४—अनतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ जो मिथ्यात्वको मदद दे, जिसके उदयसे सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरणचारित्र (आत्मलीनता-रूप भाव) न हो।

४—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। जिसके उदयसे अप्रत्याख्यान अर्थात् थोडा त्याग या श्रावकके व्रत न होसक-जो देशविरतको रोके।

४—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। जिसके उदयसे पूर्णत्याग या मुनिके व्रत न होसके, जो मुनिके महाव्रतोंको रोके।

४—सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, जिसके उदयसे यथाख्यात चारित्र या पूर्ण वीतरागता न हो, जो यथार्थ व नमूनेदार चारित्रको रोके।

९-**नोकषाय**—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, वेद, पुवेद, नपुसकवेद (तीन प्रकारका कामभाव)।

इस प्रकार २५ कषाय हुए।

ऊपरके कथनसे आपने जाना होगा कि-क्रोध, मान, माया, लोभ, चार चार प्रकारका होता है। अर्थात् अन० क्रोध, अप्र० क्रोध, प्रत्या० क्रोध, सज्वलन क्रोध इत्यादि।

चार प्रकारके क्रोधके दृष्टांत हैं—१-पत्थरकी रेखाके समान बहुत कालमें मिटे, २-पृथ्वीकी रेखाके समान कुछ कालमे मिटे, ३-धूलमे रेखाके समान जल्दी मिटे, ४-जलमे रेखाके समान तुर्त मिटे।

चार प्रकार मानके दृष्टांत हैं—१-पत्थरके खंभेके समान जो न नमे, २-हड्डीके समान कठिनतासे नमे, ३-काठके समान जल्दी नमे, ४-वेतके समान तुर्त नम जावे।

चार प्रकार मायाके दृष्टांत हैं—१ वांसकी जडके समान, टेढ़ापन, जिसका सीधा होना कठिन हो, २-मेंढ़ेके सींगके समान कठिनतासे सीधा हो, ३-गोमूत्रके समान टेढ़ापन जल्दी मिटे, ४-खुरवेके समान तुर्त मिटे।

चार प्रकार लोभके दृष्टांत—१-किरमिचके रंग समान न मिटनेवाला, २-रथके पहियेके रग समान कठिनतासे मिटे। ३-शरीरके मलके समान जल्दी मिटे, ४-हल्दीके रंगके समान तुर्त उड जाय।

अब आप गुणस्थानोंका स्वरूप जल्दी समझ जॉयगे।

१-मिथ्यात्व गुणस्थान—जिस दरजेमें रहते हुए जीवको अपने आत्माका विश्वास न हो कि यह असलमें परमात्माके समान शुद्ध है। इसका स्वभाव ज्ञातादृष्टा अविनाशी वीतराग व परमानन्दमय है। न आत्मीक आनन्दकी श्रद्धा हो, इंद्रिय सुखको ही सुख जाने। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व धर्म पर व सात तत्त्वों पर श्रद्धान न हो। इस दरजेमे मिथ्यात्व कर्म और चार अनन्तानुबन्धी कषायका उदय रहता है। सर्व संसारी प्राणी इसी दरजेमें पडे है।

इस श्रेणीवाला मन सहित पञ्चेन्द्रिय जब गुरु व शास्त्र द्वारा सात तत्त्वों पर विश्वास लाता है-आत्माको यथार्थ जानता है, बारबार आत्माका मनन करता है तब इसके ये पांचों ही कर्म मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय उपशम हो जाते हैं, अंतर्मुहूर्तके लिये दब जाते हैं तब उपशम सम्यग्दर्शन पैदा हो जाता है। ४८ मिनटसे कमको अंतर्मुहूर्त कहते है तब पहले गुणस्थानसे एकदम चौथे अविरत सम्यग्दर्शनमे आ जाता है। यहां आकर मिथ्यात्व कर्मके तीन विभाग हो जाते हैं-मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व या मिश्र और सम्यक्प्रकृति कर्म।

अंतर्मुहूर्त पीछे अनन्तानुबन्धी कषायका उदय आ जाता है तो दूसरे गुणस्थानमे गिर पडता है। यदि मिश्रका उदय आ जाता है तो चौथेसे तीसरेमे आ जाता है। यदि तीसरे सम्यक्त कर्मका उदय हो जाता हैं तो उपशमसे क्षयौपशम सम्यक्दर्शन हो जाता है। जो कुछ मलीन होता है तब गुणस्थान चौथा ही बना रहता है।

२–सासादन—यह गुणस्थान चौथेसे गिर करके ही बहुत थोडे कालके लिये होता है। जैसे वृक्षसे फल भूमि पर गिरे। बीचमें बहुत थोडा काल लगता है। जिसको अधिकसे अधिक छ. आवली कहते है। यहांसे तुर्त नियमसे पहले गुणस्थानमे आ जाता है। यहां मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है, किन्तु अनन्तानुबन्धी कषायका उदय होता है। इस दरजेसे कोई ऊपर नहीं चढ सकता है।

३–मिश्र—यहां मिश्र दर्शनमोहनीयका उदय होता है, अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं होता है। यहां सच्चे झूठे मिले हुए श्रद्धान होते हैं।

४–अविरत सम्यग्दर्शन—यहां सच्चा तत्वोंका सद्धान, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्मका श्रद्धान होता है। यहां आत्माकी सच्ची प्रतीति होती है। इस दरजेमे जीव स्वाधीनताका प्रेमी होजाता है। आत्मीक आनन्दका रोचक हो जाता है। संसारका सुख विरस दीखता है। यद्यपि यह अहिंसादि पांच अणुव्रतोंको नहीं स्वीकारता है उससे अविरत है तथापि इसके भावोंमे चार गुण पैदा होजाते हैं।

(१) प्रशम–शांतभाव, (२) संवेग–धर्मानुराग व संसारसे वैराग, (३) अनुकम्पा–प्राणी मात्रपर दया, (४) आस्तिक्य–नास्तिकताका अभाव, परलोकमें श्रद्धा। यहांसे मोक्षमार्गका चलनेवाला होजाता है। यहांसे धर्म-ध्यानका प्रारम्भ होजाता है। यहांसे तत्वज्ञानी, अन्तरात्मा या महात्मा कहानेयोग्य होजाता है।

यह तत्वज्ञानी सुख दुःख पडनेपर समभाव रखता है। स्वार्थ त्याग करके जगतकी सेवा करता है। यह गृहस्थके योग्य सर्व लौकिक काम कर सकता है। राज्यप्रबन्ध, सेनाप्रबन्ध, देशरक्षार्थ युद्ध, व्यापार, शिल्पकार्य

आदि । देशपरदेश भ्रमणादि । उपशम सम्यग्दर्शनधारी अन्तर्मुहूर्त व क्षयोपशम सम्यग्दर्शनधारी दीर्घकाल तक ठहर सकता है ।

यदि कोई दर्शनमोहनीयके तीनों कर्मोंको और चार अनन्तानुबन्धी कषायोंको सर्वथा क्षय कर डाले तो वह इस दरजेमे क्षायिक सम्यक्तीधारी हो जाता है जो फिर कभी छूटता नहीं मोक्षावस्थामे भी रहता है ।

५-**देशविरत**—जब श्रावकके एक देश त्यागको रोकनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका उपशम हो जाता है । तब पांचमा दर्जा प्रारम्भ होता है । यहा श्रावकका चारित्र शुरू होजाता है । हिसा, असत्य, चोरी, कुशील परिग्रह इन पांच पापोंको त्यागकर अहिंसादि पांच अणुव्रत धार लेता है और साधुके चारित्रकी योग्यता बढानेके लिये ग्यारह श्रावककी श्रेणियोंमे चारित्रको बढाता चला जाता है ।

यहां जब आत्मानुभवके अभ्यासमे प्रत्याख्यानावरण कषायोंका भी उपशम हो जाता है तब यह सर्व परिग्रह त्याग कर साधु हो जाता है । ध्यानमे बैठ जाता है तब पांचवेसे सातमा गुणस्थान अप्रमत्तविरत हो जाता है । इसका काल अन्तर्मुहूर्त है । इसके पीछे वह गिरकर प्रमत्तविरत छठे गुणस्थानमे आता है । इसका काल भी अन्तर्मुहूर्त है । साधु पुन पुन छठे सातवेमे आवागमन करता रहता है, जबतक आगेके गुणस्थानमे न चढे ।

६-**प्रमत्तविरत**—यहां मात्र सज्वलन चार कषाय और नौ नोकषायोंका तीव्र उदय रहता है । इस दरजेमे साधुजन आहार, विहार, उपदेश, शास्त्र पठन आदि व्यवहार काम करते हैं । यदि इन कार्योंके करनेमे अन्तर्मुहूर्तसे अधिक समय लगे तो बीच बीचमे सातमा गुणस्थान कुछ देरके लिये होजाया करता है । चाहे एक मिनटके लिये क्यों न हो, यहांतक कुछ आत्मध्यानमे प्रमाद या आलस्य रहता है । इसलिये इस गुणस्थानको प्रमत्तविरत कहते हैं । नीचेके पांच पांच गुणस्थानोंमें भी प्रमाद रहता है । नीचे २ अधिक प्रमाद होता है ।

७-**अप्रमत्तविरत**—यहां प्रमाद नहीं होता है । ध्यानमय अवस्था रहती है । यहां चार सज्वलन व नौ नोकषायोंका मंद उदय है । यहांसे आगे दो श्रेणियां है—एक उपशम श्रेणी जहां चारित्रमोहनीयको उपशम

किया जाता है। दूसरी क्षपक श्रेणी जहां उसका क्षय किया जाता है। उपशम श्रेणीके ८, ९, १०, ११ चार गुणस्थान हैं। क्षपकश्रेणीके ८, ९, १०, १२ चार गुणस्थान है। आठवेंसे बारहवें तक हरएक गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त है। ये सब ध्यानमय गुणस्थान हैं। ग्यारहवेंसे लौटकर पीछे क्रम क्रमसे नीचे आता है। ग्यारहवेंसे बारहवमे नहीं जा सकता है।

८-अपूर्वकरण—यहां उन चार कषाय व नौ नोकषायोंका अति मंद उदय हो जाता है। यहां बड़े निर्मल भाव होते है।

९-अनिवृत्तिकरण—यहां साधुके और भी बड़े शुद्ध भाव है। यहां ध्यानके प्रतापसे नौ नोकषाय और क्रोध, मान, माया इन तीन कषायोंको उपशम श्रेणीवाला उपशम कर देता है व क्षपकश्रेणीवाला क्षय कर देता हे।

१०-सूक्ष्मसांपराय – यहां साधुके मात्र सूक्ष्म लोभका उदय रहता है।

११-उपशांत मोह—यहां साधुका सर्व चारित्र मोहकर्म उपशम होगया है, वीतरागभावमे रहता है।

१२-क्षीणमोह—यहां साधुके सर्व मोहनीयकर्म पूर्णपने नाश हो गया है। यथार्थ वीतरागता प्रगट हो जाती है। यहां ध्यानके बलसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्मोंका नाश करके तेरहवे गुणस्थानम जाता है।

१३-सयोगकेवली—यहां अर्हन्त परमात्मा हो जाता है। चारों घातीय कर्म क्षय हो जाते हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तबल ये चार मुख्य गुण प्रगट हो जाते है। इस दशामे अर्हन्तका उपदेश व विहार उनकी आयु पर्यंत हुआ करता है। कुछ काल आयुके शेष रहने पर चौदहवां गुणस्थान होता है।

१४-अयोगकेवली—यहां मन, वचन, कायका कोई हलनचलन नहीं होता है। आयुके अन्तमे वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, इन चारों अघातीय कर्मोंका भी नाश हो जाता है तब आत्मा बिल्कुल शुद्ध होकर जड़ पुद्गलसे रहित सिद्ध परमात्मा हो जाता है। अब कोई शरीर नहीं रहता है। क्या आप समझ गए?

शिष्य—मैं अच्छी तरह समझ गया, वास्तवमें ये गुणस्थान बड़े ही उपयोगी है।

शिक्षक—अब मे आपको चौदह मार्गणाए बताता हूं। ससारी जीवको जहां तलाश किया जावे व जिन अवस्थाओंमे ये पाए जावें उनको मार्गणा (soul quest) कहते हैं।

ये मार्गणाए चौदह है—१-गति, २-इन्द्रिय, ३-काय, ४-योग, ५, वेद, ६-कषाय, ७-ज्ञान, ८-सयम, ९-दर्शन, १०-लेश्या, ११-भव्य, १२-सम्यक्त, १३-सैनी, १४-आहारक।*

१-गति चार होती है—नरक, तिर्यंच (पशु), मनुष्य, देव। सर्व ससारी जीव इन चार गतियोंमेसे किसी एक गतिमे पाए जाते हैं। वृक्षादि एकेंद्रियसे चौंद्री तक सब तिर्यंच गतिम होते है। पचेंद्रिय चारों ही गतियोंमे होते है।

२-इंद्रियाँ पांच होती है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण। सर्व ससारी जीव कोई एकद्रियवाले, कोई दो इद्रियवाले, कोई तीन इन्द्रियवाले, कोई चार इद्रियवाले, कोई पाच इद्रियवाले मिलेंगे।

३-काय छ होती है—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक। सर्व एकेन्द्रिय जीव पांच स्थावर पृथ्वी आदिमे तथा द्वेंद्रियसे पचेंद्रिय तक सब त्रसकायमे मिलेंगे।

४-योग—तीन होते है-मन, वचन, काय। एकेंद्रियोंके काय योग होता है, द्वेन्द्रियोसे लेकर असैनी पचेन्द्रिय तकके वचन और काय दो योग होते है, पचेंद्रिय सैनीके तीनों योग होते है।

५-वेद—(कामभाव-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसक वेद। चार इद्रिय तक सबके नपुसक वेद होता है। पचेन्द्रियोंके सबके तीनों वेद होते है। परन्तु नारकियोंके मात्र नपुसक वेद होता है। देवोंके स्त्री व पुरुष दो ही वेद होते है।

---

*-गत्यक्षकाययोगेषु वेदक्रोधादिवित्तिषु,
वृत्तदर्शनलेश्यासु भव्यसम्यक्त्वसंज्ञिषु।
आहारके च जीवानां मार्गणाः स्युश्चतुर्दश ॥ ३०१ ॥ गो० सार ॥

६-कषाय—चार-क्रोध, मान माया, लोभ। ये चारों कषाय सर्व ससारी जीवोंके नौमे गुणस्थान तक पाई जाती हैं। लोभ दसवें गुणस्थान तक रहता है।

७-ज्ञान—आठ-मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय, केवल, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। सर्व मिथ्यादृष्टि जीवोंके कुमति व कुश्रुतज्ञान दो ज्ञान होते है परन्तु नारकी और देवोंके कुअवधिज्ञान भी मिथ्यादृष्टि अवस्थामें होता है। सम्यक्‌दृष्टि सर्व जीवोंके मति व श्रुत दो ज्ञान होते है।

ऐसे मनुष्य व तिर्यञ्चोंके किन्हीं२ के अवधिज्ञान भी होता है। देव नारकी सम्यग्दृष्टियोंको भी अवधिज्ञान होता है। साधुओंके मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्ययज्ञानतक होते है। अर्हंतोके एक केवलज्ञान ही होता है।

८-संयम—सात प्रकार- असयम, देशसयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यातचारित्र। पहले चार गुणस्थानोंतक असयम होता है, व्रत नहीं होने है। पांचवें गुणस्थानमे देशसयम होता है। छठे सातवेमे साधुओंके सामायिक, छेदोपस्थाना, परिहार वि० तीन सयम होते है। आठवें नौमे गुणस्थानोंमे सामायिक व छेदोपस्थापना दो सयम होते हैं। सूक्ष्मसांपराय दसवें गुणस्थानमे, फिर ग्यारहसे चौदह गु० तक यथाख्यात चारित्र होता है।

९-दर्शन—चार-चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल। अचक्षुदर्शन (आंखके सिवाय और इद्रियोंसे सामान्य जानना) यह पांचों इंद्रिय-वालोंके होता है। चक्षुदर्शन चौइंद्री और पञ्चेंद्रियोंके होता है। अवधि-दर्शन अवधि ज्ञानियोंके व केवलदर्शन केवलज्ञानियोंके होता है।

१०-लेश्या—छ.-कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल। ससारी जीवोंकी जो मन वचन कायकी प्रवृत्ति कषाय सहित होती है उसको लेश्या (.thought point) कहते हैं। पहली तीन अशुभ हैं। कृष्ण अशुभतम (worst), नील अशुभतर (worse) कापोत अशुभ (bad); तीन शुभ हैं-पीत-शुभ (good), पद्म शुभतर (better), शुक्ल-शुभतम (best)। इन भावोंके अनुसार पाप पुण्य बंधता है। चौइन्द्री तकके जीवोंके सर्व नारकियोंके तीन अशुभ लेश्याएं होती हैं।

पंचेंद्रि असैनीके पीततक चार लेश्याएं होती है। पचंद्रियोंके चौथे गुण-स्थान तक छहों लेश्याएं होती है। आठवेंसे तेरहवें तक शुक्ललेश्या होती है। यद्यपि ११, १२, १३ म गुणस्थानमे कषाये नहीं होती है तथापि मन, वचन, काय योग है, इससे शुक्ललेश्या होती है।

११-भव्य—दो प्रकार-भव्य, अभव्य। जिनमे आत्मज्ञान प्राप्तिकी योग्यता है वे भव्य जीव है। जिनमें सम्यग्दर्शन या आत्मप्रतीति होनेकी योग्यता नहीं है वे अभव्य है।

१२-सम्यक् दर्शन—इस मार्गणाके छ भेद है—उपशम सम्यक्त, क्षायिक सम्यक्त, क्षयोपशम सम्यक्त, मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र। यहां तीन पहले गुणस्थानोको भी इसलिये लिया गया है कि श्रद्धानकी ये तीन अशुद्ध जातियां है। इन छहोंमेसे ससारी जीवके कोई न कोई एक वक्त पाया जायगा।

१३-सैनी—दो-सैनी तथा असैनी। मनसहित सैनी है, मनरहित असैनी होते है।

१४-आहारक—दो प्रकार-आहारक, अनाहारक। स्थूल शरीर बनने योग्य पुद्गल जो ग्रहण करे वे आहारक है, जो न ग्रहण करे वे अनाहारक है। जब जीव एक शरीरको छोडकर दूसरे शरीरके लिये जाता है तब यह टेढा विदिशाओम नहीं जाता है, किन्तु सीधा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर, नीचे इन छ दिशाओके द्वारा जाता है।

एक दफे मुडनेमे एक समय, दो दफे मुडनेमे दो, तीन दफे मुडनेमे तीन समय लगते है। समय इतना सूक्ष्म है कि पलक मारनेमे बहुतसे समय बीत जाते है। कोई जीव कहीं भी जावे उसको तीन समयसे अधिक समय बीचमे न लगेगा। बीचकी अवस्थाको विग्रहगति कहते है। जितने समय बीचम लगते है उतने समय तक अनाहारक कहलाता है, फिर आहारक होजाता है।

यदि कोई किसी स्थानमे बिना मोडा लिये सीधा जाता है तो वह अनाहारक नहीं होगा, क्योंकि बीचमे कोई समय नहीं लगा। एक कोनेसे दूसरे कोनेमे जानेमे बीचमें एक मोडा होगा।

इस शकलमे अ को एक

मोडा लगेगा। चौदहवें अयोग गुणस्थानमे भी जीव अनाहारक होता है। वहां किसी पुद्गलको नहीं ग्रहण करता है क्योंकि वहां खींचनेवाला योग नहीं है।

सर्व ससारी जीवोंके इन चौदह मार्गणाओंमेसे कोई न कोई मार्गणा अवश्य होती है। जब कि चौदह गुणस्थानोंमेसे एक ही गुणस्थान एक जीवके एक समयमे होता है। जैसे एक मिथ्यादृष्टि कुत्तेके ऊपर विचार करें जो हमारे सामने बैठा हुआ रोटी खा रहा है तो नीचे प्रकार चौदह मार्गणाए होंगी —

(१) **गति**--तिर्यञ्च गति।

(२) **इन्द्रिय**—पचेन्द्रिय।

(३) **काय**—त्रस काय।

(४) **योग**—मन, वचन, काय तीनों योग।

(५) **वेद**—तीनों सम्भव है। यद्यपि वह बाहरसे पुलिंग है, परन्तु उसके भावोंमें तीनों प्रकारके भाव हो सकते है। एक दफे एक प्रकारका कामभाव होगा। नपुसकवेद दोनोका मिश्रित कामभाव होता है।

(६) **कषाय**—क्रोधादि चारों हो सकती है। एक समयमे एक कोई होगी।

(७) **ज्ञान**—कुमति, कुश्रुत दो ज्ञान हैं। यह अज्ञानी है। एक समयमें एक ज्ञान होगा।

(८) **संयम**—असयम है, क्योंकि अहिंसादि व्रत नहीं है।

(९) **दर्शन**—अचक्षु, चक्षु दो दर्शन हैं। एक दफे एक होगा।

(१०) **लेश्या**—छः होसकती है। एक दफे एक होगी।

(११) **भव्य**—भव्य, अभव्य दोमेसे एक होसकता है।

(१२) **सम्यक्त**—मिथ्यात्व एक प्रकारका श्रद्धान है। यदि कभी सम्यक्त होजावे तो क्षायिकके सिवाय पांचों मार्गणाओंमे एक समयमें एक होगी, तब ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि छः सभव है।

(१३) **सैनी**—सैनी मनसहित हैं।

(१४) **आहारक**—आहारक है क्योंकि पुद्गलको समय २ ग्रहण करता है।

शिष्य—आपने बहुत उपयोगी बात बताई । अच्छा बताइये, कुत्तके गुणस्थान कितने है ?

शिक्षक—कुत्ता पशुगतिम है । पशुओमे पहले पांच गुणस्थान हो-सकते हैं । गुणस्थान एक समयमे एक ही होगा । इस कुत्तेके तो पहला गुणस्थान है । अच्छा, अब आप वृक्षकी चौदह मार्गणाए कह जावें ।

शिष्य—वृक्षकी चौदह मार्गणाए नीचे प्रकार होंगी—

(१) **गति**—तिर्यच गति ।

(२) **इन्द्रिय**—एकेन्द्रि ।

(३) **काय**—वनस्पति काय ।

(४) **योग**—काययोग एक ।

(५) **वेद**—नपुंसक बेद ।

(६) **कषाय**—चारो कषाय ।

(७) **ज्ञान**—कुमति, कुश्रुत ।

(८) **संयम**—असयम ।

(९) **दर्शन**—अचक्षुदर्शन, क्योंकि यह स्पर्शन इद्रियसे ही सामान्यसे जानता है ।

(१०) **लेश्या**—तीन हो सकती है-कृष्ण, नील, कापोत ।

(११) **भव्य**—भव्य, अभव्य दोमेसे एक हो सकता है ।

(१२) **सम्यक्त**—मिथ्यात्व है ।

(१३) **सनी**—असैनी है ।

(१४) **आहारक**—आहारक है, स्थूल पुद्गलोंको लेरहा है ।

शिक्षक—बहुत ठीक बताया । अच्छा, एक व्रती श्रावकके, जो देश-विरत गुणस्थानमे है, चौदह मार्गणाए कह जावें ।

शिष्य—मै कहता हू—

(१) **गति**—मनुष्य गति ।

(२) **इंद्रिय**—पचेंद्रिय ।

(३) **काय**—त्रसकाय ।

(४) **योग**—तीनों ।

(५) **वेद**—तीनों भावोंकी अपेक्षा ।

(६) **कषाय**—चारों कषाय।

(७) **ज्ञान**—मति, श्रुत अवधि तीनों सभव हैं।

(८) **संयम**—देश सयम एक।

(९) **दर्शन**—चक्षु, अचक्षु अवधि तीनों सभव है।

(१०) **लेश्या**—तीन शुभ होगी।

(११) **भव्य**—भव्य जीव है. अभव्य देशव्रती नहीं हो सकता है।

(१२) **सम्यक्त**—उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक* तीनोंमेसे एक।

(१३) **सैनी**—सैनी।

(१४) **आहारक**—आहारक।

अब यह तो मै समझ गया। कुछ और समझाइये।

शिक्षक—आपको हम यह बता चुके है कि यह जीव अपने शरीरके आकार रहता है, यद्यपि इसका मूल आकार लोकाकाश प्रमाण असख्यात प्रदेशी है अर्थात् लोकाकाशमे व्यापक हो सकता है परन्तु इसमे नाम कर्मके उदयसे सकोच विस्तार होता है।

इसलिये जैसा शरीर पाता है, उसी प्रमाण रहता है। यदि शरीर फैलता है तो जीवका आकार भी फैलता है। शरीरके प्रमाण आकार रखते हुए भी समुद्घातके समय यह जीव अपने मूल शरीरसे फैलकर कुछ दूर बाहर जाता है फिर शरीर प्रमाण हो जाता है।

मूल शरीरको न छोडकर तैजस कार्मणरूप दो सूक्ष्म शरीरोंके साथ जीवके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना उसको समुद्घात कहते है। वे समुद्घात सात हैं—

वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, आहारक, केवली।×

---

* केवली, श्रुतकेवलीके निकट क्षायिक सम्यक्त पैदा होता है। इसलिये इस कालमें नहीं होता है। दो हो सकते हैं।

× मूलसरीरमछंडिय, उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामंतु ॥ ६६७ ॥
वेयणकसायवेगुव्वियोय मरणंतिओ समुग्घादो।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥ ६६६ ॥ गो० जी०

शिष्य—क्या इनका स्वरूप समझावेंगे ?

शिक्षक—अवश्य, ये बड़े कामकी बातें हैं।

(१) वेदना या शरीरमें कष्ट होनेपर आत्माके प्रदेशोंका कुछ दूर बाहर निकलना, वेदना समुद्घात है।

(२) क्रोधादि कषायोंकी तीव्रतासे आत्माका कुछ दूर फैलकर निकलना कषाय समुद्घात है।

(३) जिनको शरीर बढानेकी व एक शरीरके अनेक शरीर बनानेकी शक्ति है उनके आत्माके प्रदेश नाना प्रकारके बने हुए शरीरोंमें फैल जाते हैं, इसको वैक्रियिक समुद्घात कहते हैं। जितने देव हैं वे कभी मूल शरीरसे कहीं नहीं जाते हैं, वे दूसरे शरीर एक साथ एक व कई बना सकते हैं, उनमें आत्माके प्रदेश फैला सकते हैं उन ही शरीरोंको भेजकर काम ले सकते हैं।

देव अनेक तरहसे पशु पक्षी आदिका शरीर भी बना सकते हैं। उनके शरीरके पुद्गल ऐसे होते हैं जिनमें नाना रूपमें बदलनेकी शक्ति होती है। नारकी भी अपने शरीरको भिन्न २ रूपोंमें बदल सकते हैं। वे अनेक शरीर नहीं बना सकते हैं। साधुओंको भी योगाभ्याससे अपने शरीरको बढ़ाने घटाने व बदलनेकी शक्ति होती है।

(४) कोइ कोई जीव मरनेके अन्तर्मुहूर्त पहले जहां उनको मरकर जन्म लेना है उस योनिस्थानको फैलकर स्पर्श कर आते हैं फिर मरते हैं इसे मारणांतिक समुद्घात कहते हैं।

(५) योगाभ्याससे जिनको ऋद्धियें सिद्ध हो जाती हैं वे साधु शुभ या अशुभ तैजस समुद्घात करते हैं। किसी साधुको रोग व दुर्भिक्ष आदिका प्रचार देखकर दया आ जाती है। तब उसके दाहने कंधेसे तैजस शरीर (electric body) के साथ आत्माके प्रदेश फैलते हैं और सकटके कारणको मेट देते हैं। यह शुभ तैजस समुद्घात है।

किसी साधुको किसीके द्वारा दुर्वचन सुनने पर व प्रहारादि कष्ट दिये जाने पर क्रोध आ जाता है और वह वशमें नहीं रह सकता है तब साधुके बाएं कन्धेसे अशुभ तैजस शरीरके साथ आत्माके प्रदेश फैलकर निकलते

हैं जिससे क्रोधका लक्ष्य फैलकर भस्म कर दिया जाता है और साधु भी उससे भस्म होकर दुर्गति पाते है।

(६) आहारक समुद्घात किसी ऋद्धिधारी साधुके मस्तकसे पुरुषाकार एक सूक्ष्म पुतला आत्माके प्रदेशोंके साथ केवली या श्रुतकेवलीके निकट जाकर उनके दर्शन करके तुर्त आता है। जिससे कभी साधुको कोई शंका होती है वह दूर हो जाती है।

(७) केवली समुद्घात–उसको कहते है कि जब किसी अर्हतकी आयु कम हो व अन्य कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तो उसके आत्माके प्रदेश तीन लोकमे फैल जाते है और फिर शरीराकार हो जाते हैं जिससे सर्व कर्मोंकी स्थिति आयु कर्मके बराबर हो जाती है।

शिक्षक—क्या इनमेसे किसी बातकी परीक्षा की गई है?

शिष्य—इस समय परीक्षा होना बहुत ही दुर्लभ है, क्योंकि महान योगीश्वर नहीं मिलते है। परन्तु ये सब बातें सम्भव प्रतीत होती है, क्योंकि आत्मामे अनन्तबल है व ध्यानसे बडी बडी योग्यताए झलक जाती हैं।

यह तो आपको मालूम होगा कि बिजलीकी शक्ति आजकल बडा बडा अपूर्व काम करती है। कई हजार मील पर बजनेवाला बाजा या गाना सुनाई दे सकता है। विना तारके सम्बन्धके बिजलीके जोरसे ही फोग्न शब्द दूर दूर फैल जाता है।

शिष्य—जीवतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ और जाननेकी जरूरत है।

शिक्षक—जीवोंके भाव पांच तरहके होते हैं–औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

शिष्य—क्या इनका स्वरूप समझाएंगे?

शिक्षक—इनका स्वरूप जानना बहुत जरूरी है। आत्मा और कर्मोंका सम्बन्ध प्रवाहकी अपेक्षा अनादिकालसे चला आ रहा है। कर्मोंका असर आत्माके भावों पर पडता है और आत्माके अशुद्ध भावोंसे कर्मोंका बन्ध होता है। हम आपको बता चुके हैं कि आठ कर्मोंका बन्ध इस जीवके साथ है उनके कारणसे जैसे जैसे भाव जीवके होते हैं उनको बतानेके लिये पांच भेद जीवोंके भावोंको प्रसिद्ध हैं।

इनको समझनेके लिये एक दृष्टान्त जान लेना चाहिये। जैसे पानीमें मिट्टी मिली हो तब यदि हम निर्मली फल डाल दें तो मिट्टी पानीके नीचे बैठ जायगी; ऊपर पानी साफ दिखलाई पडेगा। परन्तु जरा हिलनेसे फिर मिट्टी ऊपर आ जायगी। इस पानीकी दशाको उपशम पानी कहेंगे अर्थात् ऐसा पानी जिसमे मिट्टी दबी हुई है, दूर नहीं हुई है।

यदि मिट्टीको जो नीचे बैठ गई है उससे पानीको अलग कर दूसरे बर्तनमे लेलें तो वह पानी बिलकुल साफ दीखेगा, उसमें मिट्टीका सम्बन्ध बिलकुल नहीं रहा, इससे यह पानी हिलानेसे भी मैला नहीं होगा। इसे क्षायिक पानी कहेंगे। यह ऐसा पानी है जिसमेसे मिट्टी बिलकुल दूर होगई है। यदि मिट्टी मिले पानीमेसे नीचे बैठी हुई कुछ मिट्टीको निकाल फेंक दें, कुछ मिट्टीको नीचे बैठे रहने दे व हिलानेसे कुछ मिट्टी पानीमे घुलीगई भी हो ऐसे कुछ मलीन पानीको क्षयोपशम पानी कहेंगे।

जिस पानीमे मिट्टी बिलकुल मिली हुई है उस पानीको औदयिक पानी कहेंगे क्योंकि मिट्टीके असरसे पानी मैला होरहा है। इसीतरह पहले चार भावोंको आप समझ लीजिये।

(१) कर्मोके उपशम या दबनेसे जो भाव प्रगट हों उनको औपशमिक भाव कहते हैं।

(२) कर्मोंके नाशसे जो भाव प्रगट हों उनको क्षायिक भाव कहते है।

(३) कर्मोंके कुछ क्षय कुछ उपशम कुछ उदय या असरसे जो भाव हो उनको क्षयोपशमिक भाव कहते है।

(४) कर्मोंके उदयसे या असरसे जो मलीन भाव हो उसको औदयिक भाव कहते हैं। इन चारोंके चार दर्शन समझ लीजिये—

(१) **उपशम सम्यग्दर्शन**—यह आत्मप्रतीति भाव मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायके उपशमसे प्रगट होता है।

(२) **क्षायिक सम्यग्दर्शन**—यह शुद्ध आत्म प्रतीतिरूप भाव दर्शन मोहकी तीन प्रकृति और चार अनन्तानुबन्धी कषायके क्षयसे होता है।

(३) **मतिज्ञान**—यह क्षयोपशम भाव है। मतिज्ञानावरण कर्मोंके क्षय या उपशमसे तथा उसीके कुछ उदयसे मतिज्ञान पैदा होता है।

(४) **क्रोधभाव**—यह क्रोधके उदयसे होता है।

(५) **पाँचवाँ पारिणामिक भाव** किसी खास कर्मकी अपेक्षासे नहीं है, इसको स्वाभाविक भाव भी कहते है।

दैव व पुरुषार्थ—हम इस सम्बन्धमें पहिले बता भी चुके है। यहां यह समझ लेना चाहिये कि जितना आत्माका गुण, कर्मोंके उपशम, क्षय या क्षयोपशमसे प्रगट होता है उसको पुरुषार्थ कहते हैं। कर्मोंके उदयको दैव कहते है।

आठ कर्मोमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तरायका सदा ही क्षयोपशम रहता है, कभी इनमे बिल्कुल उपशम नहीं होता है न कभी इनका सर्वथा उदय होता है। इनका क्षय होकर केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त बल प्रगट होता है। क्षयोपशम होते हुए जितना उदय है वह उदय भी होता है। अर्थात् क्षय, उपशमके साथ उदय होता है, अकेला उदय नही होता है। इसलिये इन तीन कर्मोंके सम्बन्धसे क्षयोपशमिक और क्षायिक दो ही प्रकारके जीवके भाव होते है। उदयकी अपेक्षा औदयिक भी ले सकते है परन्तु औपशमिक भाव इनमे न होगा।

मोहनीय कर्ममें उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक व औदयिक चारों भाव होगे।

आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय इन चार अघातीय कर्मोंमे दो ही भाव होगे—औदयिक और क्षायिक। इनमें औपशमिक और क्षयोपशमिक भाव नहीं होते है। ये कर्म उदय होकर फल देते है या नाश कर दिये जाते हैं।

चार अघातीय कर्मोंके उदयको दैव कहते हैं। इसी तरह चार घातीय कर्मोंका जितना उदय है उसको भी दैव कहते हैं। जितना घातीय कर्मोंके उपशम, क्षय या क्षयोपशमसे आत्माका गुण प्रगट होगा उसको पुरुषार्थ कहते हैं।

यह पुरुषार्थ प्राणीमात्रमें कम या अधिक पाया जाता है। इसीके

सहारेसे सर्व प्राणी अपने कामके लिये उद्यम किया करते है। वृक्ष भी इसी पुरुषार्थसे पानी व मिट्टी खींचता है। प्राणियोंकी उन्नति व अवनतिके जिम्मेदार प्राणी होते है। उनको अपने ज्ञान दर्शन व आत्मबलसे विचार करके हरएक लौकिक या पारलौकिक काम करना चाहिये। कर्मोंका उदय कैसा होनेवाला है, उसे हम नहीं जान सकते है, अतएव हमे अपने पुरुषार्थसे धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंका साधन करना चाहिये।

विघ्न होनेपर अपने दैवको दोष देना चाहिये। दैवके मेटनेका भी पुरुषार्थ हमे धर्मसेवन द्वारा करना चाहिय। इमसे हम भविष्यमे उदय आनेवाले पापोंको घटा सकते है व पुण्यको बढ़ा सकते है। शांतिमय व ज्ञानमय भावोंसे आत्मबल लाकर यदि हम धर्मको पाले, आत्मध्यानादि कर तो पापको घटा करके पुण्यको बढा सकते हैं।

इन आठ कर्मोंमेसे सबसे प्रबल कर्म मोहनीय है जिसकी अट्ठाईस प्रकृतियोंको हम बता चुके हैं। हमे उचित है कि हम अपने ज्ञान व आत्मबलके पुरुषार्थसे इस कर्मको जीतनेका सदा उद्यम करें। इसको जितना जितना जीतेंगे उतना उतना हमारा भाव निर्मल होता जायगा व हमारा गुणस्थान (दर्जा) बढता जायगा। सारे कर्मोंको बांधनेवाला मोह है, मोहके क्षय होने ही सर्वकर्म क्षय हो जाते हैं।

शिष्य—यह तो मै समझ गया, कुछ और भी जरूरी बात जाननेकी है।

शिक्षक—अब मैं यह आपको बतता हू कि ससारी प्राणियोंके मूल शरीर कितने प्रकारके होते है।

शरीर पांच तरहके होते है-(१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस, (५) कार्मण। इनमेसे तैजस कार्मण शरीर सर्व ससारी जीवोंके सदा पाए जाते है। जब कोई मरता है तब ये दो शरीर साथ २ जाते हैं, ये बहुत ही सूक्ष्म है, इंद्रियोंसे जाननेमे नहीं आते।

कार्मण शरीर तो आठ कर्मरूप है।

यह शरीर कार्मण वर्गणाओंसे बनता है यह बात हम बता चुके हैं। तैजस शरीर एक प्रकारकी बिजलीका शरीर है। जो तैजस वर्गणाओं (electric molecules) से बनता है। शेष तीन शरीर प्राप्त होते

है तथा छूटते हैं। औदारिक शरीर वह स्थूल शरीर है जो मनुष्य गति व तिर्यंच गतिवालोंके होता है।

एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीवोंके यह स्थूल शरीर होता है। इसीके मिलनेको जन्म व इसके छूटनेको मरण कहते है। वैक्रियिक शरीर ऐसे पुद्गलोंसे बनता है जिसमे रूप बदलनेकी शक्ति होती है। यह स्थूल शरीर देवों और नारकियोंको होता है। आहारक शरीर एक विशेष शरीर है जो आहारक समुद्घातके समय किसी विशेष मुनिके पुरुषाकार मस्तकसे निकलता है।

हमारे पास इस समय तीन शरीर है-औदारिक, तैजस, कार्मण। वृक्षोंके भी ये ही तीन शरीर है। कीटोंके व पशु पक्षियोंके भी ये ही तीन शरीर हैं। पुद्गलोंके अनेक भेद होते है इसलिये इन शरीरोंकी रचनामे अनेक भेद हैं।

जीव तत्वके सम्बन्धमे यह बात खास ध्यानमे रखनेकी है कि निश्चय नयसे या मूल द्रव्य स्वरूपकी अपेक्षा यह जीव बिलकुल शुद्ध है। सिद्ध भगवानके समान है। इसमे कोई भी सांसारिक अवस्थाए नहीं होती हैं। हमे उचित है कि हम अपने आत्माको आत्मारूप देखा करें। व्यवहारनयसे या अवस्थाकी दृष्टिसे कर्मोके सम्बन्धके कारण जीवोंमे चौदह गुणस्थान व चौदह मार्गणाए, चौदह जीव समास, पांच प्रकारके शरीर, रागादिक अशुभ भाव ये सब बातें पाई जाती है।

बहिरात्मा अज्ञानी इन कर्मोंके सम्बन्धसे होनेवाली अवस्थाओंको ही आत्माका मूल स्वभाव मान लेता है। जब कि अन्तरात्मा ज्ञानी या सम्यक्दृष्टि जीव मूल आत्माके स्वभावको शुद्ध जानता है और कर्मोंके संयोगसे होनेवाली अवस्थाओको वैसा ही जानता है। परमात्मा बिलकुल शुद्ध कर्म रहित आत्माको कहते है। हमको योग्य है कि हम बहिरात्मापना छोडकर अन्तरात्मा होजावे तथा परमात्मा होनेका पुरुषार्थ करें।

पांचवा अध्याय।

अजीव तत्व।

शिक्षक—हम आपको बता चुके हैं कि अजीव तत्वमें पांच गर्भित है-पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

पुद्गलका कुछ स्वरूप और जानना जरूरी है।

हम पुद्गलके विशेष गुण बता चुके है कि उनमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण चार गुण होते है। इनके बीस भेद जानने चाहिये।

८ **प्रकार स्पर्श**—नरम, कठोर, भारी, हलका, शीत, उष्ण, चिकना, रूखा।

५ **प्रकार रस**—कडुआ, खट्टा, तीखा, मीठा, कषायला।

२ **प्रकार गंध**—सुगंध, दुर्गंध।

५ **प्रकार वर्ण**—काला, नीला, पीला, लाल, सफेद।

२० **गुण**—

पुद्गलोंके दो भेद हैं-परमाणु और स्कंध। जिसका दूसरा भाग न हो उसको परमाणु कहते है। परमाणुओंसे बने हुए पिंडको स्कंध कहते हैं। परमाणुमें एकसाथ ऊपर कहे हुए बीस गुणोंमेंसे पांच गुण पाए जायगे, आठ स्पर्शमेसे दो स्पर्श, उष्ण, शीतमेंसे एक कोई तथा चीकने रूखेमेसे एक कोई।

एक कोई रस, एक कोई गन्ध व एक कोई वर्ण होगा, इस तरह पांच गुण होंगे। जब कि स्कन्धमे एकसाथ सात गुण पाए जायगे। आठ स्पर्शमेंसे चार स्पर्श। उष्ण शीतमेंसे एक, चीकने रूखेमेंसे एक, नर्म कठोरमेंसे एक, हल्के भारीमेसे एक। एक कोई रस, एक कोई गन्ध व एक कोई वर्ण इस तरह सात गुण होंगे।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब परमाणुओंके बने स्कन्ध हैं। वे

आपसमें बदल भी जाते है। जैसे–सीपके भीतर जल मोती पृथ्वी रूप बन जाता है, दो प्रकारकी वायु मिलकर जल हो जाता है।

शिष्य—पुद्गलके पिंड या स्कन्ध कितने प्रकारके होते हैं ?

शिक्षक—इनके भेद अनेक तरहसे हैं। अति प्रसिद्ध छः भेद हैं उन्हे अब ध्यानमें ले लीजिये, उनमे सब तरहके स्कन्ध या पिंड गर्भित हैं। वे छः भेद है—

(१) **स्थूल स्थूल** (solid things) कठोर वस्तुएँ जिनके दो टुकडे किये जाने पर वे आप अपनेसे न मिलें। जैसे–कागज, लकडी, पत्थर, आदि।

(२) **स्थूल** (liquid things) बहनेवाली चीज जैसे–पानी, दूध, शरबत आदि। ये अपनेसे मिल जाती हैं।

(३) **स्थूल सूक्ष्म** (solid fine things) जो देखनेसे मोटी मालूम हो परन्तु हाथोंसे पकडी न जा सकें। जैसे–प्रकाश, धूप, छाया।

(४) **सूक्ष्म स्थूल** (fine solid things) जो देखनेमे न आवें ऐसी सूक्ष्म हों परन्तु भारी काम कर सकें। जैसे–हवा, शब्द, आदि।

(५) **सूक्ष्म** (fine matter) जो पुद्गल पिंड इतने सूक्ष्म हों कि वे किसी भी इन्द्रियसे न ग्रहण हो सके जैसे–कार्मणवर्गणाए।

(६) **सूक्ष्म सूक्ष्म** (very fine matter) दो परमाणुओंका स्कन्ध या एक परमाणु।

सूक्ष्म स्कन्धोंके बहुतसे भेद है। उनमें पांच सूक्ष्म स्कन्ध संसारी जीवोंके लिये बहुत उपयोगी हैं।

(१) **आहार वर्गणा** (assimilative molecules) इनसे औदारिक, वैक्रियिक तथा आहारक तीन शरीर बनते है।

(२) **तैजस वर्गणा** (electric molecules) बिजलीके पिंड इनसे तैजस शरीर बनता है जो सब संसारी जीवोंके सदा पाया जाता है।

(३) **भाषा वर्गणा** (vocal molecules) इनसे शब्द बनते हैं।

(४) **मनो वर्गणा** (mind molecules) इनसे हृदयस्थानमे आठ पत्तोंका कमलाकार मन बनता है।

(५) कार्मण वर्गणा (karmic molecules) इनसे सूक्ष्म कार्मण शरीर बनता है, जो सब ससारी जीवोके सदा पाया जाता है।

आहारक वर्गणाके भीतर जितने परमाणु है उनके बहुत अधिक तैजस वर्गणामे, तैजससे बहुत अधिक भाषा वर्गणामे, भाषासे बहुत अधिक मनो वर्गणामे, मनसे बहुत अधिक कार्मण वर्गणामे है इसीसे हरएककी शक्ति अपने पहलेसे बहुत अधिक है। सर्वसे अधिक बलिष्ट कार्मण वर्गणा है।

ये पाचो ही प्रकारकी वर्गणाए सर्वत्र फैली हुई है। कोई जगह इनसे खाली नहीं है। ये वर्गणाए परमाणुओके बिछुडनेसे बिगडती है व उनके मिलनेसे बनती रहती है।

शिष्य—क्या परमाणुओके मिलनेका कोई नियम बताया गया है?

शिक्षक—परमाणुओके बन्ध होनेके साधक चिकना व रूखापना है। चिकनेपनेके व रूखेपनेके अश अनेक होते है। जैसे बकरीके दूधसे अधिक चिकनई गौके दूधमे, गौके दूधसे अधिक चिकनई भैसके दूधमे होती है, भैसके दूधमे अधिक चिकनई ऊटनीके दूधमे व दूधसे घीमे अधिक चिकनई होती है वैसे परमाणुओके भीतर चिकनईके अनेक भेद होते है, कोई कम चिकना, कोई अधिक चिकना होता है।

इसी तरह जैसे धूल, बालू व ककडमे रूखापना अधिक अधिक है, वैसे परमाणुओमे रूखापना किसीमे कम व किसीमे अधिक होता है। नियम यह है—रूखा परमाणु रूखेसे व चिकना चिकनेसे तथा रूखा चिकनेसे बन्ध सकता है, यदि परस्पर दो अशका अन्तर हो। इससे कम व अधिक अतर होनेपर बन्ध न होगा, इसी तरह जिस परमाणुमे सबसे कम चीकनापना या रूखापना होगा वह परमाणु किसीसे ही बधेगा, परन्तु बाहरी निमित्तोसे यदि उसीमे अश बढ जायगे तो वह बध हो सकेगा।

जैसे एक परमाणुमे ५० अंश चिकनाई है तो वह ५२ अशवालेसे चिकने, या रूखे परमाणुसे ही बधेगा। ५३ अशवाले या ५१ अशवालेसे नहीं बधेगा। एक परमाणुमेसे रूखापना ५५ अश है तो वह ५७ अश-वाले चिकने या रूखे परमाणुसे बध जायगा। ५४ या ५८ अशवालेसे नहीं बंधेगे। जब परमाणु परस्पर बंधकर एक पिंड या स्कन्ध बन जाते है

तब जिस परमाणुमें अधिक अंश होंगे वह कम अंशवालेको अपने रूप कर लेगा। जैसे १९ अंशवाला परमाणु चिकना है तथा १७ अंशवाला परमाणु रूखा है, तब दोनोंका बना हुआ पिंड रूखा हो जायगा। इनमें ऐसी शक्ति है कि अधिक अंशवाला अपने रूप दूसरे परमाणुको कर लेता है।

शिष्य—क्या इसका प्रयोग करके आजकल किसीने देखा है?

शिक्षक—यह जिन शास्त्रकी लिखित बात है। जहांतक हमें मालूम है अभीतक किसीने प्रयोग करके नहीं देखा है। जो जैन छात्र विज्ञानके ऊंचे ज्ञाता हों उनको इसका प्रयोग करके जांचना चाहिये।

शिष्य—यदि स्कन्ध स्कन्धमें मिलकर एक पिंड बने तो भी क्या यही नियम होगा?

शिक्षक—मैं समझता हूं कि ऐसा ही नियम स्कन्धके लिये भी होना चाहिये। यदि किसी स्कन्धमें ५०० अंश चिकनई होगी व दूसरे स्कन्धमें ५०२ अंश चिकनई या रूखापन होगा तो वे दो स्कन्ध भी मिलकर एक पिंड हो जायगे। यद्यपि इस बातका अधिक विस्तार मुझे जैन शास्त्रमें देखनेको नहीं मिला। कठिनता तो यह है कि चिकने व रूखेपनके अंशोंकी जांच कैसे की जावे। इस ही के लिये आजकलके वैज्ञानिकोंको खूब विचारना चाहिये।

शिष्य—बात बहुत जरूरी है। मैंने ध्यानमें ले ली है, किन्हीं वैज्ञानिक प्रोफेसरोंसे बात करूंगा। पुद्गलके सम्बन्धमें और कोई बात जाननेकी है?

शिक्षक—जो जरूरी २ बात थीं वे आपको बता दी है। इस सर्व जगतकी रचना पुद्गलोंके द्वारा होती रहती है व बिगड़ती रहती है। आजकल (science) सायंस (विज्ञान) जो कुछ भी खोज कर रहा है वह सब पुद्गलकी अपूर्व शक्तिके कारणसे है। तथा जहांतक मेरा अनुमान है मैं कह सकता हूं कि यदि वह सायंसकी खोज सत्य होगी तो उसका मिलान जैनसिद्धांतसे हो जायगा।

शिष्य—आपने कहा था कि आकाशके दो भेद हैं-लोकाकाश तथा अलोकाकाश। इनका कुछ विशेष बताइये।

शिक्षक—आकाश एक अखण्ड अनन्त द्रव्य है। इसकी सीमा नहीं

है। इसीके मध्यमें जितने आकाशके भागमे जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा काल पाए जाते है उसको लोकाकाश कहते है। लोकाकाश एक मर्यादाके भीतर है। इस मर्यादाके कारण धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय है। ये दोनों द्रव्य लोकाकाश व्यापी हैं।

जहांतक धर्म द्रव्य है वहांतक ही जीव तथा पुद्गलोंका गमन हो सकता है व वहींतक पदार्थ ठहर सकते है। इस जगतमे कोई भी स्थान नहीं है जहां पांचो द्रव्य न पाए जावे। पुद्गल परमाणु तथा स्कन्ध रूपसे सर्वत्र भरे है, सूक्ष्म जातिके एकेन्द्रिय जीव भी सर्वत्र भरे है, बादर जीव कहीं कहीं है, धर्म और अधर्म द्रव्य व्यापक है ही, कालाणु भी सर्व तरफ रत्नोंके ढेरके समान फैले है। उनकी गणना असंख्यात है, क्योंकि लोकाकाशके प्रदेश भी असंख्यात है। हरएक प्रदेशपर एक एक कालाणु व्यापक है।

शिष्य—प्रदेशका मतलब बताइये तथा असंख्यातसे क्या मतलब है?

शिक्षक—जितने आकाशके सूक्ष्म भागको वह परमाणु जिसका भाग नहीं होसकता है रोकता है उसको प्रदेश (point) या (spatial unit) कहते है। जैनसिद्धांतमे तीन प्रकारकी गणना बताई गई है—संख्यात, असंख्यात और अनंत।

हम मानवोंकी समझमें जहांतक गिनति आसके वह संख्यात है। उससे अधिक असंख्यात है। उससे भी बहुत अधिक अनन्त है। प्रदेश एक तरहका गज है जिससे द्रव्योंके आकारको मापा जाता है। यदि लोकाकाशको हम प्रदेश रूपी गजसे मापा जावे तो इसके असंख्यात प्रदेश होंगे। इतने ही प्रदेश धर्मास्तिकायके और अधर्मास्तिकायके होंगे व इतने ही प्रदेश एक जीवके भीतर भी असलमें होते हैं, क्योंकि एक जीव लोकाकाश भरमें फैल सकता है। कालाणु भिन्न २ एक प्रदेश पर हैं इसलिये कालाणुओंकी गणना असंख्यात है। आकाश अनन्त है इससे उसके अनन्त प्रदेश कहलाएंगे।

पुद्गल यद्यपि तीन लोकमें परमाणु व स्कन्धके रूपमें फैले हैं तथापि परमाणुओंके मिलनेसे जो स्कन्ध बनते हैं वे तीन प्रकारके होते हैं। किन्हीं

स्कन्धोंकी रचना संख्यात परमाणुओंसे होती है, किन्हींकी असंख्यात परमाणुओंसे तथा किन्हींकी उनसे भी अनन्त परमाणुओंसे होती है। इसलिये पुद्गलके स्कन्धोंके प्रदेश संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त ऐसे तीन तरहके कहलाते हैं। यहां प्रदेशसे मतलब परमाणुका लेना चाहिये।

कालाणु असंख्यात है, वे कभी एक दूसरेसे मिलते नहीं है, वे अलग २ एक एक ही प्रदेशको घेरते है। शेष पांच द्रव्य एक प्रदेशसे अधिक स्थान घेरते है। इसलिये जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा आकाशको अस्तिकाय या पञ्चास्तिकाय कहते है।

शिष्य—परन्तु पुद्गलका एक परमाणु तो एक ही प्रदेश घेरता है उसको काय तो नहीं कहना चाहिये।

शिक्षक—यद्यपि परमाणु एक ही प्रदेश घेरता है परन्तु उसमें परस्पर मिलनेकी शक्ति नहीं है इसलिये परमाणुको शक्तिकी अपेक्षा काय कहते है।

एक बात और जानना चाहिये कि छहों द्रव्यमें दो प्रकारके गुण होते है सामान्य (general) विशेष (special)—विशेष गुण तो हम बता चुके है, सामान्य गुणोंको समझ लीजिये।

शिष्य—कृपा करके छहों द्रव्योंके विशेष गुण फिर बता दीजिये।

शिक्षक—जीव द्रव्यके विशेष गुण ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र आदि हैं। पुद्गलके विशेष गुण स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हैं। धर्मास्तिकायका विशेष गुण जीव व पुद्गलको चलनेमें सहाय करना है। अधर्मास्तिकायका विशेष गुण जीव व पुद्गलको ठहरनेमें सहाय करना है। आकाशका विशेष गुण सबको जगह देना है। कालका विशेष गुण सबकी अवस्थाओंको पलटनेमें सहायता देना है।

सामान्य गुण छहों द्रव्योंमे पाए जाते है। जबकि विशेष गुण खास अपने अपनेमें पाए जाते हैं। छः सामान्य गुण बहुत ही आवश्यक है.—

(१) **अस्तित्व गुण**:—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, द्रव्य सदा बना रहे।

(२) **वस्तुत्व गुणः**—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य कुछ काम करे व्यर्थ न रहे।

(३) **द्रव्यत्व गुणः**—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें एकसी व भिन्न प्रकारकी अवस्थाऐ बदला करें।

(४) **अगुरुलघुत्व गुण**—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य अपनी मर्यादामें रहे, कभी कम या अधिक न हो न वह बदल कर दूसरा द्रव्य होसके न इसका कोई गुण अन्य गुणरूप बदल सके। जिस द्रव्यमें जितने गुण हों वे उसमें बने रहें। कोई नया गुण उसमें आकर न मिले।

(५) **प्रदेशत्व गुण**—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो।

(६) **प्रमेयत्व गुण**—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो।

अजीव तत्वके सम्बन्धमें जो जरूरी जानने योग्य बात थी उनका कथन मैंने कर दिया है। आप इनपर विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य सदा स्वभावमें रहते है। इनमें हलन चलन क्रिया नहीं होती है।

संसारी जीव और पुद्गल हलन चलन क्रिया करते है। इन्हीकी रचना यह दृश्य रूप जगत है। इनकी अवस्थाए नाना प्रकार बनती बिगडती दिखलाई पडती है। यह लोक छ मूल द्रव्योंका समुदाय है। ये सदासे है व सदा बने रहेंगे इसलिये यह लोक नित्य है। अवस्थाओंके बदलनेकी अपेक्षा यह जगत अनित्य है। यह लोक कभी नया बना नहीं न कभी बिलकुल लोप होगा। अवस्थासे अवस्थांतर हुआ करेगा।

ज्ञानीको उचित है कि वह क्षणिक जगतकी अवस्थाओंमें मोह न करे मूल द्रव्यपर दृष्टि रखे। छहों द्रव्योंमें एक निज आत्म द्रव्य ही सार है। उसपर दृष्टि रखके व उसीका ध्यान करके हमें आत्मानन्द प्राप्त करना चाहिये।

छठा अध्याय ।

आस्रव और बंध तत्व ।

शिक्षक—हम आपको सात तत्वोंमेंसे आस्रव व बन्ध तत्वोंका कुछ स्वरूप बता चुके हैं, आज कुछ विशेष बातें बताएंगे—

कर्मोंका आस्रव और बन्ध एक साथ होता है। आना और बंधना दो भिन्न २ क्रियाके कारणसे इनके दो नाम हुए हैं। असलमें अशुद्धताकी दृष्टिसे दोनों बातें एक है। इन दोनोंके कारण भाव आस्रव और भाव बन्ध एक ही है। जिन भावोंसे कर्म वर्गणाएं आती हैं उनही भावोंसे उनका बंध भी होता है। दोनोंका समय या आस्रव व बन्ध क्षण भी एक ही है।

यह हम आपको बता चुके है कि कर्मोंके आठ मूल प्रकृति भेद है। इनमेंसे सात मूल कर्मोंका सदा ही बंध नौमें गुणस्थान तक हुआ करता है। आयु कर्मका बंध सदा नहीं होता है। जैनसिद्धांतमें यह कायदा बताया है कि एक जीवनमें आठ दफे आयुके आठ त्रिभागोंमें बंधका अवसर आता है।

यदि आठ त्रिभागोंमें आयुका बंध नहीं हुआ तो मरणके अंतर्मुहूर्त पहले परलोकके लिये आयु कर्मका बंध अवश्य होगा। जैसे किसीकी आयु ८१ वर्षकी है तब पहला त्रिभाग ५४ वर्ष बीतनेपर अंतर्मुहूर्तके लिये आयगा। दूसरा त्रिभाग २७ मेंसे १८ वर्ष बीतनेपर ९ वर्षकी शेष आयुमें अंतर्मुहूर्तके लिये आयगा।

इसी तरह तीसरा त्रिभाग ३ वर्ष आयुके शेष रहनेपर आयगा। चौथा एक वर्ष बाकी रहनेपर आयगा। पांचवा त्रिभाग ४ मास बाकी रहनेपर, छठा त्रिभाग ४० दिन बाकी रहनेपर, सातवां त्रिभाग १३ दिन ८ घण्टे बाकी रहनेपर, आठवां त्रिभाग ४ दिन १० घण्टे ४० मिनट बाकी रहनेपर आयगा। इनमेंसे किसी त्रिभागमें आयु बन्ध जायगी।

जब एक दफे बन्ध जायगी तब आगेके त्रिभागोंमें भावोंके अनुसार

उनकी स्थितिमे कम व अधिकपना होसकता है। आयुका बन्ध सातवें गुणस्थान तक ही होता है इसलिये सातवें गुणस्थान तकके जीवोंके आयु बन्धके समय आठो कर्मोका बन्ध होगा। जब आयुकर्म नही बधेगा तब सात कर्मोका बन्ध होगा। दसवें गुणस्थानमे मोहनीय कर्मको छोडकर छः कर्मोका ही बन्ध होगा। ११, १२ व १३ वें गुणस्थानमे केवल एक साता वेदनीय कर्मका ही बन्ध होगा।

शिष्य—आपने बताया कि शुभ उपयोगसे पुण्य बन्ध होता है, अशुभ उपयोगसे पाप बन्ध होता है, ज्ञानावरणादि चार घातीय कर्म पाप है यह भी आप बता चुके है तब शुभ उपयोगसे पापकर्म कैसे बन्धेगा?

शिक्षक—यह बात ध्यानमे लेलीजिये कि चार घातीयकर्मोका बन्ध शुभ या अशुभ दोनो उपयोगोमे होता है। अघातीय कर्मोमसे जब शुभ उपयोग होता है सातावेदनीय, शुभ नाम, उच्चगोत्र तथा शुभ आयुका बन्ध होता है और जब अशुभ उपयोग होता है तब असाता वेदनीय, अशुभ नाम, नीच गोत्र, अशुभ आयुका बन्ध होता है। क्योकि शुभ या अशुभ दोनो ही उपयोग अशुद्ध है, कषाय सहित हैं, आत्माके स्वाभाविक ज्ञानदर्शन आत्मबल व शांतभावके बाधक है, इसलिये चारों घातीयकर्मोका बन्ध अवश्य होगा। शुभ भावोमे भी कषाय है जो आत्मगुणोका घात करता है।

यह हम बता चुके है कि बन्ध चार प्रकारका होता है, उनमेसे स्थिति व अनुभागबध कषायोके द्वारा कम या अधिक होता है। इसमे विशेष बात जाननेकी यह है कि जब कषाय तीव्र होती है तब आयुको छोडकर सर्व कर्मोमे स्थिति अधिक पडती है और जब कषाय मन्द होती है तब सातो कर्मोमे स्थिति कम पडती है।

आयु कर्मका हिसाब यह है कि जब कषाय तीव्र होती है तब नरकायुकी स्थिति अधिक व तिर्यञ्च, मनुष्य व देवायुकी स्थिति कम पडती है और जब कषाय मद होता है तब नरकायुमे स्थिति थोडी व तिर्यञ्च मनुष्य व देव आयुमे स्थिति अधिक पडती है।

अनुभाग बन्धका नियम यह है कि तीव्र कषायोंसे सर्व पापकर्मोमे

अनुभाग अधिक व पुण्य कर्मोंमे कम पडेगा तथा मन्द कषायोंसे पुण्य-कर्मोंमें अनुभाग अधिक व पाप कर्मोंमें अनुभाग कम पडेगा। आयुकर्ममें मात्र नरक आयु ही अशुभ या पापरूप कहलाती है।

इस कथनसे आप समझ गए होंगे कि जब किसीके मन्द कषायरूप शुभ उपयोग होगा तब घातीय कर्मोंमें स्थिति भी कम पडेगी व अनुभाग भी कम पडेगा तथा अघातीय पुण्य प्रकृतियोंमें भी स्थिति कम पडेगी परन्तु अनुभाग ज्यादा पडेगा। जिसका फल यह होगा कि जब उन घातीय कर्मोंका उदय होगा तो फल मंद होगा, परन्तु यदि पुण्यरूप अघातीय कर्मोंका उदय होगा तो फल तीव्र होगा। सुखकी सामग्री अच्छी प्राप्त होगी।

कर्मोंके आने व बन्धनेमें कारणरूप भाव सामान्यसे पांच है—

(१) मिथ्यादर्शन, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, (५) योग। *

शिष्य—कृपा करके इनका कुछ विशेष बताइये ?

शिक्षक—सात तत्वोंके श्रद्धान न करनेको या सच्चे देव, शास्त्र, गुरुके श्रद्धान न करनेको या अपने आत्माको यथार्थरूपसे श्रद्धान न करनेको व आत्मीक अतीन्द्रिय आनन्दका श्रद्धान न करनेको मिथ्यादर्शनभाव कहते हैं। इस मिथ्यादर्शनके पांच भेद है—

(१) एकान्त मिथ्यादर्शन—वस्तुमें अनेक स्वभाव होते हुए उनको न मानकर एक ही या कुछ ही स्वाभावोंके रहनेका हठ करना एकान्त मिथ्यादर्शन है। जैसे कोई पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र है, पुत्रकी अपेक्षा पिता है, भाईकी अपेक्षा भाई है, भानजेकी अपेक्षा मामा है। ये सब सम्बन्ध उस पुरुषमें एक ही साथ है। यदि कोई उस पुरुषको पुत्र ही माने, पिता न माने तो वह एकान्तको माननेवाला मिथ्या-दृष्टि होगा।

हरएक वस्तु अपने मूल स्वभावकी अपेक्षा नित्य है। अवस्थाके बद-लनेकी अपेक्षा अनित्य है। दोनों स्वभावोंको एकसाथ मानना यथार्थ है सत्य है। यदि इनमेसे एक ही स्वभावको माना जावे कि वस्तु नित्य ही

---

* मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥ १ । ८. त० सू ॥

है या अनित्य ही है तो यह मानना एकान्त मिथ्यादर्शन होगा। इससे वस्तुके स्वरूपका सच्चा ज्ञान न होगा।

(२) **विपरीत मिथ्यादर्शन**—जो धर्म नहीं हो सकता है उसको धर्म मानलेना, जो देव नहीं होसकता है उसको देव मान लेना, जो गुरु नहीं हो सकता है उसको गुरु मान लेना विपरीत मिथ्यादर्शन है। जैसे पशुओंकी बलि करनेसे धर्म मानना, रागी, द्वेषी, देवोंको देव मानना, परिग्रहधारी ममारम्भक गुरुको गुरु मानना।

(३) **संशय मिथ्यादर्शन**—धर्मके निर्णयमें एकमत न होकर संशय रखना जैसे-आत्मा है या नहीं, परलोक है या नहीं, मोक्ष है या नहीं, कर्मबन्ध है या नहीं।

(४) **वैनयिक मिथ्यादर्शन**—भोलेपनसे सर्व प्रकारके एकांत व अनेकांत धर्मोंको धर्म मान लेना सरागी वीतरागी सर्व देवोंको देव मान लेना, सग्रन्थ निर्ग्रंथ सर्व प्रकारके साधुओंको साधु मान लेना। यह भाव रखना कि हम तो संसारी है लोग कुछ समझ कर ही देव धर्म गुरुको मानते है, सबकी भक्ति करनेसे किसीसे कुछ किसीसे कुछ लाभ हो जायगा। ऐसा मिथ्यात्वी विवेक रहित सत्य व असत्य सबको धर्म मानके श्रद्धान करता है।

(५) **अज्ञान मिथ्यादर्शन**—अपने हित व अहितकी परीक्षा किये बिना व परीक्षा करनेकी शक्तिके बिना पर्याय बुद्धि बने रहना, शरीरको ही आत्मा मान लेना, इंद्रियोंके सुखको ही सुख मान लेना, धर्मके जाननेकी कुछ इच्छा न करना, जैसी रीति चली आई है उसीको सत्य धर्म मानकर बैठे रहना, निर्णय करनेका प्रयत्न नहीं करना।

इनमेंसे किसी भी मिथ्यादर्शनमें फँसा हुआ प्राणी निर्मल सम्यग्दर्शनको नहीं प्राप्त कर सकता है, सत्यधर्मकी श्रद्धा नहीं कर पाता है मानवजन्मको वृथा खो बैठता है। मिथ्यादर्शनके कारण प्राणी इंद्रियोंके विषयोंका मोही होता हुआ रातदिन विषयवासनाकी तृप्तिके लिये तृष्णामें फँसा रहता है। इसीके कारण सर्व तरहका अन्याय करता है व अभक्ष्य भोजन करता है। हिंसादि पापोंके करनेसे ग्लानि नहीं कर पाता है।

अविरति—भाव १२ प्रकारका भी है, पांच प्रकारका भी है। पांच

इंद्रिय तथा मनको वश न रखना तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक प्राणियोंकी दया न पालना। जो चाहे सो विचारे बिना इंद्रियभोग करना व जैसे चाहे वैसे वर्ताव करना, प्राणियोंकी दयाकी तरफसे बेखबर रहना, यह बारह प्रकार अविरति है।

हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, व परिग्रह इन पांच पापोकी ममतामें फंसे रहना भी अविरति है।

प्रमाद—आत्माके ध्यान व शुद्ध भावोंकी प्राप्तिमे अनादर व असावधानी रखना। देखकर चलनेमे, शुद्ध वचन बोलनेमे, शुद्ध भोजन करनेमें, देखकर रखने उठानेमे, मल मूत्र करनेमे, प्रमाद सहित असावधानीसे वर्तना प्रमाद है।

मन, वचन, कायको धर्ममार्गमे चलानेमे आलस्य रखना, उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य। इन दश प्रकार धर्मोंके पालनमे प्रमाद रखना। स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजा कथामें समय वृथा गमाना।

कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ १६ प्रकार व नौ नोकषाय ऐसे २५ प्रकार कषाय है। जिनके नाम हम पहले मोहनीय कर्मके भेदोंमें बता चुके है।

योग—मन, वचन, कायका हलन चलन तीन प्रकार है। इसीके पन्द्रह भेद है—

चार मनोयोग—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय।

चार वचन योग—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय।

सत्य असत्य मिले हुए विचार व वचनको उभय मन व वचन कहते है। जिसको सत्य व असत्य कुछ भी कहा जासके ऐसे विचार व वचनको अनुभय मन या वचन कहते हैं।

सात काययोग—कायकी क्रियाके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका हलन चलन काय योग है। सात प्रकारकी कायकी क्रिया होती है। वे सात काय हैं—

(१) औदारिक काय योग, (२) औदारिक मिश्र काय योग,

(३) वैक्रियिक काय योग, (४) वैक्रियिक मिश्र काय योग, (५) आहारक काय योग, (६) आहारक मिश्रकाय योग, (७) कार्मण काय योग।

मनुष्य तथा तिर्यन्चोंके पर्याप्त अवस्थामे औदारिक काययोग होता है। अपर्याप्त अवस्थामे औदारिक मिश्रकाय योग होता है। औदारिक कायका कार्मण कायसे मिश्रण होता है। देव तथा नारकियोंके पर्याप्त अवस्थामे वैक्रियिक काययोग होता है। अपर्याप्त अवस्थामे वैक्रियिक मिश्र काययोग होता है। वैक्रियिक काय और कार्मणकायका मिश्रण होता है।

आहारक समुद्घातके समय आहारक शरीर बनता है, उसके बनते हुए आहारक मिश्र काययोग होता है, बन जानेपर आहारक काययोग होता है।

विग्रहगतिमे कार्मण काययोग होता है। जब एक शरीरसे दूसरे शरीरमे जीव जाता है तब बीचमे तैजस कार्मण दो सूक्ष्म शरीर सहित जीव जाता है उनमेसे कार्मणकायके निमित्तसे आत्माका हलन चलन होता है, इससे वहां कार्मण काययोग होता है। कर्मोंके आस्रव और बन्धके कारण पांचों भाव पहले गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थानतक यथासंभव पाए जाते है। चौदहवे अयोग गुणस्थानमे योग भी नहीं रहते है, इससे वहां कर्मोका आस्रव व बंध बिल्कुल नहीं होता है।

पहले गुणस्थान मिथ्यात्वमे मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पांचो ही कर्मोंके आस्रव और बंधके कारण मौजूद है। दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानमे मिथ्यात्व छूट गया। तीसरे चौथेमे अनंतानुबंधी कषाय भी छूट गया। पांचवे देशसंयत गुणस्थानमे एकदेश अविरति मात्र टल गया। अप्रत्याख्यानावरण कषाय भी नहीं रही।

छठे प्रमत्त-विरतमे प्रमाद, कषाय व योग तीन कारण है। यहां प्रत्याख्यानावरण कषाय भी नहीं रही।

अप्रमत्त सातवे गुणस्थानमे प्रमाद भी छूट गया, मात्र कषाय और योग है। नौमे गुणस्थान तक सर्व कषाय चली गई, मात्र सूक्ष्म लोभ रह गया। दशवे तक कषाय व योग है। फिर ११ से १३ तक मात्र योग ही रह गया।

जैसे २ गुणस्थान बढ़ता जाता है वैसे २ आस्रव बंधके कारण भी घटते जाते है।

शिष्य—आपने बहुत ही उपयोगी बात बताई। आस्रव बन्धके सम्बन्ध कुछ और विशेष जानना जरूरी है।

शिक्षक—आपको यह जान लेना जरूरी है कि संसारी जीव कोई भी अच्छा या बुरा काम करते है उनमे जीवके भाव भी लगते है तथा शरीर व बाहरी अजीव पदार्थोका भी सम्बध होता है—जैसे हमने किसी पशुको लाठी मारी, इसमे जीवका क्रोधभाव कारण है। तथा शरीर, लाठी अजीव पुद्गलका सम्बन्ध भी है। इसलिये आस्रव व बन्धके दो अधिकरण बताए गए है-एक जीवाधिकरण दूसरा अजीवाधिकरण। जीवाधिकरण या जीवरूपी आधारके एकसौ आठ भेद है—

शिष्य—क्या आप १०८ भेद बताएगे?

शिक्षक—हरएक कामके करनेका इरादा किया जाता है। इसको सरम्भ कहते है। फिर उस कामके करनेका प्रबन्ध किया जाता है इसको समारम्भ कहते है। फिर उस कामको शुरू किया जाता है इसको आरम्भ कहते है।

जैसे दान देनेका भाव या इरादा करना सरम्भ है। दानके लिये चीजका लाना समारम्भ है। दान पात्रको देना सो आरम्भ है। इस हरएकके लिये मन, वचन, काय तीनोका प्रयोग जीव द्वारा होसकता है। जैसे–मनसे इरादा करना, वचनसे उसे कहना, कायके अगसे उसको प्रकाश करना। तब सरम्भ, समारम्भ आरम्भको मन, वचन, कायसे गुणनेसे नौ भेद होंगे।

कोई काम स्वय किया जाता है, कोई कराया जाता है, किसी कामकी अनुमोदना की जाती है। जैसे–स्वय करनेका विचार करना आदि, किसीसे करानेका विचार करना आदि, किसीने कोई काम किया है उसपर प्रसन्नताका भाव मनमे करना, वचनसे कहना, कायसे बताना तथा प्रसन्नताका इरादा करना, प्रसन्नता बतानेका प्रबन्ध करना, प्रसन्नता बता देना।

इस तरह नौको कृत कारित व अनुमोदनासे गुणा करनेसे सत्ताईस

२७ भेद होते हैं। अच्छे या बुरे किसी भी काम करनेके लिये कषायकी प्रेरणा होती है। कोई काम क्रोधवश, कोई मानवश, कोई मायाचारीसे व कोई लोभवश किया जाता है।

इस तरह २७ को ४ से गुणा करनेपर १०८ भाव जीवके होसकते हैं जिनसे पाप या पुण्य किया जाता है। जैसे समरम्भादि ३×मन, वचन, काय ३×कृत आदि ३×कषाय ४=१०८ जीवाधिकरणके भेद हैं।

सातवां अध्याय।

संवर, निर्जरा और मोक्ष।

शिक्षक—अब हम आपको संवरके सम्बन्धमें कुछ विशेष बताना चाहते हैं।

आस्रवका विरोधी संवर है। जिन भावोंसे कर्म आते हैं उनको रोक देना संवर है। क्या आप बताओगे कि आस्रव भाव क्या क्या हैं?

शिष्य—पहले आप बता चुके हैं कि कर्मोंके आनेके भाव अर्थात् भावास्रव मिथ्यात्व अविरत, प्रमाद, कषाय, योग हैं।

शिक्षक—उन हीके विरोधी सम्यग्दर्शन व्रत, अप्रमाद, निष्कषाय तथा योगरहितपना है।

मिथ्यात्वके दूर करनेके लिये हमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये। निश्चय सम्यग्दर्शन अपने आत्माके असली स्वरूपका विश्वास है कि यह आत्मा पूर्ण ज्ञाताद्रष्टा आनन्दमई वीतराग व अमूर्तीक है। यह भावकर्म रागद्वेषादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न है। इस निश्चय सम्यग्दर्शनके लिये व्यवहार सम्यग्दर्शनकी जरूरत है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरुमें विश्वास करना तथा सात तत्वोंमें विश्वास करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

हम दूसरे अध्यायमें णमोकार मन्त्रका अर्थ समझाते हुए बता चुके हैं कि अरहन्त व सिद्ध देव हैं। आचार्य, उपाध्याय साधु गुरु हैं। उनके रचित ग्रन्थ शास्त्र है।

सात तत्वोंका संक्षेप स्वरूप भी हम बता चुके है। जब कोई श्री जिनेन्द्रदेवकी भक्ति करता रहेगा, शास्त्रोका अभ्यास करता रहेगा, धर्म-ज्ञाना गुरुसे समझता रहेगा व एकांतमें नित्य बैठकर मनन करेगा कि आत्माका स्वभाव भिन्न है व कर्मादि भिन्न है तब अभ्यास करते करते कभी ऐसा अवसर आसक्ता है जब सम्यग्दर्शनके रोकनेवाले कर्म दर्शनमोह तथा अनतानुबन्धी कषाय उपशम होजाते है और उपशम सम्यग्दर्शन पैदा होजाता है। तब मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायोंके कारण जो कर्म आते थे उनका आना बन्द होजाता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रहत्याग इन पाच व्रतोंको पूर्ण पालनेस अविरत भाव बिलकुल छूट जाता है व इन्हींको थोडा पाल लेनमे जैसा गृहस्थोंके सभव है कुछ अविरत भाव दूर होता है। प्रमादके दूर करनके लिए अप्रमाद भाव प्राप्त करना चाहिये। धर्म कार्योंमे कभी आलस्य न करना चाहिये। कषायोके दूर करनेके लिये वीतराग भाव बढाना चाहिये। योगोंकी प्रवृत्ति मिटानेका मन वचन कायको ही वश रखना चाहिये।

साधारण उपाय कर्मोंके आस्रवोके रोकनेका यह है कि जिस जिस बानकी अपनी आदत पडी हो उसको त्याग देना चाहिये। जैसे किसीको जुआ खेलनेकी आदत हो उसे जुआ त्याग देना चाहिये। तब जूएके भावमे जो कर्म आते थे वे रुक जाते है। भावोंको निर्मल रखनेके लिये व कर्मोंके आगमनको रोकनेके लिये सवरके उपाय इस प्रकार जैन शास्त्रोंमे बताए हैं—

(१) गुप्ति, (२) समिति, (३) धर्म, (४) अनुप्रेक्षा, (५) परीषह जय, (६) चारित्र, (७) तप* तपसे कर्मोंकी निर्जरा भी होती है। तपसे बहुतसे कर्म विना फल दिये हुए झड जाते है। इसको अविपाक निर्जरा कहते है। जो कर्म फल देकर झडते हैं उसको सविपाक निर्जरा कहते है।

शिष्य—इनका कुछ स्वरूप बता दीजिये।

---

* स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥
तपसा निर्जरा च ॥ ३०—९ ॥ त० सू० ॥

शिक्षक—हमें बहुत संक्षेपमें बताना है। क्योंकि आप बुद्धिमान है जल्द समझ जावेंगे।

(१) **गुप्ति**—मन, वचन, कायके हलन चलनको रोककर ध्यानमग्न रहनेसे व आत्माका अनुभव करनेसे बहुत कर्मोंका आना रुकता है। यह गुप्ति संवरका सबसे प्रबल उपाय है। जो कोई तीनोंको रोककर हरसमय ध्यान न कर सके उनके लिये पांच समिति बताई है कि वह सम्हालकर वर्ते जिसम पापोंका आना न हो।

(२) **समिति**—भले प्रकार वर्तनेको समिति कहते है। ये पांच है। (१) **ईर्या**–चार हाथ भूमि देखकर दिनमे जन्तु रहित हुए मार्गपर चलना। (२) **भाषा**–शुद्ध सरल मीठी वाणी कहना। (३) **एषणा**–गृहस्थका दिया हुआ शुद्ध भोजन लेना। (४) **आदाननिक्षेपण**–किसी वस्तुको देखकर रखना उठाना। (५) **उत्सर्ग** या **प्रतिष्ठापन**–मल मूत्र जंतु रहित भूमिमें करना।

पांच प्रकार समितिको पालते हुए प्रमाद व कषायको जीतनेके लिये दशविध धर्मका भाव रखना चाहिये।

(३) **दश धर्म**–(१) **उत्तम क्षमा**—कष्ट पाने व हानि किये जानेपर भी क्रोध न करके क्षमा रखना। परिणामोंको मलीन न करना उत्तम क्षमा है।

(२) **उत्तम मार्दव**—अधिक तपस्वी व विद्वान होनेपर भी व अपमान पानेपर भी कभी मानभाव न लाकर कोमल भाव व विनीत भाव रखना उत्तम मार्दव है।

(३) **उत्तम आर्जव**—अनेक कष्ट होनेपर भी मायाचार करके स्वार्थको सिद्ध करनेकी भावना न करनी। सरलतासे मन, वचन, कायको धर्म लाभार्थ माया रहित वर्तना उत्तम आर्जव है।

(४) **उत्तम शौच**—लोभसे परिणाम मैला न करके, पूर्ण संतोष पालना। लाभ, अलाभमें समभाव रखना उत्तम शौच है।

(५) **उत्तम सत्य**—धर्मवृद्धिके हेतु शास्त्रोक्त वचन कहना। कभी भी परमागमके विरुद्ध नहीं कहना उत्तम सत्य है।

(६) **उत्तम संयम**—पांच इन्द्रिय व मनको अपने आधीन रखना तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, व त्रस कायिक प्राणियोंकी रक्षा करना उत्तम संयम है।

(७) **उत्तम तप**—कर्मोंके नाशके लिये आत्माको ध्यानसे तपाकर शुद्ध करना उत्तम तप है।

(८) **उत्तम त्याग**—परोपकारके लिये ज्ञान दान व अभय दान आदि देना उत्तम त्याग है।

(९) **उत्तम आकिंचन्य**—सर्व पर पदार्थोंसे ममता त्यागकर निर्ममत्व भाव रखना उत्तम आकिञ्चन्य है।

(१०) **उत्तम ब्रह्मचर्य**—काम भावको त्यागकर ब्रह्मचर्य पालकर ब्रह्म स्वरूप आत्माका मनन करना उत्तम ब्रह्मचर्य है।

इन दश धर्मोंके पालनेसे पाप-कर्मोंका बहुत अधिक संवर होता है।

(४) **बारह अनुप्रेक्षा या भावना**—ऊपर कहे हुए दश धर्मोंके पालनेके लिये बारह भावनाओंका चिंतवन बार बार करना जरूरी है। ये भावनाए वैराग्यकी वृद्धिके लिये बहुत आवश्यक हैं—

(१) **अनित्य भावना**—शरीर, भोग सामग्री, कुटुम्ब संयोग, जीवन सब जलके बुलेके समान या बिजलीके समान नाशवन्त है। इनको नाशवन्त मानकर मोह करना मूर्खता है।

(२) **अशरण भावना**—जीवोंको मरणसे व तीव्र कर्मोंके उदयसे कोई बचा नहीं सकता, ऐसा विचार कर निरन्तर निज आत्मा या अरहन्त आदि पांच परमेष्ठीकी शरण लेना अशरण भावना है।

(३) **संसार भावना**—संसारी जीव कर्मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए तृष्णाकी दाहको शमन नहीं कर पाते हैं। इसलिये संसारासक्त अज्ञानीको कहीं भी सुख नहीं है। शारीरिक व मानसिक दुःखोंसे संसारी जीव सदा पीडित रहते हैं। सुखशांति आत्माके ज्ञानसे ही हो सकती है।

(४) **एकत्व भावना**—इस जीवको अकेले ही जन्मना, मरना व अपने बांधे हुए पाप पुण्य कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। यह आत्मा

स्वरूपमें सर्व-कर्मोंसे व रागादि भावोंसे रहित है। इस अपने एक स्वभावका मनन करना, अपनेको अपनी उन्नति व अवनतिका ज़िम्मेदार समझना एकत्व भावना है।

(५) **अन्यत्व भावना**—यह शरीर पुद्गलमय जड़ है, आत्मा मेरा चेतन है, उससे जब यह जुदा है तब शरीरके सम्बधी स्त्री पुत्रादिक धन राज्यादि मेरे कैसे होसकते हैं? यह रागादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्म भी अन्य हैं। इनका सदा ही परिवर्तन होता रहता है—मैं अन्य हूं।

(६) **अशुचि भावना**—यह मेरा मानव देह वीर्य व रुधिरसे उत्पन्न मल, मूत्र, कीट, रुधिर, अस्थि, मांसादिका पिंड महान अपवित्र है, गंधमाला वस्त्रादि सर्व पदार्थोंको मलीन करनेवाला है, आयु कर्मके आधीन क्षण-मात्रमें छूट जानेवाला है। इसको नौकरके समान रखकर धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ साध लेना चाहिये। इसके मोहमें अन्ध हो पवित्रा-त्माको अपवित्र व बंदमें न रखना चाहिये।

(७) **आस्रव भावना**—मन, वचन, काय, विषय कषायोंके आधीन होकर जो क्रिया करते हैं उनसे कर्म आकर बंधते हैं. उन कर्मोंके उदयसे जीव भव भवमें भटकता फिरता है यह कर्मास्रव मिटानेलायक है।

(८) **संवर भावना**—जिन २ कारणोंसे कर्म आकर बंधते हैं उनको हम रोक देना चाहिये। इसी उपायसे आत्मा अपनेको शुद्ध कर सकता है।

(९) **निर्जरा भावना**—सविपाक निर्जरा सर्व जीवोंके सदा हुआ करती है। उससे आत्मा शुद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि नवीन कर्म फिर बंध जाते हैं। संवर पूर्वक अविपाक निर्जरा करनेका उपाय वीतरागता सहित इच्छाको रोककर तप साधन करना है सो मुझे करना चाहिये।

(१०) **लोक भावना**—यह लोक अनन्त आकाशके मध्य जीवादि छह द्रव्योंसे सर्वत्र भरा है। ये द्रव्य नित्य हैं, अकृत्रिम हैं। इससे यह लोक भी अकृत्रिम है। द्रव्योंमें पर्याय होती रहती हैं इससे द्रव्य अनित्य भी हैं, इससे लोक भी अनित्य है। इसका कोई कर्ता हर्ता नहीं है। हम लोकमें राग न करके आत्मशुद्धि करनी चाहिये।

(११) बोधिदुर्लभ भावना—रत्नत्रय धर्मका लाभ बड़ी कठिनतासे होता है। मानव जन्म, दीर्घायु, उत्तम संयोग, सद्बुद्धि मिलना ही दुर्लभ है तिसपर भी सच्चा उपदेश मिलना, तत्त्वज्ञान मिलना, व रत्नत्रयको समझना अतिशय कठिन है। अब मुझे जो इस रत्नत्रय धर्मका लाभ हो गया है, तो इसको भलेप्रकार पालकर आत्मोद्धार करना चाहिये।

(१२) धर्म भावना—सत्य धर्म आत्माका स्वभाव है, अहिंसामय है, उत्तम क्षमादि दश धर्मरूप है, मुनि व श्रावकोंके भेदसे दो प्रकार है। धर्म ही प्राणीका सच्चा मित्र है, यही उत्तम सुखको सदा देनेवाला है तथा आत्माको पवित्र करनेवाला है। इसलिये मुझे धर्मका साधन बड़े प्रेमसे करना चाहिये।

(५) २२ परीषहजय—कर्मोंके उदयसे नीचे लिखी २२ परीषहोंमेंसे एक व अनेक कष्ट आन पड़े तो उनको समताभावसे सहना। ध्यानसे व सामायिक भावसे न हटना परीषहजय है।

(१) क्षुधा (२) प्यास (३) सर्दी (४) गरमी (५) डांस मच्छर (६) नग्नपना (नग्न रहते हुए लज्जाभाव न आने देना) (७) अरति (८) स्त्री द्वारा मन न डिगाना (९) चलनेकी (१०) बैठनेकी (११) सोनेकी (१२) गाली सुननेकी (१३) वध या मारे जानेकी (१४) याचना (भोजनका अलाभ होनेपर भी मांगनेका भाव न करना) (१५) अलाभ (मे खेद न करना) (१६) रोग (१७) तृण स्पर्श (झाड़ियोंका कठिन स्पर्श) (१८) मल (शरीरको मैला देखकर ग्लानि न लाना) (१९) आदर निरादर (२०) ज्ञानका मद (२१) अज्ञान (पर खेद न करना) (२२) अदर्शन (विशेष लाभ तपादिसे न होनेपर श्रद्धान न बिगाड़ना)

(६) चारित्र पांच प्रकार है—(१) सामायिक-समताभावमें लीन रहना (२) छेदोपस्थापना-सामायिकके भावसे चलित होकर फिर अपनेको सामायिकमें स्थापित करना (३) परिहारविशुद्धि-जहां प्राणियोंकी हिंसा विशेषरूपसे बचाई जावे। (४) सूक्ष्मसांपराय-दसवें गुणस्थानमें होनेवाला चारित्र (५) यथाख्यात-आत्माकी वीतरागता जो ११वें गुणस्थानसे सिद्धि तक पाई जाती है। इस चारित्रसे विशेष कर्मोंका संवर होता है।

(७) **बारह प्रकार तप**—छः बाहरी तप हैं जो दूसरोंको प्रगट हों।

(१) **अनशन**—रागको दूर करनेके लिये खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहार त्यागकर उपवास करना।

(२) **अवमोदर्य**—प्रमादके विजयके लिये भूखसे कम खाना।

(३) **वृत्तिपरिसंख्यान**—भिक्षाको जाते हुए एक दो चार गृह जानेकी व अन्य प्रतिज्ञा देश कालके अनुसार लेना जिससे गृहस्थोंको विशेष आरम्भ न करना पड़े, प्रतिज्ञा पूर्ण होनेपर आहार लेना।

(४) **रसपरित्याग**—घी, दूध, दही, तेल, मीठा, निमक इन छः रसोंमेंसे सबका या कुछका त्याग करना।

(५) **विविक्तशय्यासन**—एकांतमें शयनासन करना।

(६) **कायक्लेश**—शरीरके सुखियापन मेटनेको कठिन २ स्थानोंपर तप करना।

छः **अन्तरङ्ग तप हैं** (१) **प्रायश्चित्त**—प्रमादसे लगे हुए दोषोंका दंड गुरुसे लेकर शुद्धि करना। यह दंड नौ प्रकारसे होता है-(१) आलोचना-गुरुसे अपने दोषको कह देना। (२) प्रतिक्रमण-मेरे दोष मिथ्या हों ऐसी भावना करनी। (३) तदुभय-पहली दोनों बातोंको करना। (४) विवेक-किसी अनुपान रस आदिका त्याग देना। (५) कायोत्सर्ग-नौं णमोकार मन्त्रको सत्ताईस श्वासमें पढ़ना ऐसे कायोत्सर्गोंका दंड। (६) तप-उपवासादि। (७) छेद-दीक्षाके दिन कम करके दर्जा घटा देना। (८) परिहार-कुछ कालके लिये संघसे दूर रखना। (९) उपस्थापन-फिरसे दीक्षा देना।

(२) **विनय**—चार प्रकार-(१) ज्ञानकी विनय, (२) सम्यग्दर्शनकी विनय, (३) चारित्रकी विनय, (४) उपचार या व्यवहार विनय-दंडवत् प्रणाम आदि।

(३) **वैय्यावृत्य**—दश प्रकारके साधुओंकी सेवा करना, (१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) तपस्वी, (४) शैक्ष-नए दीक्षित साधु, (५) ग्लान-रोगी, (६) गण-एक परिपाटीके, (७) कुल-एक दीक्षादाता

आचार्यके शिष्य, (८) संघ मुनि समूह, (९) साधु—दीर्घकालका दीक्षित, (१०) मनोज्ञ—लोकप्रसिद्ध।

(४) स्वाध्याय—इसके पांच भेद हैं-(१) वाचना, (२) पृच्छना—पूछना, (३) अनुप्रेक्षा—वारवार चिंतवन करना, (४) आम्नाय—शुद्ध पाठ व अर्थ कठस्थ करना, (५) धर्मोपदेश।

(५) व्युत्सर्ग—दो प्रकार—(१) बाह्य उपधि व्युत्सर्ग—बाहरी धन धान्यादि परिग्रहका त्याग। (२) अभ्यतर उपधि व्युत्सर्ग—अन्तरंगके क्रोधादि परिग्रहका त्याग।

(६) ध्यान—एक तरफ उपयोगका या चित्तका रोक देना। यह चार प्रकारका है। (१) आर्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्मध्यान, (४) शुक्लध्यान। दो पहले ध्यान संसारके बढानेवाले है, दो पिछले ध्यान मोक्षके कारण हैं।

आर्तध्यान चार प्रकार—दुःखित भावोंको रखना आर्तध्यान है। यह चार कारणोंसे होता है। (१) अनिष्ट वस्तुका संयोग होनेपर, उससे छूटनेकी चिन्तासे। (२) इष्ट वस्तुके वियोग होनेपर उससे मिलनेकी चितासे, (३) रोगादि होनेसे, (४) आगामी भोगाभिलाष करनेसे। रौद्रध्यान दुष्ट भावोंको कहते हैं। दुष्ट भाव चार प्रकारसे होता है। (१) हिंसामे आनन्द माननेसे, (२) असत्यमे आनन्द माननेसे, (३) चोरीमें आनद माननेसे, (४) परिग्रहमें आनंद माननेसे।

धर्म ध्यान चार प्रकारका है। (१) आज्ञा विचय—जिनागमके अनुसार तत्वोंका विचार करना, (२) अपाय विचय—अपने व दूसरोंके राग, द्वेष, मोहके नाशका उपाय विचारना, (३) विपाक विचय—अपने व दूसरोंके दुःख सुख देखकर कर्मोंकी प्रकृतिको विचारना, जिनके उदयसे सुख या दुःख होरहा है, (४) संस्थान विचय—लोकका स्वरूप विचारना कि यह छः द्रव्योंका समुदाय है। मुख्यतासे आत्माका स्वरूप विचारना। इस ध्यानके चार भेद और हैं—पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत।

(१) **पिंडस्थ ध्यान**—शरीरमें स्थित आत्माके स्वरूपका विचार करना। इसके अभ्यासके लिये पांच धारणाओंके जमानेका अभ्यास करना चाहिये।

(१) **पृथ्वी धारणा**—एक बड़ा भारी निर्मल समुद्र मध्यलोकके समान विचारा जावे, उसके मध्यमें जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजनका चौड़ा एक कमल, ताए हुए सोनेके समान रंगका व एक हजार पत्र सहित विचारा जावे। कमलके बीचमे कर्णिकाके स्थानमे सुवर्ण रंगका पीला मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊंचा विचारा जावे। उस मेरु पर्वतके ऊपर पांडुक वनमें एक पांडुक शिला विचारी जावे। उसपर एक स्फटिकमणिका सिंहासन विचारा जावे। उस सिंहासनपर मैं आत्माको शुद्ध करनेके लिये पद्मासन बैठा हूं ऐसा सोचा जावे। इतना ध्यान बारबार करना पृथ्वी धारणा है।

(२) **अग्नि धारणा**—अपनेको वहीं बैठा हुआ विचारा जावे। फिर यह सोचा जावे कि मेरे नाभीकमलके स्थानपर भितर ऊपरको उठा हुआ सोलह पत्रोंका एक सफेद रंगका कमल है। उसपर पीत रंगके सोलह स्वर लिखे है—अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ, ए ऐ, ओ औ, अं अः, बीचमे र्हं अक्षर लिखा है।

दूसरा कमल हृदय स्थानपर नाभि कमलके ऊपर आठ पत्रोंका औंधा विचारा जावे। इस कमलको ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका कमल माना जावे। फिर सोचे कि र्हंके रेफसे धूआ निकला फिर अग्निकी लौ निकली वह ऊपर उठकर आठ कर्मके कमलको जलाने लगी।

कमलके बीचसे अग्निकी लौ फूटकर ऊपर मस्तकपर आगई, फिर उसकी एक लकीर शरीरके एक तरफ दूसरी लकीर शरीरकी दूसरी तरफ आगई, नीचे दोनों कोने मिल गए। अग्निमय त्रिकोण शरीरको सब तरफ वेढ़ कर बन गया। इस त्रिकोणमें र र र र र र अक्षरोंको अग्निमय फैले हुए विचारें अर्थात् तीनों कोने अग्निमय र र अक्षरोंसे बने हैं।

इस त्रिकोणके बाहरी तीनों कोनोंपर अग्निमय साथिया विचारे व भीतर तीनों कोनोंपर अग्निमय ॐ र्रं लिखा विचारे। फिर सोचे कि भीतरी अग्निकी ज्वाला कर्मोंको व बाहरी अग्निकी ज्वाला शरीरको जला रही है। जलते २ राख बन रही है। जब सब राख होगई तब अग्नि धुल गई वा पहलेके रेफमे समा गई, जहांसे वह अग्नि उठी थी। इतना अभ्यास करना अग्नि धारणा है।

(३) वायु धारणा—फिर वहीं बैठा हुआ सोचे कि मेरे चारों तरफ बड़ी प्रचण्ड पवन चल रही है। पवनका एक गोल मण्डल बन गया है। उस मण्डलमें कई जगह स्वाय स्वाय लिखा है। यह पवनमण्डल कर्मकी व शरीरकी रजको उड़ा रहा है, आत्मा स्वच्छ होरहा है, ऐसा सोचे।

(४) जल धारणा—फिर वहीं बैठा हुआ सोचे कि मेघोंकी घटाएं आगई, बिजली कड़कने लगी, बहुत जोरसे पानी बरसने लगा, पानीका अपने ऊपर एक अर्धचन्द्राकार मंडल बन गया जिसपर पपपप कई जगह लिखा है। यह पानीकी धाराए आत्माके ऊपर लगी हुई रजको धोकर आत्माको साफ कर रही हैं ऐसा सोचे।

(५) तत्वरूपवती धारणा—फिर वहीं सोचे कि मेरा आत्मा सिद्ध सम शुद्ध है, अब इसमें न तो कर्म हैं न शरीर है। ऐसा अपनेको पुरुषाकार शुद्ध विचारके उसीमें जम जाना पिंडस्थ ध्यान है।

इस ध्यानका अभ्यास साधकके लिये बहुत ही आवश्यक है।

(२) पदस्थ ध्यान—मंत्रपदोंके द्वारा अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुका तथा आत्माका स्वरूप विचारना पदस्थ ध्यान है। इसके बहुतसे भेद हैं। ॐ या ह्रीं मनको नासिकाके अग्र भागमें या दोनों भौंहोंके मध्यमें या हृदयकमलके ऊपर चमकता हुआ विचार कर ध्यान करे। कभी कभी पांच परमेष्ठीके गुण विचारे। कभी कभी अपने आत्माको पांच परमेष्ठीरूप विचारे। हृदयस्थानपर आठ पत्तोंका कमल विचारे।

पांच पत्तोंपर क्रमसे णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं लिखा विचारे, शेष तीन पत्तोंपर सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः लिखा विचारे। फिर एक एक पत्तेपर लिखे हुए मंत्रका ध्यान करे व उसके अर्थका मनन करे।

(३) रूपस्थ ध्यान—अरहंत परमात्माका स्वरूप विचारे कि वे समवसरणमें बारह सभाओंके मध्यमें ध्यानस्थ विराजमान हैं। वे अनंतचतुष्टय सहित हैं, परमवीतराग हैं। अथवा किसी जिनेन्द्रकी ध्यानमय

मूर्तिको विचार कर उसका ध्यान करे, फिर उसके द्वारा शुद्धात्मापर मनको लेजावे।

(४) रूपातीत ध्यान—एकमसे पुरुषाकार अमूर्तीक सिद्ध बुद्ध शुद्धात्माका ध्यान करना रूपातीत ध्यान है। धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें तक होता है। आठवेंसे शुक्लध्यान शुरू होता है। इसके भी चार भेद हैं। पहला शुक्लध्यान ग्यारहवें तक व बारहवेंके प्रारम्भमें, दूसरा शुक्लध्यान बारहवेंमे, तीसरा तेरहवेंके अन्तमें, चौथा शुक्लध्यान चौदहवें गुणस्थानमे होता है।

(१) पृथक्त्ववितर्क वीचार—पहला शुक्लध्यान है। यहां अबुद्धिपूर्वक तीन प्रकारका परिवर्तन होता है। (१) मन, वचन, कायमेंसे किसी योगका, (२) एक शब्दसे दूसरे शब्दका, (३) एक ध्येय पदार्थसे दूसरे ध्येय पदार्थका। जैसे आत्मद्रव्यसे आत्माके किसी गुण या पर्यायका।

(२) एकत्ववितर्क अवीचार—किसी एक योगके द्वारा किसी एक शब्दके द्वारा किसी एक ध्येय पदार्थपर उपयोगका रुक जाना।

(३) सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति—जब काययोग बहुत सूक्ष्मतासे चलता है तब यह तीसरा शुक्लध्यान होता है।

(४) व्युपरतक्रियानिवर्ति—इस चौथे शुक्लध्यानमें योगोंका हलनचलन बन्द है। इसका काल इतना कम है जितनी देरमें अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन पांच लघु अक्षरोंका उच्चारण किया जासके। बस, इस शुक्लध्यानके प्रतापसे यह जीव सर्व कर्मोंसे व शरीरसे छूटकर मुक्त व सिद्ध होजाता है।

मोक्षतत्व—जब आस्रवके कारणभाव मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय तथा योग धीरे धीरे मिट जाते हैं तब सयोगकेवली गुणस्थान तक कर्मोंका आना होता है। अयोग गुणस्थानमें कर्म नहीं आते हैं। उधर शुक्लध्यानके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है, बस यह आत्मा परम शुद्ध होकर मुक्त होजाता है तब इसको सिद्ध कहते हैं।

सिद्ध भगवानके आत्माका आकार अन्तिम शरीरके प्रमाण ध्यानाकार रहता है। नख, केशोंमें आत्माके प्रदेश नहीं हैं। इतना ही आकार सिद्ध

अवस्थामें कम होजाता है। जैसे अग्निकी लौ ऊपरको जाती है वैसे सिद्धका आत्मा ऊपरको लोकके अन्ततक चला जाता है। आगे धर्मास्तिकाय न रहनेसे वहीं ठहर जाता है। परमात्मा रूप होकर निजानंदको भोगता हुआ अनन्तकाल तक स्वरूपमग्न स्थित रहता है। फिर कर्मोंका बन्ध न होनेसे मुक्त जीव पीछे लौटकर नहीं आता है, न कभी अशुद्ध होता है।

शिष्य—आपने बहुत कुछ जल्दी कथन कर दिया है। मैं इसपर मनन करूंगा। कृपा करके श्रावकोंका आचार विशेषरूपसे बता दीजिये।

आठवां अध्याय।

श्रावकोंका आचार।

शिक्षक—श्रावकोंका आचार यदि आप सुनना चाहते हैं तो ध्यानपूर्वक सुनें। जैन सिद्धान्तमें पांच व्रत मुख्य हैं। इन्हींको पूर्णपने जैन साधु पालते हैं व इन्हींको अपनी शक्ति अनुसार थोडे रूपसे श्रावक पालते हैं।

ये पांच व्रत हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। इन व्रतोंकी पांच पांच भावनाएं हैं उनको विचारते हुए व्रतोंका पालन होता है। साधु इन भावनाओंपर पूर्ण ध्यान रखते हैं, तब श्रावक यथाशक्ति अपना ध्यान जमाते हैं।

अहिंसाव्रतकी पांच भावनाएं—१-वचनगुप्ति-वचनोंको सम्हाल कर कहना जिससे हिंसा न हो। २-मनोगुप्ति-मनमें किसीका बुरा न विचारना। ३-ईर्यासमिति-भूमि देखकर चलना। ४-आदाननिक्षेपणा समिति-वस्तुको देखकर उठाना रखना। ५-आलोकितपानभोजन-देख कर भोजन करना व पानी पीना व भोजनपानका प्रबन्ध करना। क्योंकि हिंसाके कारण मन वचन काय है, इसलिये इनकी सम्हाल रखना जरूरी है।

सत्यव्रतकी पांच भावनाएं—१-क्रोध त्याग-क्रोधके न करनेकी सम्हाल, २-लोभत्याग-लोभ न करनेका विचार, ३-भीरुत्व त्याग-भय न

क्रोधका त्याग, ४-हास्य त्याग-हंसी मसकरीका त्याग, ५-अनुवीचि भाषण-जिन आगमके अनुकूल वचन कहना। क्योंकि क्रोध, लोभ, भय व हास्यके वशीभूत होकर झूठ बोला जाता है, इससे इनके वेगसे बचना और यह ध्यानमें रखना उचित है कि कोई वचन जैन सिद्धांतके प्रतिकूल न बोला जावे।

अचौर्य व्रतकी ५ भावनाएं—१-शून्यागार-पर्वत, गुफा वनादि शून्य स्थानमें रहना, २-विमोचितावास-दूसरोंसे छोडे हुए उजड मकानमें रहना, ३-परोपरोधाकरण-दूसरोंको आते हुए मना न करना, या जहां दूसरे मना करे वहां न रहना, ४-भैक्ष्यशुद्धि-शास्त्रोंके अनुसार भिक्षा या भोजन करना, अतिचार लगाकर भोजन न करना, ५-सद्धर्माविसंवाद-अपने साधर्मी जीवोंके साथ मेरा तेरा करके झगडा न करना। धार्मिक पदार्थको अपना न मान बैठना। किसी तरह दूसरेके द्वारा चोरीका दोष न लगे इस बातकी सम्हाल इन भावनाओंसे अच्छी तरह होजाती है।

ब्रह्मचर्य व्रतकी पांच भावनाएं—१-स्त्री रागकथा श्रवण त्याग-स्त्रियोंमें राग बढानेवाली कथा वार्ता करनेका व सुननेका त्याग। २-तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग-उन स्त्रियोंके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग। ३-पूर्वरतानुस्मरण त्याग-पहले भोगोंको याद करनेका त्याग। ४-वृष्येष्टरस-त्याग-कामोद्दीपक इष्ट रस खानेका त्याग। ५-स्वशरीर सस्कार त्याग-अपने शरीरको शृंगारित करनेका त्याग।

जो स्त्री व पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य पाले उनको इन बातोंकी सम्हाल बहुत जरूरी है। जबतक निमित्तोंको बचाया न जायगा ब्रह्मचर्यका पालना दुर्लभ है। श्रावकोंको स्वस्त्रीके सिवाय परस्त्रियोंके सम्बन्धमें इन भावनाओंको विचारना चाहिये। भोजनपान सादा शुद्ध संयमम रखनेवाला पौष्टिक करना चाहिये तथा मन भी शांतिभावबर्द्धक व शीलभावबर्द्धक रखना चाहिये। भोज, मन व शरीरकी चेष्टाका बडा भारी असर पडता है।

अपरिग्रहव्रतकी पांच भावनाएं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्णके ग्रहणमें आनेवाले विषय यदि मनोज्ञ हों तो राग नहीं करना व अमनोज्ञ हों तो द्वेष नहीं करना चाहिये। न्यायोचित लाभ जो आवश्यक योग्य वस्तु मिले उसको भोग लेना चाहिये, आकुलित न होना चाहिये।

शिष्य—इन भावनाओंको हमने समझ लिया, बहुत जरूरी है। कृपाकर अब इन व्रतोंका स्वरूप बता दीजिये।

शिक्षक—इनका स्वरूप संक्षेपमें इस भांति है.—

कषाय सहित होकर अपने या दूसरोंके भाव व द्रव्य प्राणोंका घात करना व उनको कष्ट देना हिंसा है। हिंसाका न होना अहिंसा है। आत्माका स्वभाव ज्ञान, शांतभाव, क्षमा आदि भाव प्राण हैं। जब कि द्रव्यप्राण दस हैं-एकेन्द्रियके चार, द्वेन्द्रियके छः, तेंद्रियके सात, चौंद्रियके आठ, असैनी पंचेंद्रियके नौ, सैनी पचेंद्रियके दश। इनका वर्णन जीवतत्वके अध्यायमें कह चुके हैं।

जब कभी क्रोधादि कषाय होता है तब पहले उसीका ही बिगाड होता है, उसकी आत्माके ज्ञान शांति आदि भावोंका नाश होता है तथा उसके द्रव्य प्राणोंको भी निर्बलता प्राप्त होती है। फिर जब वह दूसरोंपर दुर्वचन फेंके व प्रहार करे तो दूसरोंके भी भाव व द्रव्यप्राणका घात होसक्ता है। यदि वह हिंस्य प्राणी धर्मात्मा है व गाली आदिका खयाल नहीं करता है तो इसका भाव कुछ भी नहीं बिगडेगा। यदि वह मारा पीटा जायगा तो द्रव्य प्राण बिगडेंगे। तथापि जिसने दूसरोंको कष्ट देनेका विचार किया व यत्न किया वह तो हिंसाका अपराधी होगया, चाहे दूसरा कष्ट पावे या न पावे।

जितना अधिक कषायभाव होगा, उतना अधिक वह प्राणी हिंसाका अपराधी होगा। जितना अधिक प्राणधारी जीव होता है, उतना अधिक उसके घात करनेमें व कष्ट देनेमें कषाय करना पडता है। साधारण नियम यही है। जैसे एक मानवको मारनेके लिये एक बकरेके मारनेकी अपेक्षा अधिक कषाय हो आता है इसीसे मानव घातका पाप बकरेके घातके पापसे अधिक है। एकेंद्रिय जीवोंके घातमें द्वेंद्रियादिके घातकी अपेक्षा कम कषाय होनेसे कम पाप है। बन्ध, कषायकी मात्राके अनुसार अधिक या कम पडेगा।

जो सर्व रागादि भावोंका त्यागी होगा वह भावमें अहिंसाका पालनेवाला होगा। उससे द्रव्य प्राणोंकी भी हिंसा न होगी। अतएव वही पूर्ण

अहिंसक होगा। हिंसासे बचनेके लिये हमें रागादि भावोंको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भाव हिंसा ही द्रव्यहिंसाकी कारण है। कषाय सहित होकरके प्राणियोंको पीडाकारी अशुभ वचनोंको कहना असत्य है। असत्यका त्याग सत्य व्रत है।

कषाय सहित होकरके विना दी हुई वस्तुका लेना चोरी है। चोरीका त्याग अचौर्य व्रत है। कषाय सहित होकरके रागभावसे स्त्री व पुरुषका स्पर्श सो मैथुन है। मैथुनका त्याग ब्रह्मचर्य है। जगतके चेतन व अचेतन पदार्थोंमे मूर्छा या ममत्व भाव रखना परिग्रह है। परिग्रहसे बचनेके लिये परिग्रहके निमित्तभूत बाहरी क्षेत्र मकान स्त्री पुत्रादिका त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। इन पांच व्रतोंको साधुगण पूर्णपने पालते हैं।

शिष्य—कृपा करके श्रावकोंको कितना अंश इन व्रतोंको कमसे कम पालना चाहिये सो बताइये।

शिक्षक—मै श्रावकोंकी अपेक्षा इन पांच अणुव्रतोंको व उनके रक्षक सात शीलोंको बताता हू, आप समझ लें।

पांच अणुव्रत—एक साधारण श्रावक अहिंसा व्रतकी भावना रखता हुआ प्रथम संकल्पी हिंसाको मन वचन कायसे त्यागता है। आरम्भी हिंसाके त्यागका प्रयत्न अपनी अंतरंग इच्छाके अनुसार करता है। जिससे लौकिक व्यवहारमे हानि न आवे उस तरह आरंभादि कार्य गृहस्थी करता है।

संकल्पी हिंसा—वह है जो हिंसाके संकल्प या इरादेसे की जावे और वह व्यर्थ ही हो। जैसे धर्मके नामसे पशुओंकी बलि चढ़ाना, शिकार खेलके मृगादिको मारना, मांसके लिये पशुघात करना या कराना, मौज-शौकके लिये हिंसा कराना।

आरम्भी हिंसा—प्रयोजनभूत हिंसा है। उसके तीन भेद हैं—

(१) **उद्यमी हिंसा**—जो गृहस्थ योग्य छ. आजीविकाके साधनोंमे की जाती है-(१) असिकर्म-सिपाहीका काम, (२) मसिकर्म-लिखनेका काम, (३) कृषिकर्म-खेती, (४) वाणिज्य-व्यापार, (५) शिल्प-नानाप्रकारके उद्योग, (६) विद्याकर्म-गाना, बजाना, चित्रकला आदि।

(२) **गृहारंभी हिंसा**—जो गृहके कामकाजमें, भोजनपानके प्रबन्धमें, मकान बनानेमें, कुआ खुदानेमें, बाग लगाने आदिमें की जाती है।

(३) **विरोधी हिंसा**—कोई अन्यायी या दुष्ट पुरुष अपना सामना करे, अपनी जान लेना चाहे, अपना माल छीनना चाहे, अपने कुटुम्बका नाश करना चाहे, देशपर आक्रमण करके साधु पुरुषों व सज्जनोंको कष्ट देना चाहे तो उससे अपनी रक्षार्थ, देशरक्षार्थ, माल जायदादके रक्षार्थ, प्रयत्न करना। यदि कोई प्रयत्न न चल सके तो शस्त्र प्रयोगद्वारा उसको हटाना। इसमे जो प्राणियोंका घात होगा वह विरोधी हिंसा है।

एक साधारण श्रावकको संकल्पी हिंसाका त्याग होता है। आरंभी हिंसाका त्याग नहीं होता है। यही **अहिंसा अणुव्रत** है।

राज्य या पंच दंड योग्य असत्य नहीं कहना। कर्कश, कठोर, चुगलीके वचन न कहना। क्रोध, शोक, वैर, कलह करानेवाले वचन न कहना। जो वस्तु हो उसको नहीं है ऐसा न कहना। जो वस्तु नहीं है उसको है ऐसा न कहना। वस्तु कुछ है कहना कुछ है ऐसा नहीं कहना।

ऐसा वचन भी न कहना जिससे दूसरोंके प्राण चले जावें जैसे—किसी शिकारीने जानवरोंका हाल पूछा कि अमुक जंगलमे मृगादि हैं या नहीं? आप जानते हैं तो भी नहीं बताना, क्योंकि ऐसा सत्य वृथा ही प्राणोंका घातक होगा। जिससे अपना व दूसरोंका हित हो ऐसा वचन बहुत सम्हालकर कहना सत्य अणुव्रत है। कभी भी शास्त्रके विरुद्ध वचन न कहना। जिससे अपना विश्वास जगतमे बढ़े ऐसा वचन कहना। हितमित मिष्ट वचन कहना। थोड़े शब्दोंमे बहुत मतलब प्रगट करनेवाला हितकारी मीठा वचन कहना **सत्य अणुव्रत है**।

राज्य या पंच दंड योग्य चोरी न करना। दूसरेकी वस्तु भूली, पड़ी हुई, गिरी हुई नहीं उठाना। विश्वासघात करके किसीका धन न छीनना। न्यायसे द्रव्य कमाना। अन्यायसे द्रव्य कमानेका त्याग करना **अचौर्य अणुव्रत** है। जो वस्तुएं सबके काममें आसकती हैं व जिसके लिये राज्यकी व अन्य किसीकी मनाई नहीं है उसको बिना दिये यह श्रावक ले सकता है। जैसे नदी, कूपका पानी, मिट्टी, जंगलकी लकड़ी, वनके फलादि। यदि

मनाई हो तो विना आज्ञाके न लेनी चाहिये। यह श्रावक न्यायके ऊपर चल करके परिणामोंको चोरीके भावसे बचाएगा।

अपनी विवाहिता स्त्रीमे सन्तोष रखके परस्त्री या वेश्या आदिका त्याग करना **ब्रह्मचर्य अणुव्रत** है। अपनी स्त्रीमें भी नियमित काम भोग करना जिससे शरीर निर्बल न हो, तथा धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थके साधनमें विघ्न न पड़े। बलवान योग्य सन्तानके भावसे स्त्री प्रसंग करना। मित्रवत् स्त्रीके साथ रहकर दोनों मिलकर धर्मसाधन व परोपकार करना, एक दूसरेकी उन्नति चाहना व परस्पर सहाई होना।

आजन्मके लिये तृष्णाके घटानेके लिये अपनी भावनाके अनुसार सम्पत्तिका नियम कर लेना कि इतनी सम्पत्ति होजानेपर हम अधिक नहीं कमावेंगे-उसीके भीतर भीतर ही रखेंगे। जैसे-कोई दस हजार, पचास हजार, एक लाख, दस लाख, एक करोड, दस करोड़ या अधिकका प्रमाण करले। फिर इस सम्पत्तिको तफसीलवार नीचे लिखे १० प्रकार **परिग्रहका प्रमाण** करके बांट लेवें।

१ क्षेत्र-खेत कितना, २ वास्तु-मकान कितने, ३ हिरण्य-चांदी कितनी या कितना रुपया, ४ सुवर्ण-सोना जवाहरात, ५ धन-गाय, भैंस, घोडे आदि, ६ धान्य-अनाज इतने मनसे अधिक नहीं या एक महीनेके खर्चके लायक, ७ दासी-इतनीसे अधिक दासी न रखूंगा, ८ दास-इतने दाससे अधिक न रक्खूंगा, ९-कुप्य-कपडे इतने जोडसे अधिक न रक्खूंगा १०-भाण्ड वर्तन इतने वजनके व इतने जोडसे अधिक न रक्खूंगा। जितनेसे काम चल सके उतना रखले, शेषका त्याग करदे। परिग्रह प्रमाण संतोष भावको बढानेवाला है व अधिक हिंसादि पापोंसे बचानेवाला है।

चक्रवर्ती, राजा, धनिक, सेठ अपनी २ योग्यतानुसार परिग्रहका प्रमाण कर सकते हैं।

तीन गुणव्रत— जिनसे अणुव्रतोंका मूल्य बढ जावे उनको गुणव्रत कहते हैं। जैसे ५ को ५ से गुणनेपर २५ होजाते हैं।

(१) **दिग्विरति**—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर चार दिशाओंमें चार,

विदिशाओं या कोनोंमे या ऊपर व नीचे दश दिशाओंमें जहांतक जानेका प्रयोजन मालूम होता हो वहांतकके लिये जन्मभरके लिये प्रमाण करले कि इतनी दूरसे अधिक लौकिक कामके लिये जाऊँगा नहीं व इससे बाहरसे माल मगाऊँगा नहीं व बाहर भेजना नहीं।

इस प्रकार हजारों कोसतक भी प्रमाण कर सकता है। यदि सन्तोष हो तो बहुत थोडा क्षेत्र रख सकता है। किसी नदी, पर्वत, समुद्रकी हदसे प्रमाण कर सकता है। उस व्रतसे पांच व्रतोंका मूल्य इसलिये बढ़ जाता है कि वह मर्यादाके भीतर ही प्रयोजनभूत आरम्भ करेगा, मर्यादाके बाहर बिलकुल आरम्भ हिंसा न करेगा।

(२) **देशविरति**—एक दिन, सप्ताह, पक्ष, मास आदिकी मर्यादाके लिये जन्मपर्यंत किये हुए क्षेत्रके प्रमाणमेसे घटाकर प्रयोजनभूत क्षेत्र आरम्भके लिये रख लेना, शेष क्षेत्रको उतने कालके लिये त्याग देना देशविरति है। इससे वह और भी व्रतोंका मूल्य बढ़ा लेता है।

कभी इस श्रावकको अपने ग्रामसे बाहर कुछ काम नहीं रहता है तब वह किसी दिन ग्रामकी हदभरको ही रख लेता है, बाकीका त्याग कर लेता है। कभी एक मुहल्ले व एक बाजारका ही नियम कर लेता है। कभी एक घरमें ही विश्राम करनेका नियम कर लेता है। इच्छाओंके रोकनेका यह बढ़िया साधन है।

(३) **अनर्थदण्ड विरति**—मर्यादाके भीतर भी प्रयोजनभूत आरभ करना, बेमतलब आरभका त्याग देना अनर्थदण्ड विरति है। इससे व्रतोंका मूल्य और बढ़ जाता है। वह बेमतलब पापोंसे बच जाता है। अनर्थदण्डके पांच भेद है—

(१) अपध्यान–दूसरोंकी हारजीत, वध, बन्धन, अगछेद, धन हरण आदि विचारना, (२) पापोपदेश–जिससे पशुओंको दुःख हो ऐसे व्यापारका व हिंसाकारी आरम्भका दूसरेको उपदेश देना कि जिससे वह पापमे लग जावे, (३) प्रमादचर्या–प्रयोजन बिना आलस्यसे वृक्ष छेदना, पत्ते तोड़ना, फल फूल नोचना, जमीन खोदना, पानी फेंकना, आग जलाना, हवा चलाना, व अन्य कोई काम करना, (४) हिंसादान–हिंसाकारी हथि-

खड्ग, रस्सी, लकड़ी, अग्नि आदि माँगे देना, (५) दुःश्रुति-हिंसामे प्रवर्तनेवाली, रागभाव बढ़ानेवाली कथाओंको सुनना पढ़ना बनाना।

इन पापोंसे कुछ अपना मतलब नहीं होता है किन्तु वृथा ही सकल्प किये हुए भावोंसे व वचन व कायकी प्रवृत्तिसे पाप कर्मोंका बन्ध होजाता है। एक श्रावक इन वृथाके पापोंको त्याग देता है क्योंकि वह ऐसा धर्म व्यापारी है जिससे अपनी वृथा हानि न उठाकर वह पुण्य कर्मोका सञ्चय किया करता है।

(३) **चार शिक्षाव्रत**—इन व्रतोंके पालनेसे मुनि धर्मकी शिक्षा मिलती है। साधु अवस्थामे जिन कार्योंको विशेष करना होता है उनका अभ्यास करके शिक्षा लेना शिक्षाव्रत है।

(१) **सामायिक**—समय आत्माको कहते हैं। आत्मा सम्बन्धी वीतराग विज्ञानमय शुद्ध भावोंकी या समता भावोंकी प्राप्ति करना सामायिक है। सामायिक ध्यानका साधन है, बहुत ही उपयोगी है, मनकी शुद्धिका उपाय है, पापोंको क्षय करनेवाला है।

सामायिककी विधि—प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल तीन समय छः छः घडी काल सामायिकका है। मध्यम चार घडी, जघन्य दो घडी है। एक घडी २४ मिनटकी होती है। जितनी देर सामायिक करनी हो उसका आधी देर पहले व आधी देर पीछे लेवे।

जैसे-४८ मिनिट सामायिक करनी हो तो सूर्योदयसे २४ मिनट पहलेसे २४ मिनट सूर्योदयतक करे। यदि कार्यवश न बन सके तो ७२ मिनट पहलेसे लेकर ७२ मिनट पीछेतक १४४ मिनटके बीचमे कभी भी दो घडी या ४८ मिनट सामायिक करले। एकान्त स्थानमें बैठे, जहां मनको डिगानेवाले शब्द व काम न हों। चटाई, पाटा, पत्थरकी शिलापर सामायिक करे। मनको उतनी देरके लिये सर्व कामोंसे रोकले। शरीरपर जितने कम वस्त्र हों उतना ठीक है।

पूर्व या उत्तरकी तरफ मुँह करके कायोत्सर्ग खडा होकर हाथ लटकाके नौदफे णमोकार मंत्र पढ़कर दंडवत् करे। तब प्रतिज्ञा करे कि जबतक सामायिक करता हू, जो कुछ मेरे पास है व चारों तरफ थोडी जगहके

और मन मुझे त्यागा है। फिर उसी दिशाकी तरफ खडा हो नौ दफे या या तीन दफे णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त व एक शिरोनति करे। जोड़े हुए हार्थोको दाएंसे दाहने घुमानेको आवर्त कहते हैं व जोड़े हुए हार्थो पर मस्तक झुकाकर लगानेको शिरोनति कहते है। फिर खडे २ दाहने हाथकी तरफ मुड जावे। इधर भी नौ दफे णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त व एक शिरोनति करे।

ऐसा ही दूसरी दो दिशाओंमें करके पूर्व या उत्तरको मुख करके पद्मासन या अर्द्धपद्मासन बैठ जावे। पहले कोई सामायिक पाठ पढ़े * फिर जप करे, फिर कुछ ध्यान करे। अन्तमें फिर खडा होकर नौ दफे णमोकार मंत्र पढ़कर दंडवत् करके सामायिक पूर्ण करे।

चारों तरफ घूमकर तीन आवर्त व एक शिरोनति करनेका प्रयोजन यह है कि हरएक दिशामे जो तीर्थ स्थान मन्दिर मुनि आदि हों उनको नमन किया जावे। अभ्यास करनेवाला एक या दो या तीन दफे व जितने समयके लिये कर सके सामायिक करे। उस समय सर्व प्राणी-मात्रपर समता भाव रखले, अपने दोषका पछतावा करे व क्षमाभाव रखे। इस गाथाका भाव विचारे—

" खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं न केणवि॥ "

मैं सर्व जीवोंपर क्षमा करता हू, सर्व जीव मुझपर क्षमा करें। मेरी मैत्री सर्व प्राणियोंसे हो। मेरा वैर किसीसे भी न रहे।

(२) **प्रोषधोपवास**—प्रोषध पर्वको कहते हैं। महीनेमे चार पर्व दिन प्रसिद्ध हैं—दो अष्टमी व दो चौदस। इन चार दिनोंमें चार प्रकार आहार छोड़कर उपवास करना चाहिये। अपना समय धर्मध्यानमें बिताना चाहिये। धर्मस्थानमें बैठकर समय सामायिक, स्वाध्याय, धर्मचर्चा, पूजनादिमें बिताना चाहिये।

---

* सामायिक पाठ श्री अमितगति आचार्य कृत भाषा छन्द व भाषाटीका सहित =) में दि॰ जैन पुस्तकालय-सूरतसे मिलता है।

उपवास करनेसे शरीर शुद्ध होता है, रोगोंके कारण मिटते हैं, वचन व मन शुद्ध होता है, आत्मा पवित्र होता है। उत्कृष्ट प्रोषध सप्तमी व नौमीको एकाशन, व अष्टमीको उपवास करे, १६ पहर या ४८ घण्टे धर्मध्यानमें लगावे। मध्यम प्रोषध सप्तमीकी सध्यासे नौमीके प्रात:काल तक १२ पहर धर्मध्यानमें गमावे। जघन्य प्रोषध अष्टमीके ८ पहर धर्मध्यानमे बितावे। भोजन त्याग तो सप्तमीको भी रहेगा। दूसरी विधि मध्यम या जघन्यकी यह है कि १६ पहर धर्मसाधन करे। आवश्यकतानुसार जल लेवे यह मध्यम है।

जलके सिवाय अष्टमीको एक भुक्त भी करले, परन्तु १६ पहर धर्म-ध्यान करे। अभ्यास करनेवाला अनुपवास भी कर सकता है अर्थात् १२ पहरके उपवासमे बीचमे एक दफे जल भी लेवे अथवा १२ पहरके मध्यमें एकासन कर सकता है। शक्तिके अनुसार इस शिक्षाव्रतको पालना चाहिये।

(३) **भोगोपभोग परिणाम**—भोग और उपभोगके पदार्थोंका आवश्यकतानुसार रोज सबेरे २४ घण्टेके लिये प्रमाण कर लेना। जो एक ही दफे काममे आसके वह भोग है। जैसे भोजन, सुगंध। जो बारबार काममें आसके सो उपभोग है। पांचों इन्द्रियोंकी इच्छाओंको कम करनेके लिये अनावश्यक भोग और उपभोग पदार्थोंका त्याग करदे। नीचे प्रकार सत्रह १७ नियम लेनेसे यह शिक्षाव्रत भलेप्रकार पल जाता है—

१ भोजन—भोजन के दफे करूंगा, २ पान—भोजनके सिवाय पानी के दफ पीऊंगा, ३ षट् रस—दूध, दही, घी, तेल, निमक, मीठा इनमेंसे अमुक २ रसोंका त्याग करता हूं, ४ कुंकुमादि विलेपन—चन्दन तेलादि लगाऊंगा या नहीं, ५ पुष्प—फूल सूंघूंगा या नहीं, ६ ताम्बूल—खाऊंगा या नहीं या कितने खाऊंगा, ७ लौकिक गाना बजाना करूंगा या सुनूंगा या नहीं, या नहीं, या के दफे। ८ लौकिक नाच नाटक देखूंगा या नहीं। ९ ब्रह्मचर्य पालूंगा या नहीं ? १० स्नान के दफे करूंगा ? ११ आभूषण कितने पहनूंगा ? १२ वस्त्र कितने जोड़ काममें लूंगा ? १३ वाहन चढूंगा या नहीं या कौन २ पर चढूंगा ? १४ बिछौने

प्रकारके आसनोंपर बैठूंगा। १५-कितने प्रकारकी शय्यापर सोऊँगा। १६-हरे फल तरकारी इतनी खाऊंगा। १७-कुल खानपानकी इतनी वस्तु लूंगा, जैसे दाल, चावल, कढी आदि.। -

इस शिक्षाव्रतके पालनेवालेको किन्हीं वस्तुओंको यमरूप जन्मभरके लिये त्याग कर देना चाहिये। जैसे-मांस, मदिरा, मधुको व त्रस सहित फलोंको। जैसे-बड, पीपल फल, गूलर, पाकर अजीर, गोभी, केतकी, आदिके फूलोंको व आलू घुइयां आदि कदमूलोंको। फूलोंमे त्रस जन्तु भी बैठ रहते है। तथा कदमूल वा फूलोंमे साधारण कायका दोष आता है। एक शरीरके स्वामी अनेक एकेंद्रिय जीव हों, उनको साधारण काय कहते हैं। मक्खनको न खाकर उसको ४८ मिनटके भीतर गर्म करके घी बना लेवे।

(४) **अतिथि संविभाग**—जो सयमको पालते हुए भ्रमण करते है उनको अतिथि या साधु कहते हैं। उनको अपने ही लिये बनाए हुए आहारमेंसे विभाग करके देना। साधुको नौपकार भक्ति करके दान देवे।

१-प्रतिग्रह-यहां आहारपान शुद्ध है, ऐसा तीनवार कहकर साधुको भीतर लेजाना। २-उच्चस्थान-विराजमान करना। ३-पाद-प्रक्षालन करना, ४-पूजन करना, ५-तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार करना, ६-वचन शुद्धि रखना, ८-मन शुद्धि रखना, ९-आहार शुद्ध देना।

मुनि उत्तम पात्र है। श्रावक मध्यम पात्र है। व्रत रहित श्रद्धावान जैनी जघन्य पात्र है। उनको भक्ति पूर्वक आहार, औषधि, आश्रय व शास्त्र या विद्या दान देना पात्र दान है। दुःखित भुक्षित किसी भी मानव या पशुको दयाभावसे आहारादि देना करुणादान है। दान देकर फिर भोजन करना यह चौथा शिक्षाव्रत है।

श्रावकोंको सच्चा श्रद्धान या सम्यग्दर्शन रखते हुए पांच अणुव्रतोंको, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे सात शीलोंके साथ बारह व्रत पालने चाहिये।

सल्लेखना—बारह व्रतोंके सिवाय यह भावना भानी चाहिये कि हमारा मरण शांतिपूर्वक हो। जब मरणकी सभावना हो तब धीरे२ आहार-

पान छोड़े व ध्यान व तत्वविचारमे शांतभावसे रहकर प्राण छोडे। प्राणोंकी जोखम जब कभी दिखती हो तब समाधिमरणके साथ प्राण त्यागे, धर्मध्यानसे मरे, जिससे भविष्यकी गति अच्छी हो।

एक श्रावक सम्यग्दर्शनके साथ बारहव्रत और सल्लेखना व्रतको पालना है। इन चौदह बातोंमे पांच पाच अतीचार या दोष प्रमाद या कषायके उदयसे लग जाना सभव है। उन दोषोंको जानकर उनसे बचनेका उद्यम करना चाहिये।

(१) **सम्यग्दर्शनके पांच अतीचार**—(१) शंका–किसी तत्वमे कभी शका होजावे, (२) कांक्षा–भोगोंकी इच्छा होजावे, (३) विचिकित्सा–दुःखी रोगी दरिद्रीको देखकर घृणा पैदा होजावे, (४) अन्यदृष्टि प्रशसा–अज्ञानी अश्रद्धालुकी अज्ञानमई धर्मकार्यकी मनसे सराहना करे, (५) अन्यदृष्टि सस्तव–अज्ञानी व अश्रद्धालुकी अज्ञानमई धर्मक्रियाकी वचनसे प्रशसा करे।

(२) **अहिंसा अणुव्रतके पांच अतिचार**—कषायके वश (१) बध–किसीको बन्धनमे डालदे, (२) बध–लाठी चाबुकादिसे मारे, (३) छेद–कान नाक अगोपांग छेद डाले, (४) अतिभारारोपण–न्यायको उल्लघन करके अधिक भार लाद दे, (५) अन्नपाननिरोध–अपने आधीन मानव व पशुओंको समयपर भोजनपान न दे व कम दे।

दयावानको उचित है कि वह क्रोध, मान, माया, लोभके वशीभूत होकर ऐसा काम प्राण पीडाकारी न करें। दण्ड व सुधारके अभिप्रायसे बध बन्धन आदि आतीचार न होगा।

(३) **सत्य अणुव्रतके पाँच अतीचार**—(१) मिथ्योपदेश–धर्मसाधन आदिमे मिथ्या उपदेश देना, (२) रहोभ्याख्यान–स्त्री पुरुषकी एकांतमे की हुई क्रियाको प्रकाश कर देना, (३) कूटलेखक्रिया–मायाचारसे झूठा लेख लिखना, (४) न्यासापहार–अमानतका रुपया कोई भूलसे कम मांगे तो उसे कम देदेना, (५) साकार मंत्रभेद–किन्हींकी एकांतकी सलाहको उनके मुख आदिकी चेष्टासे जानकर प्रगट कर देना।

(४) **अचौर्य अणुव्रतके पांच अतीचार**—(१) स्तेनप्रयोग-चोरीका उपाय बताना। (२) तदाहृतादान-चोरीका लाया हुआ माल ले लेना। (३) विरुद्ध राज्यातिक्रम-विरुद्ध राज्य या राज्यमें अप्रबन्ध होनेपर न्यायको उल्लंघन करके लेनदेन करना, अल्प मूल्यकी चीज बहुत दाममें बेचना। (४) हीनाधिक मानोन्मान-तौलने नापनेके बांट गज आदि कमतीसे देना बढतीसे लेना। (५) प्रतिरूपक व्यवहार-बनावटी सिक्का चलाना व खरीमें खोटी मिलाकर खरी कहकर बेचना।

(५) **ब्रह्मचर्य अणुव्रतके पांच अतीचार**—(१) पर विवाह करण-अपने कुटुम्बके सिवाय दूसरोंके पुत्र पुत्रियोंकी सगाई मिलाना। (२) इत्वरिका परिगृहीतागमन-विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीसे सम्बंध रखना। (३) इत्वरिका-अपरिगृहीता गमन-व्यभिचारिणी बिना विवाहिता वेश्या आदिसे सम्बन्ध रखना। (४) अनंगक्रीडा-कामके नियत अंगोंके सिवाय अन्य अंगोंसे कामचेष्टा करना। (५) काम तीव्राभिनिवेश-अपनी स्त्रीसे बहुत काम सेवना।

(६) **परिग्रहप्रमाणव्रतके पांच अतीचार**—दस प्रकारके परिग्रहमें दो दोके पांच जोडे करके हरएक जोडेमें एक वस्तुको घटाकर दूसरी वस्तु बढा लेना। जैसे चांदी, सोनेकी मर्यादामें सोनेकी मर्यादा बढाकर चांदीकी कम कर देना।

(७) **दिग्विरतिके पांच अतीचार**—प्रमाद या मोहसे (१) ऊर्ध्वातिक्रम-ऊपरकी हदसे अधिक चले जाना, (२) अधोऽतिक्रम-नीचेकी हदको उल्लंघना, (३) तिर्यग्व्यतिक्रम-आठ दिशाओंकी हदको लांघ जाना, (४) क्षेत्रवृद्धि-एक तरफ मर्यादा घटाकर दूसरी तरफ बढा लेना, (५) स्मृत्यन्तराधान-ली हुई मर्यादाको भूल जाना।

(८) **देशविरतिके पांच अतीचार**—(१) आनयन-मर्यादाके बाहरसे मंगाना। (२) प्रेष्यप्रयोग-मर्यादासे बाहर भेजना। (३) शब्दानुपात-मर्यादासे बाहर बात कर लेना। (४) रूपानुपात-मर्यादासे बाहर रूप दिखाकर बता देना। (५) पुद्गलक्षेप-मर्यादासे बाहर कंकड व पत्र फेंककर बता देना।

(९) **अनर्थदण्ड विरतिके पांच अतीचार**—(१) कंदर्प–रागकी तीव्रतासे भण्ड वचन बकना, (२) कौत्कुच्य–भण्डवचनोंके साथ कायकी कुचेष्टा भी करनी, (३) मौखर्य–वृथा बहुत बकवाद करना, (४) असमीक्ष्य अधिकरण–प्रयोजन बिना काम करना, (५) उपभोग परिभोगानर्थक्य–भोग व उपभोगके पदार्थोंका वृथा एकत्र करना।

(१०) **सामायिकके पांच अतीचार**—(१) कायदुष्प्रणिधान–शरीरकी खोटी चेष्टा करनी, (२) वाग्दुष्प्रणिधान–सांसारिक दुष्ट वचन कहना, (३) मनोदुष्प्रणिधान–मनका दुष्ट भावोंमे ले जाना, (४) अनादर, (५) स्मृत्यनुपस्थान–सामायिक पाठ जप आदि भूल जाना।

(११) **प्रोषधोपवासके पांच अतीचार**—अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित–बिना झाडे (१) उत्सर्ग–मलमूत्रादि कर देना, (२) आदान–शास्त्रादिको उठाना, (३) संस्तरोपक्रमण–चटाई आदि बिछा देना तथा (४) अनादर–उत्साह न रखना, (५) स्मृत्यनुपस्थान–धर्मक्रियाओंको भूल जाना।

(१२) **भोगोपभोग प्रमाणके पांच अतीचार**—(१) सचित्त–त्यागी हुई सचित्त वस्तुको प्रमादसे खा लेना, (२) सचित्त सम्बन्ध-त्यागी हुई सचित्तसे छूई हुई वस्तुको खाना, (३) सचित्त सन्मिश्र–त्यागी हुई सचित्तसे मिलाकर किसीको खाना, (४) अभिषव–कामोद्दीपक पदार्थ खाना, (५) दुःपक्वाहार–ठीक न पका हुआ, जला या कच्चा भोजन करना, जो ठीक हजम न हो सके उसे खाना।

(१३) **अतिथि संविभागके पांच अतीचार**—ये मुनिकी अपेक्षासे है–(१) सचित्तनिक्षेप–सचित्तपर रखी हुई वस्तु देना, (२) सचित्तापिधान–सचित्तसे ढकी हुई वस्तु देना, (३) परव्यपदेश–दूसरे दातारको दानके लिये कहकर आप चलेजाना, (४) मात्सर्य–दूसरे दातारके साथ ईर्षा करके देना, (५) कालातिक्रम–इसके कालको टालके बे समय देना।

(१४) **सल्लेखनाके पांच अतीचार**–(१) जीविताशंसा–अधिक जीनेकी इच्छा करना, (२) मरणाशंसा–जल्दी मरण चाहना, (३) मित्रानुराग-पूर्वके लौकिक मित्रोंसे प्रेम बताना, (४) सुखानुबन्ध–पिछले

इन्द्रिय सुखोंको याद करना, (५) निदान-आगामी भोगोंकी चाहना करना।

साधारण रीतिसे चौदह बातें श्रावकोंके लिये आवश्यक हैं। इन व्रतोंको क्रम क्रमसे उन्नति करते हुए पालनेकी अपेक्षा ग्यारह प्रतिमाएँ या श्रावककी श्रेणियां बताई गई हैं। क्या आप जानना पसन्द करेंगे?

शिष्य—मुझे श्रावकोंका चरित्र जानकर बहुत आनन्द हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि जो गृहस्थ उनपर चलेगा वह नमूनेदार धर्मात्मा गृहस्थ होगा। वह किसी राज्यके अपराधमें कभी नहीं आसकता है। वह जगतमें प्रतिष्ठाका पात्र होगा। ग्यारह प्रतिमाएँ भी समझा दीजिये।

शिक्षक—ये ग्यारह श्रेणियां इस ढंगसे बताई गई हैं कि आगे २ की प्रतिमावाला नीचेके चारित्रको छोड़ता नहीं है किन्तु उसको पालता हुआ नई प्रतिमाका चारित्र पालता है। ये सब पांचमे गुणस्थानमें है।

(१) **दर्शन प्रतिमा**—इसमें सम्यग्दर्शनको दोषरहित पालनेका अभ्यास करना चाहिये। सम्यक्तके पच्चीस दोषोंको बचानेकी सम्हाल रखनी चाहिये।

(१) आठ मद—जाति (नाना मामा आदि), कुल (पिता आदि), रूप, बल, धन, अधिकार, विद्या, तप इन बातोंका घमण्ड करना आठ मद दोष है।

(२) तीन मूढताएं—मूर्खतासे देवी देवी रागीद्वेषी देव पूजना, देव मूढता है। परिग्रहधारी गुरु मानना पाखण्ड मूढता है। लौकिक क्रियाओंको धर्म मानना लोकमूढता है।

(३) छह अनायतन—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और इनके तीन सेवकोंकी ऐसी संगति करनी जिससे श्रद्धानमें कमी आजाय।

(४) आठ शंकादि दोष—इनके विरोधी नीचे लिखे आठ गुणोंको या सम्यक्तके अंगोंको पालना।

(१) निःशंकित अंग—तत्वोंमें शंका न रखकर निर्भय होकर धर्म पालना।

(२) निःकांक्षित अंग—इन्द्रिय भोगोंमें सुखकी श्रद्धा न रखना।

(३) निर्विचिकित्सित अंग—रोगी दुखी दरिद्री आदिसे घृणा न करनी।

(४) अमूढदृष्टि अंग—मूढताईसे देखादेखी कोई धर्मक्रिया न करनी।

(५) उपबृहन या उपगूहन अंग—अपने आत्मीक गुणोंको बढाना। परके दोषोंको प्रकाश न करके उसके छुडानेका उद्यम करना।

(६) स्थितिकरण अंग—अपनेको व दूसरोंको धर्ममें स्थिर करना।

(७) वात्सल्य अंग—सब सहधर्मी भाई बहनोंमें गौवत्सके समान प्रेम रखना।

(८) प्रभावना अंग—जिस तरह बने अज्ञान अंधकारको मेटकर सबमें तत्वज्ञानका प्रचार करना। सम्यक्ती इन आठ अंगोंको पालकर इनके विरोधी दोषोंसे बचता है।

इस तरह पच्चीस दोषोंको बचाता है। यह सम्यक्ती देवपूजा, गुरुभक्ति, शास्त्रस्वाध्याय, संयम, सामायिक (तप), दान इन छः नित्य कर्मोंका रोज अभ्यास करता है। तथा आठ गुणोंको पालता है। १—मदिराका त्याग, २—मांसका त्याग, ३-मधुका त्याग। मधुके लिये मक्खियोंका छत्ता तोडकर उनको काट दिया जाता है व छत्तेसे एकत्रित मधुमें बहुतसी मक्खियां मर जाती हैं, ४—संकल्पी निरर्थक हिंसाका त्याग, ५—स्थूल असत्यका त्याग, ६-स्थूल चोरीका त्याग, ७—परस्त्रीका त्याग, ८—अतितृष्णाका त्याग या परिग्रह परिमाण।

(२) **व्रत प्रतिमा**—पहली सब क्रियाओंको पालता हुआ बारह व्रतोंको पालता है। पांच अणुव्रतोंके २५ अतीचारोंको बचाकर पालता है। सात शीलके अतीचारोंके बचानेका उपाय रखता है। सामायिक जितनी देर होसके एक समय भी कर सकता है। अष्टमी, चौदसको उपवास न होसके तो एकासन भी कर सकता है। कभी असमर्थ हो तो सामायिक व प्रोषधोपवास नहीं भी करे।

(३) **सामायिक प्रतिमा**—पहली सब क्रियाओंको पालता हुआ तीन काल सवेरे दोपहर व सांझको ४८ मिनिट या दो घडी अतीचारोंको टालकर सामायिक करे। कभी ४८ मिनिटसे कुछ कम अन्तर्मुहूर्त भी कर सकता है।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा—पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ महीनेमे चार दिन उत्तम, मध्यम, जघन्य प्रोषध शक्तिके अनुसार करे, पांच अतीचारोंको टाले।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा:—पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ एकेंद्रिय सहित सचित्त पानी न पीवे न पिलावे, सचित्त तरकारी फलादि न खावे न खिलावे। वह पानीको गर्म या प्रासुक कर सकता है व फलादिको प्रासुक कर सकता है। छिन्नभिन्न करनेसे, गर्म करनेसे फलादि सचित्तसे अचित्त हो जाते है। यह दयावान है, बहुत कम वनस्पतिका व्यवहार करता है। इसको सचित्त पानी आदिसे नहाने आदिका त्याग नही है। लौंग इलायची आदि कषायला पदार्थ कूटकर डालनेसे पानी प्रासुक होजाता है, जिससे रंग बदल जावे।

(६) रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा—पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ रात्रिको न तो स्वयं किसी प्रकारका भोजनपान करे न दूसरोंको करावे। यह श्रावक बहुत सन्तोषी हो जाता है। रात्रिको गृहके कुटुम्बियोंकी सम्हाल दूसरोंके आधीन कर देता है। आप अधिकतर धर्मध्यानमे रात्रिका समय बिताता है, भोजनादिकी चर्चा भी नहीं करता है।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ अपनी स्त्रीका भी राग छोड देवे। घरमे रहे तो एकांतमे सोवे, उदासीन वैराग्ययुक्त वस्त्र पहरे। यदि घर त्यागे तो उदासीन श्रावकके रूपमे भ्रमण करके देशाटन करे—धर्मप्रचार करे। यह रुपया रख सकता है, सवारी पर चढ सकता है, अपने हाथसे भोजनपानका प्रबन्ध कर सकता है, निमंत्रण पानेपर भक्ति सहित दान दिये जानेपर ग्रहण कर सकता है।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा—पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ खेती, व्यापारादि, रसोई, पानी आदिका सब आरम्भ छोडदे सन्तोषसे रहे। घरमे रहे तो घरवाले जब भोजनको बुलावे सन्तोषसे जीमले। धार्मिक आरम्भ कर सकता है। ध्यानका अधिक अभ्यास करता है।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—पिछली सब क्रियाओंको करता हुआ

अपनी जायदादको जिसको देना हो दे दे या दानमें लगादे आप रुपया पैसा सब त्यागदे, कुछ वस्त्र व एक दो वर्तन रक्खे, घर छोड़कर देशाटन करे या एकातमें बाग या नसियामें रहे। निमन्त्रण पानेपर भोजन करले।

(१०) **अनुमति त्याग प्रतिमा**- पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ सांसारिक कामोंमें किसीको सम्मति देनेका त्याग करदे। भोजनके समय पर बुलानेसे जावे, पहलेसे निमत्रण न माने।

(११) **उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा**—इस श्रेणीमें यह भिक्षावृत्तिसे भोजन करता है। यह उस भोजनको स्वीकार नहीं करता है जो उसके लिये किया गया हो। यह उसी भोजनको स्वीकार करता है जो भोजन गृहस्थने अपने कुटुम्बके लिये तैयार किया हो।

इस ग्यारहवीं प्रतिमामें एक क्षुल्लक व दूसरे ऐलक होते हैं। पिछली क्रियाओंको पालते हुए क्षुल्लक एक लंगोट व एक खण्ड वस्त्र चादर ऐसी रखता है जिससे पूरा शरीर ढक न सके।

यह जीवदयाके लिये मोरके परवकी पीछी रखता है क्योंकि मोरपरव बहुत कोमल होते हैं। उष्ण जलके लिये कमण्डल रखता है। क्षुल्लक भोजनके समय जाता है। इसकी भिक्षाकी दो रीतियें हैं—कोई क्षुल्लक एक भिक्षाका पात्र रखते हैं और कई घरोंसे थोड़ा२ भोजन जमा करके अंतिम घरमें भोजन करके पात्रको साफकर नगरके बाहर चले जाते हैं। जो एक ही घरमें भोजन करते हैं वे जब भक्ति करके स्वीकार किये जाते हैं तब वे दातारके घर थालीमें बैठकर आहार करते हैं। ये दिनमें एक ही दफे भोजनपान करते हैं।

दूसरे ऐलक वे हैं जो केवल एक लंगोट ही रखते हैं। यह पीछी सिवाय काठका कमण्डल रखते हैं। यह केशोंका लोच करते हैं अर्थात् स्वयं अपने हाथोंसे उखाड़ डालते हैं। भिक्षावृत्तिसे एक ही घर बैठकर हाथ पर ग्रास लेकर भोजन करते हैं। यह साधुके चारित्रका अभ्यास शुरू कर देते हैं। मैंने आपके लिये थोड़ासा श्रावकाचार कह दिया है, अधिक जाननेके लिये श्रावकाचारोंको देखना उचित है।

नौवाँ अध्याय ।

जैनोंके भेद ।

शिष्य—कृपा करके यह बताइये कि जैनोंमे भेद क्यों हैं ? व इनके सिद्धांतमें क्या अन्तर है ?

शिक्षक—जैनोंमे व्यवहार क्रिया आचरणकी अपेक्षा ही दिगम्बर श्वेताम्बर आदि भेद हैं। यदि मूल सिद्धान्तको लिया जावे तो सबका एक ही मत है। जैन धर्मका तत्व यह है कि आत्माको स्वाधीन किया जावे, शुद्ध किया जावे। इसके साथ जो कर्मोंका बंध है वह दूर किया जावे। आत्माके शुद्ध भावको मोक्ष सब जैनी मानते हैं। तथा मोक्षका निश्चय उपाय आत्माके ध्यानको सब मानते हैं।

निश्चयसे आत्माके शुद्ध स्वरूपका ध्यान ही मोक्षमार्ग है व शुद्ध भाव ही मोक्ष है। सात तत्व, नौ पदार्थ, छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, चौदह गुणस्थान आदिमें कोई मतभेद नहीं है। अन्तरङ्ग स्वरूप सब एकसा मानते हैं। छः द्रव्योंमें कोई श्वेताम्बर जैनाचार्य निश्चय काल द्रव्यको नहीं मानते हैं, केवल व्यवहार कालको मानते हैं, कोई श्वेताम्बराचार्य काल द्रव्यको मानते हैं। यह एक बहुत सूक्ष्म भेद है। कर्मोंके बन्ध, उदय, सत्तामें एकमतपना है।

कोई भी जैनी चाहे दिगम्बर हो या श्वेताम्बर हो वीतराग भावको ही धर्म मानेगा। राग, द्वेष, मोहको संसार मानेगा। जैसा श्री कुन्दकुन्दाचार्यने समयसारमें कहा है। इसमें कोई मतभेद नहीं है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥

भावार्थ—रागी जीव कर्मोंको बांधता है परन्तु विरागी जीव कर्मोंसे मुक्त होता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवानका उपदेश है। इसलिये शुभ अशुभ कर्मोंमें रंजायमान मत हो।

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमइओ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥ १८९ ॥

भावार्थ—जो कोई एकाग्र मनसे दर्शनज्ञानमई आत्माको ध्याता है वह शीघ्र ही कर्मोंसे छूटकर मात्र आत्माको ही पाता है।

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं ॥ २०६ ॥

भावार्थ—इसी आत्माके स्वरूपमें नित्य रत हो, इसीमें सन्तोष मान, इसीमें ही तृप्त रहो तो तुझे उत्तम सुख होगा। जैनियोंका एक मुख्य सिद्धांत आत्मोन्नति है व उसका उपाय आत्माका ध्यान है, इसमें कोई जैनी भिन्न सम्मति नहीं रखता है।

दूसरा जैनोंका तत्व अहिंसा है। इसमें भी सब जैनोंका एक मत है। अहिंसाका स्वरूप ऐसा ही सब मानते हैं जैसा श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

यत्खलु कषाययोगात् प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो क्रोधादि कषायोंके वश होकर भाव प्राण और द्रव्य प्राणोंका घात करना सो निश्चयसे हिंसा है। भाव प्राण आत्माके गुण, ज्ञान, शांति आदि हैं। द्रव्यप्राण इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास हैं, जिनका कथन किया जा चुका है।

शिष्य—तब सब जैनी एकता क्यों नहीं रखते हैं? दिगम्बर व श्वेताम्बर ऐसे जुदे मालूम पड़ते हैं जैसे-हिंदू और मुसलमान।

शिक्षक—एकता न होनेका कारण यह है कि जैनोंका ध्यान अधिकतर बाहरी क्रियाकांडपर है, जिसमें कुछ मतभेद है। परन्तु असली मोक्षमार्गपर नहीं है। यदि असली मोक्षमार्गपर हो तो कभी परस्पर अनमेल न हो, सब असली मोक्षमार्गको एक ही जानें। व्यवहारके तरीकोंपर मतभेद होनेपर भी उसी तरह प्रेम रक्खें जैसे कपड़ोंके व भोजनपानके भीतर भेद होनेपर एक सभाके सभासद परस्पर एकता व मेलसे रहते हैं।

शिष्य—तब हरएक आम्नायके उपदेशक इधर जैनोंका लक्ष्य क्यों नहीं दिलाते हैं?

शिक्षक—जो साधु, पण्डित, उपदेशक आदि है उनका भी अधिकतर लक्ष्य व्यवहार क्रियाकांडके ऊपर रहता है, वे भी बहुत कम असली जैनधर्मकी तरफ ध्यान देते है। यदि वे सच्चे जैनधर्मका अनुभव करें तो उनके परिणामोंमे साम्यता आजावे। तब उनका उपदेश भी ऐसा ही हो।

शिष्य—इस समय जैनोंमे अपनी २ आम्नायके अनुसार बाहरी आचरण पालते हुए एकताकी बड़ी जरूरत है तब क्या इन विरक्तोंको, पण्डितोंको व उपदेशकोंको समझाया नहीं जासकता है?

शिक्षक—यदि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनोंके परोपकारी विद्वान लेखक आध्यात्मिक साहित्य तैयार करें और साम्यभावसे सच्चे धर्मपर लक्ष्य दिलावे तथा व्यवहार चारित्रमे एक दूसरेपर मध्यस्थ भाव रखनेका संकेत करें और ऐसे साहित्यका प्रचार उपदेश-कर्ताओंमे किया जावे तो कुछ कालमें एकता अवश्य स्थापित होसकती है।

शिष्य—कृपाकर बताइये, मतभेद क्या क्या है?

शिक्षक—मै कुछ थोडेसे मतभेद बताता हू, उनको जानकर विचार करना हर एक बुद्धिमान जैनीका कर्तव्य है। दिगम्बर व श्वेतांबरका मत इन मतभेदोंपर क्या है व हरएक उसकी पुष्टि कैसे करता है यह संक्षेपमे मुझे बता देना है। इसपर आप स्वयं विचार लेंगे कि आपकी बुद्धि क्या स्वीकार करती है।

(१) एक मतभेद तो यह है कि दिगम्बर कहते हैं कि जबतक वस्त्रोंको बिलकुल त्यागकर नग्न बालकके समान न हुआ जायगा, तबतक परिग्रह त्याग महाव्रत नहीं होसकता है, जो एक साधुके लिये आवश्यक है। इसलिये साधु वही हो सकता है जो वस्त्र रहित हो। जहांतक एक लगोट भी है वहांतक वह श्रावक माना जाना चाहिये।

श्वेताम्बरोंका यह मानना है कि जितने वस्त्र रखनेसे शरीरकी रक्षा हो, शर्दी गर्मीकी बाधा न हो, लज्जा सध सके उतने वस्त्र साधुको रख लेना चाहिये। वस्त्र सहित साधु भी उन्नति करके मोक्षका साधन कर सकता है।

दिगम्बरोंका कहना है कि वस्त्र रखना पीछी कमण्डलके समान धर्मोपकरण नहीं है। शरीरके मोहके कारणसे वस्त्र रक्खा जाता है। जबतक मोह न छोडा जायगा तबतक छठे गुणस्थान-प्रमत्त-विरत सम्बन्धी वीतरागताके परिणाम न होंगे। जहांतक लंगोट भी होगा वहांतक लज्जा कषायके न जीतनेसे पांचवें गुणस्थान सम्बन्धी भाव होंगे। जो लज्जा व शरदी गर्मी आदि परीषहोंको नहीं जीत सके उसको ग्यारहवीं प्रतिमा तक श्रावकके व्रत पालने चाहिये, विना बालकसम प्राकृतिक भेषमें हुए साधुका चारित्र नहीं हो सकता है। निर्ग्रन्थ उसे कहते हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागी नग्न साधु हो।

श्वेतांबरोंका कहना है कि जो नग्न रह सकता है वह नग्न रहे, उसे जिनकल्पी साधु कहेंगे व जो नग्न नहीं रह सकता है वह वस्त्र रखे, उसे स्थविरकल्पी साधु कहेंगे। यह भी उनका कहना है कि जैसे शरीर रक्षाके लिये भोजन आवश्यक है वैसे वस्त्र भी आवश्यक है। तथा जब साधुका ध्यान अधिक बढेगा तब उसका भाव जिस तरह शरीरसे ममता हटा लेता है वैसे वस्त्रसे भी ममता हटा लेगा। इसलिये वस्त्र सहित होते हुए भी परिणामोंकी उन्नति हो सकती है, छठा सातवां आदि गुणस्थान हो सकता है तथा वह अरहंत भी हो सकता है।

शिष्य—श्री महावीरस्वामीने किसतरह दीक्षा ली थी?

शिक्षक—श्री महावीरस्वामीने नग्न होकर दीक्षा ली थी ऐसा दिगंबर श्वेतांबर दोनों मानते हैं। श्वे० इतना कहते हैं कि इन्द्रने एक देवदूष्य वस्त्र कन्धेपर डाल दिया था। वह एक वर्ष एक मासतक पडा रहा, फिर वह गिर गया। पीछे १२ मास कम बारह वर्षतक भगवान महावीरस्वामीने नग्न ही तप किया।

शिष्य—क्या उनके ग्रन्थका कोई वाक्य आप बता सकते हैं?

शिक्षक—उनके माननीय श्री आचारांगसूत्रमें नीचे लिखे वाक्य आए हैं—

संवच्छरं साहियमासं, जं न रिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलओ तओचाई तं वोसिज्ज वत्थ मणगारे॥ ४॥

सं०—तत् इन्द्रोपाहृतं वस्त्रं सकलसमेक सांवत्सरं मोचपरमत्यक्तवान् भगवान् तत् स्थितकल्प इति कृत्वा तत् ऊर्ध्वं तत्वस्त्रपरित्यागी व्युत्सृज्य च तदनगारो भगवान् अचेलोऽभूत। (नौमा अ० पृष्ठ ३०१ शीलांकाचार्य विहितविवरणयुत मुद्रित म्हेसाणा कल्लूभाई किसोरदास सन् १९१६)।

शिष्य—क्या वे नग्नत्वको सवस्त्रधारीसे अच्छा समझते है? क्या इसके भी कुछ शास्त्रीय प्रमाण है?

शिक्षक—उसी आचारांगमे सूत्र २१६-२२६ अध्याय ८ पृष्ठ २७७-२८६ मे "ज भिक्खु अचेले परिवसिए तस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ चाएमि अहतण कास" अर्थात् जो भिक्षु नग्न रहेंगे उनको यह नहीं मालूम होगा कि मेरे तृणस्पर्श होरहे है वे तृण स्पर्शकी बाधा सहेंगे।

प्रवचनसारोद्धार भाग ३ (छपी संवत् १९३४) पृष्ठ १३४ "आउरणवज्जियाण विसुद्ध जिणकप्पियाणतु" अर्थात् जो वस्त्र रहित है वे विशुद्ध जिनकल्पी है।

शिष्य—क्या सवस्त्र जैन साधुका चारित्र श्री महावीरस्वामीके समयमे या पहलेसे श्वेताम्बर जैन मानते है?

शिक्षक—श्वेताम्बर जैन कल्पसूत्र आदि अपने ग्रन्थोंसे यह कहते है कि श्री पार्श्वनाथके समयम वस्त्र सहित साधु होते थे, महावीरस्वामीने सुधार किया, नग्नत्वका प्रचार किया।

शिष्य—क्या कोई ऐतिहासिक प्रमाण इस बातकी पुष्टिका है?

शिक्षक—जहांतक मुझे मालूम है अबतक कोई ऐतिहासिक प्रमाण इस बातका नही मिला है कि श्री महावीरस्वामीके पहले या उनके समयमे जैन साधु सवस्त्र थे।

शिष्य—इस कालमे वस्त्र रहित साधु होना बहुत कठिन मालूम होता है, क्या इसीलिये तो श्वेताम्बरोंने सवस्त्र साधुका मार्ग नहीं चलाया?

शिक्षक—यदि प्रतिमाओंके द्वारा धीरे२ वस्त्र त्यागका अभ्यास किया जावे तो साधुपद नग्नावस्थामे ठीक चल सकता है, बिना अभ्यासके तो वास्तवमें कठिन काम है। सरदी, गर्मी आदि सहना व लज्जा जीतना बहुत ही दुष्कर कार्य है, परन्तु अभ्याससे सरल है।

शिष्य—क्या श्वेताम्बर साधुकी क्रियाए दिगम्बरोंकी किसी प्रतिमासे मिल जाती हैं ?

शिक्षक—यदि हम क्षुल्लकोंका मिलान करें तो बहुत अशमें मेल बैठ जाता है। दिगम्बर जैन शास्त्रोंमें अनेक घरोंसे भोजन पात्रमे एकत्र करके क्षुल्लकके लिये भोजन करनेका विधान है इसीको श्वेताम्बर साधु पालते है।

शिष्य—क्षुल्लक शब्द ग्यारहवीं प्रतिमाधारीको क्यों दिया गया है ?

शिक्षक—क्षुल्लक छोटेको कहते है, वास्तवमे वे छोटे साधु ही है। वे भी साधुवत् ध्यानादि करते है, भिक्षावृत्तिसे भोजन करते है, मोर-पिच्छिका रखते हैं।

शिष्य—तब फिर दिगम्बर, श्वेताम्बरोंको वस्त्र रखने न रखने पर मन मुटाव न रखना चाहिये। श्वेताम्बर शास्त्रमे उत्तम जिनकल्पी अचेल वस्त्र रहित कहे गए है। दिगम्बर साधुओंको इस दृष्टिसे श्वेताम्बरोंको देखना चाहिये तथा दिगम्बरोंको उचित है कि वे श्वेताम्बर साधुओंका क्षुल्लकवत् देखकर इस विषयमें मध्यस्थ भाव रक्खे। परस्पर अनैक्य न करें, जिससे जैसा सधे वह बाहरी चारित्र वैसा पाले। अपनी २ श्रद्धानुकूल पाले। अन्तरङ्ग चारित्रमे तो आपने कहा है कि भेद कुछ नहीं है।

शिक्षक—वास्तवमें अन्तरङ्ग चारित्रमें एक ही मत है। दिगम्बर जैन शास्त्र भी कहते हैं कि जबतक स्वात्म रमण न होगा तबतक मोक्षमार्ग यथार्थ नहीं है, केवल बाहरी भेष मोक्षमार्ग नहीं है। देखिये, श्री कुन्द-कुन्दाचार्य समयसारमे यही कहते हैं —

गाथा–**ण वि एस मोक्खमग्गो पाखण्डीगिहिमयाणि लिंगाणि।**
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥ ४१० ॥

भावार्थ—साधु व गृहीके भेष मात्र मोक्षका मार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एकता जो आत्मानुभवरूप है, वही मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं।

यही बात ऊपर लिखित श्वे० ग्रन्थ आचारांगमें कही है—

"बधयमुक्खो अत्तत्थेव इत्थविरए अणगारे दीहण्य तितिक्खए पमत्ते

बहिया पास अप्पमत्तो परिव्वए एव मोणं सम्मं अणुवासिज्जा सित्ति बेमि "
(सू० १५० लोकसाराध्ययने द्वितीयोद्देश १५/२)

भावार्थ—बन्ध या मोक्ष भीतरी परिणामोंमे है। विरक्त गृह रहित साधुको रातदिन परिषह सहना चाहिये। जो प्रमादी हैं उनको मोक्षमार्गके बाहर जानना चाहिये। अप्रमादी होकर वैराग्यमे रहे, ऐसे मुनिको भले-प्रकार मोक्षमार्ग पालना चाहिये।

और भी वहीं कहा है—

इह आणाकखी पडिए अणिहे एग मप्पाण सपेहाए कसेहि अप्पाण जेरहि अप्पाण जहा जुनाइ कट्ठाइ हव्ववाहो पमत्थइ एव अत्तसमाहिए अणिहे विगिंच कोह अविकपमाणो " सू १३५ पृ १९०

भावार्थ—आज्ञाकारी, पडित, स्नेहरहित अपनेको अकेला एकरूप देख करके अपनेको कृश करे, अपनेको तपसे जीर्ण करे। जैसे पुराने काठको आग जला देती है वैसे स्नेहरहित होकर क्रोधको तज निष्कम्प हो आत्माका ध्यान करनेसे कर्म गल जाते हैं।

टीकाकारने वहीं लिखा है कि ऐसी भावना करे—

सदैकोऽहं न मे कश्चित नाहमन्यस्य कस्यचित।
न तं पश्यामि यस्याहं नासौ भावी तियो मम॥

भावार्थ—मैं सदा एक हू, मेरा कोई नहीं है, मैं किसी अन्यका नहीं हू, न मैं किसीको देखता हू जिसका मे हू, न भावीकालमे मेरा कोई होगा। और भी कहा है—

जह खलु सुसिरं कट्ठं सुचिरं सुक्कं लहुं डहइ अग्गी।
तह खलु खवंति कम्मं सम्मचरणे ठिया साहू॥ २३४॥

भावार्थ—जैसे गीला काठ जब दीर्घकालमें सूख जाता है तब उसे अग्नि शीघ्र जला देती है वैसे ही जो साधु भलेप्रकार स्वरूपाचरण चारित्रमे स्थित होते हैं वे कर्मोंको क्षय कर डालते है। प्रयोजन यह है कि सर्व जैनोंको समताभाव रखकर अन्तरङ्ग चारित्रपर लक्ष्य देना चाहिये।

उस चारित्रका बाहरी साधन व्यवहार चारित्र है। उसके लिये दिग-म्बरोंको अपनी श्रद्धाके अनुकूल व श्वेताम्बरोंको अपनी श्रद्धाके अनुकूल

चलना चाहिये। माध्यस्थभाव रखना ही जिनेन्द्रकी आज्ञा है। परस्पर द्वेष न रखना चाहिये। जिसकी समझमें जैसा आवे वैसा वह बाहरी चारित्र पाले। अन्तरंग परिणामोंपर मुख्यतासे लक्ष्य देना चाहिये।

शिष्य—और कुछ जरूरी अन्तरकी बातें बताइये।

शिक्षक—दूसरी बात यह है कि दिगम्बर जैन अपने शास्त्राधारसे ऐसा बताते है कि स्त्रीके शरीरसे मोक्ष नहीं होसकती है, पुरुषके शरीरसे ही मुक्ति होती है। इसका कारण वे यह बताते है कि जिस उच्च ध्यानके करनेसे कर्मोंका नाश होसके वैसा ध्यान शक्तिकी कमीसे स्त्री द्वारा नही किया जा सकता है। स्त्रीके सहनन अर्थात् हड्डियोंकी शक्ति वज्रवृषभनाराच रूप नहीं है। पुरुषोमे भी जिसके ऐसी शक्ति होगी वही मोक्षके साधनकी योग्यता रख सकता है। वज्रके समान दृढ नसोंके जाल, हड्डियोंकी सधियें तथा हड्डी हो उसको वज्रवृषभनाराच सहनन कहते है। स्त्रियां उन्नति करके सोलह स्वर्ग तक व अवनति करके छठे नर्क तक जासकती है।

श्वेताम्बर शास्त्राकार स्त्रीके शरीरसे मुक्ति होना बताते है। उनके यहां उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथको स्त्री तीर्थंकर माना है। यद्यपि वे मोक्षका लाभ स्त्रीके शरीरसे मानते है तथापि दिगम्बरोंके समान वे यह मानते है कि वह स्वर्गोसे ऊपर ग्रैवेयिक आदिमे नहीं जातीं, सातवें नर्क नहीं जातीं, चक्रवर्ती आदि नहीं होती है।

श्वेतांबर ग्रन्थ प्रवचनसारोद्धार प्रकरणरत्नाकर भाग तीजा सवत् १९३४ छपा भीमसी माणक बम्बईमे कहा है—

अरहंत चक्कि केसव संभिन्नेय चारणे पुव्वा।
गणहर पुलाय आहारगं च नहु भवियं महिलाणं ।५२।

अर्थात् अरहत (तीर्थंकर), चक्रवर्ती, नारायण, बलदेव, सभिन्नश्रोतृऋद्धि, चारणऋद्धि, पूर्वोका ज्ञान, गणधर, पुलाक, साधुपना, आहारक शरीर ये दश बातें स्त्रीके शरीरसे नहीं होती है। टीकाकार कहते हैं कि मल्लिनाथ स्त्री क्यों हुए? यह एक खास बात हुई है। नियम नहीं है। इसको अछेरा कहते हैं।

दिगम्बरोंके समान वे यह मानते है कि देवियोंकी उत्पत्ति दूसरे स्वर्ग

तक ही होती है तथा वे बारहवें स्वर्ग तक जा सकती हैं, क्योंकि श्वेताम्बरी बारह स्वर्ग मानते हैं, दिगम्बरी १६ स्वर्ग मानते हैं।

संग्रहणीसूत्र गाथा ७८ में कहा है—

> उववाओ देवीणं कप्पदुगं जा परो सहस्सारा।
> गमणागमणं नत्थी अच्चुय परओ सुराणंपि॥

भावार्थ—देवी दूसरे स्वर्ग तक उपजे परन्तु बारहवें सहस्रारतक जाय।

शिष्य—आजकल दिगम्बर या श्वेतांबर मोक्ष किसको होना मानते हैं?

शिक्षक—इस भरत क्षेत्रमें आजकल दोनोंका यह मत है कि स्त्री व पुरुषको ऐसी शक्ति नहीं है, जिससे कोई भी मोक्ष जा सके। इसीलिये इस अन्तरके रहते हुए भी साम्य भाव रखना चाहिये। बुद्धि बलसे विचारते हुए जो बात समझमें आवे, सो मानना चाहिये।

तीसरा अन्तर यह है कि दिगम्बरी ऐसा मानते हैं कि केवली अरहंत जिन शरीरमें रहते हुए ग्रासरूप भोजन जैसा साधु अवस्थामें करते थे वैसा नहीं करते। किन्तु उनके शरीरको पुष्टि देनेवाले पुद्गलके पिंड (आहारक वर्गणाएं) स्वयं आकर उनके शरीरमें उसी तरह मिलते रहते हैं जैसे—वृक्षादि मिट्टी पानीको खींच लेते है। केवली वीतराग है, अनन्तबली हैं, उनके भूखकी इच्छाका क्लेश नहीं पैदा हो सकता है। उनके तीव्र पुण्योदयसे व लाभांतराय कर्मके नाशसे उनकी योग शक्तिके द्वारा पुद्गल पिंड शरीरमें मिल जाते हैं।

श्वेताम्बर लोग कहते हैं कि वे साधुके समान भोजन करते हैं। इसमें भी मध्यस्थ भाव रखकर विचार लेना चाहिये। आहारका होना दोनों मानते हैं। दिगम्बरी क्योंकि लेपाहारके समान पुद्गलोंका ग्रहण मानते हैं, श्वेताम्बरी कवलाहार मानते हैं।

शिष्य—क्या और भी अन्तरकी बातें हैं?

शिक्षक—तीन मुख्य अन्तरकी बातें आपको बताई हैं। और भी कुछ बातें बताता हूं। दिगम्बरी मानते हैं कि केवलीके रोग व [illegible] ([illegible]) नहीं होता है। श्वेताम्बरी रोग नीहार होना भी मानते हैं। श्री महावीर भगवानने विवाह नहीं किया—कुमारकालमें [illegible]

दिगम्बरी मानते हैं। श्वेताम्बरी मानते हैं कि विवाह किया, कन्या जन्मी, फिर दीक्षा ली।

श्री महावीरस्वामी राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलाके ही गर्भमें रहकर जन्मे ऐसा दिगम्बरी मानते हैं। श्वेताम्बरी मानते हैं कि यह पहले एक ब्राह्मणीके गर्भमें आए फिर इन्द्रने उनको वहांसे लाकर त्रिशलाके गर्भमें रक्खा। इत्यादिक अन्तरकी ऐसी कुछ बातें हैं जो कोई महत्वशाली नहीं हैं।

शिष्य—दिगम्बर श्वेताम्बर भेद कबसे हुआ?

शिक्षक—दोनों मानते हैं कि ये भेद विक्रम सम्वत् १३४ या १३६ में पडा। दिगम्बर कहते हैं कि श्वेताम्बर संघ तब स्थापित हुआ। श्वेताम्बर कहते हैं कि दिगम्बर संघ तब स्थापित हुआ। यह बात प्रसिद्ध है कि जैनधर्मी महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य (सन् ई० से ३२० वर्ष पहले) के समयमें मध्य देशमें बारह वर्षका दुष्काल पडा उस समय श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली २४००० मुनिसंघ सहित विराजमान थे। श्रुतकेवलीने दुष्कालमें मुनिसंयम पलना हुआ कठिन जानकर संघको दक्षिणकी तरफ चलनेकी सम्मति दी। १२००० ने बात मान ली। वे तो दक्षिण श्रवणबेलगोलाकी तरफ चले गए।

शिलालेखोंसे यह सिद्ध है कि भद्रबाहु दक्षिण गए, साथमें राजा चन्द्रगुप्त भी मुनिरूपमें था। यहां जो १२००० नग्न मुनि रहे उनसे साधुका चारित्र न पल सका तब वे कन्धेपर वस्त्र रखने लगे, अर्द्धफालक मत चला। दुष्कालके पीछे वे मुनि लौटे तब उनके उपदेशसे बहुतोंने पुरानी चर्या धारण की। बहुतोंने वस्त्रका त्याग नहीं किया। यही मतभेद होनेकी जड है, ऐसा दिगम्बरोंके भद्रबाहुचरित्रमें लिखा है।

शिष्य—क्या और कोई विशेष अन्तर है, जिसे जानना जरूरी है?

शिक्षक—दिगम्बरी लोग तीर्थंकरोंकी मूर्तियां ध्यानाकार नग्न व अलङ्कार रहित स्थापित करते हैं। जबकि श्वेताम्बरी लोग मूर्ति तो ध्याना-कार बनाते हैं परन्तु उसमें लंगोटका चिह्न करते हैं, दिगम्बरी ऐसा नहीं करते हैं। तथा श्वेताम्बरी ऊपरसे नेत्र लगाते हैं, आभूषणादि पहनाके मूर्तिको सजाते हैं।

श्वेताम्बरोंमें एक स्थानकवासी पन्थ है जो मूर्तिको नहीं पूजते हैं तथा उनके साधु श्वेताम्बरोंके समान वस्त्र रखते हैं व आहार करते हैं परन्तु मुख पर पट्टी बांधते हैं। उनका ऐसा ख्याल है कि कहीं कोई जन्तु मुखमें चला जावे। मूर्तिपूजक जैनोंकी ऐसा कहते हैं कि वे उनमेंसे १५वीं शताब्दीमें हुए हैं। स्थानकवासी जैनोंका बहुतसा कथन मूर्तिपूजक श्वेताम्बरोंसे मिलता है।

मैंने थोड़ासा मतभेद बता दिया है जिससे दिगम्बर व श्वेताम्बर परस्पर एक दूसरेको पहचान लेवें।

शिष्य—स्थानकवासी जैन ग्रन्थोंके भीतर आत्मीक मोक्षमार्गका कैसा वर्णन है। कुछ नमूना बताइये, जिससे दिगम्बर व मूर्तिपूजक व स्थानकवासी इनके कथनकी साम्यता मालूम हो।

शिक्षक—आपका प्रश्न बहुत योग्य है। मुझे अभी ही स्थानकवासी मुनि श्री चौथमलजी द्वारा संग्रहीत "निर्ग्रन्थ प्रवचन" नामकी पुस्तक प्राप्त हुई है। (प्रकाशक जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम, वीर सं० २४५९) उसमेंसे कुछ कथन बताता हूं—

अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए॥ ८-१॥

भावार्थ—आत्माके साथ ही युद्ध कर, बाहर युद्ध करनेसे क्या? आत्मा हीके द्वारा अपनेको जीतनेसे सुख प्राप्त होता है।

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाई मरणस्स मूलं दुक्खं च जाईमरणं वयंति॥ ३२-७

भावार्थ—रागद्वेष कर्मबन्धके बीज हैं। वह कर्म मोहसे बंधते हैं। कर्म जन्म मरणके मूल हैं। जन्म मरण ही दुःख है। ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं॥

भावार्थ—जिसके मोह नहीं है उसने दुःखको नष्ट कर डाला, जिसके तृष्णा नहीं है उसने मोहको नष्ट किया, जिसके लोभ नहीं है उसने तृष्णाको

नष्ट किया जिसके धनादिसे ममत्व नहीं है उसने लोभको नष्ट किया।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—अहिंसा, सयम, तप ये धर्म उत्कृष्ट मगल है। जिसका मन सदा धर्ममे है उसको देव भी नमन करते है।

धम्मे हरए बंभे संति तित्थे अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसिणहाओ विमलो विसुद्धो सुसीति भूओ पजहामि दोसं ॥२८

भावार्थ—मिथ्यात्वरहित, आत्मानदकारक धर्मरूपी द्रह और ब्रह्मचर्य रूपी शांतिमय तीर्थ (नदी) है। जिसमे स्नान करनेसे यह आत्मा मल रहित शुद्ध व शांत होजाती है। इसलिये मैं इसीसे अपने मलको छुडाता हू।

निम्ममो निरहंकारो निस्संगो चत्त गारवो।
समो अ सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य ॥ ११-५ ॥

भावार्थ—साधु वही है जो ममता रहित, अहकार रहित, बाहरी भीतरी परिग्रह रहित, बडप्पन रहित हो तथा त्रस स्थावरादि सर्व प्राणियोपर समताभाव सहित हो।

न दंसणिस्स नाणं, नाणेणं विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं ॥ ७-६ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन रहितके सम्यग्ज्ञान नहीं है। सम्यग्ज्ञानके विना सम्यक्चारित्र नहीं है। चारित्र रहितके कर्मोंसे मुक्ति नहीं होती है। कर्मरहित हुए बिना निर्वाण नहीं होसकता।

जहा पउमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, त वयं बूम माहणं ॥ १७-७ ॥

भावार्थ—जैसे कमल जलमे पैदा होता है तो भी जलसे लिप्त नहीं होता है, वैसे जो काम भोगोंसे लिप्त नहीं होता है उसे हम ब्राह्मण कहते है।

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेणय मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो ॥ १९-७ ॥

भावार्थ—समतासे श्रमण साधु होता है, ब्रह्मचर्यसे ब्राह्मण होता है, ज्ञानसे मुनि होता है, तपसे तपस्वी होता है।

कम्मुणा बंभणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ ।

कम्मुणा वइसो होइ सुद्दो होइ कम्मुणा ॥ २०-१ ॥

भावार्थ—कर्मसे या क्रिया आचरणसे ही ब्राह्मण होता है। क्षत्रियकी क्रियासे क्षत्रिय होता है। वैश्य कर्मसे वैश्य होता है। शूद्र कर्मसे शूद्र होता है।

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ।

तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंति णं ॥ १-९ ॥

भावार्थ—सर्व जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते हैं। इसलिये निर्ग्रन्थ साधु प्राणीवधरूपी घोर कर्मको नहीं करते हैं।

न कम्मणा कम्म खवेंति बाला अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो।

मेधाविणो लोभमया वतीता सन्तोसिणो नोपकरेंति पावं ॥ १८-१४ ॥

भावार्थ—अज्ञानी कर्मोंको करते हुए कर्मोंका क्षय नहीं करते हैं। धीर पुरुष क्रियारहित आत्मानुभवके द्वारा कर्मोंको क्षय करते हैं। लोभ-रहित सन्तोषी पण्डितजन पाप नहीं करते हैं।

नाणस्स सव्वस्स पगासणाय अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए ।

रागस्स दोसस्स य संखएणं एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥२१-१८॥

भावार्थ—सर्व ज्ञानके प्रकाश होनेसे, अज्ञान व मोहके छूट जानेसे, रागद्वेषके क्षय हो जानेसे परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है। आत्मध्यान व अहिंसाकी पुष्टि इन गाथाओंसे है।

शिष्य—क्या दिगम्बर जैन शास्त्रोंसे कुछ ऐसा साहित्य बताओगे !

शिक्षक—यदि आपकी इच्छा है तो कुछ उपयोगी साहित्य नीचे दिया जाता है—

योगसारमें श्री योगेन्द्राचार्य कहते हैं—

जो निम्मल अप्पा मुणइ वय संजमु संजुत्तु ।

तहु लहु पावइ सिद्ध सुहु इय जिणणाहह वुत्तु ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो व्रत व संयमको पालते हुए निर्मल आत्माको अनुभव करता है सो शीघ्र ही सिद्धके सुखको पाता है ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं।

धम्मरसायणमें श्री पद्मनन्दि मुनि कहते है—

जियकोहो जियमाणो जियमायालोहमोहजियमयओ ।
जियमच्छरो य जम्हा तम्हा णाम जिणो उत्ता ॥ १३५ ॥

भावार्थ—जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह मद, मत्सर आदिको जीतता है वही जिन है।

श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चयमें कहते है—

सम्यक्ज्ञानसम्पन्ना जैनभक्त जितेन्द्रिय. ।
लोभमोहमदैस्त्यक्ता मोक्षभागी न संशय· ॥ २५ ॥

भावार्थ– जो सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान सहित है, जिनेन्द्रके मार्गका भक्त है, इद्रियोको विजय करनेवाला है, लोभ, मोह, मदसे रहित है वह सशय रहित मोक्षका भागी है। वही कहा है—

समता सर्वभूतेषु य करोति सुमानस: ।
ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययं ॥ २१३ ॥

भावार्थ—जो बुद्धिमान सर्व प्राणियोंमे समता भाव करता है तथा ममताभाव त्यागता है, वही अविनाशी पदको पाता है।

निर्ममत्वं परं तत्वं निर्ममत्वं परं सुखं
निर्ममत्वं परं बीजं मोक्षस्य कथितं बुधै. ॥ २३४ ॥
निर्ममत्वे सदा सौख्यं, संसारस्थितिच्छेदनम् ।
जायते परमोत्कृष्टमात्मन·, संस्थिते सति ॥ २३५ ॥

भावार्थ—ममता रहितपना परम तत्व है। यही परम सुख है। यही मोक्षका परम बीज है, ऐसा बुद्धिमानोंने कहा है। ससारकी स्थितिको छेदनवाला परमोत्कृष्ट सुख परम ममता त्यागने पर तथा आत्माके भीतर स्थिति करनेसे उत्पन्न होता है।

यै सन्तोषामृतं पीतं तृष्णातृट्प्रणाशनं ।
तैश्च निर्वाणसौख्यस्य, कारणं समुपार्जितं ॥ २५७ ॥

भावार्थ—जिन्होंने तृष्णाकी प्यास बुझानेके लिये सन्तोषामृतका पान किया है उन्होंने निर्वाणके सुखका मार्ग पालिया है।

ज्ञानदर्शनसम्पन्न आत्मा एको ध्रुवो मम।
शेषा भावाश्च मे बाह्या सर्वे संयोगलक्षणाः ॥ २५९ ॥

भावार्थ—ज्ञान दर्शन सहित एक अविनाशी आत्मा ही मेरा है। बाकी सर्व रागादि भाव मेरे नहीं हैं, कर्म-संयोगसे उत्पन्न हुए हैं।

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा।
येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ३१४ ॥

भावार्थ—आत्माको सदा पवित्र ज्ञानरूपी जलसे स्नान कराओ जिससे यह जीव जन्म जन्मके पापोंसे छूटकर निर्मल होजाता है।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत्।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ ८१ ॥

भावार्थ—स्वाध्याय करते २ ध्यानमें आजाओ। ध्यानसे छूटे तब शास्त्र मनन करो। ध्यान स्वाध्यायकी प्राप्तिसे ही परमात्माका पद प्रगट होजाता है।

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत्।
नाऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता ॥ १५७ ॥

भावार्थ—यह जगत है, न इष्ट है न अनिष्ट है, किन्तु वैराग्यके योग्य है। मैं रागी हूँ, न द्वेषी हूँ, किन्तु स्वय वीतरागी हूँ ऐसा भावै।

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं।
घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४४ ॥

भावार्थ—स्वाधीन, बाधारहित, अतीन्द्रिय, अविनाशी जो मोक्ष-सुख कहा गया है वह ज्ञानावरणादि घातिकर्मोंके क्षयमें पैदा होता है।

श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥ २१ ॥
संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मन्येवात्मनि स्थितं ॥ २२ ॥

भावार्थ—यह अपना आत्मा अपने शरीरप्रमाण आकारधारी निश्-

यसे अविनाशी, अत्यन्त आनन्दमय, लोकालोकका ज्ञाता दृष्टा स्वानुभवगम्य है। इन्द्रियोंके ग्रामोंको सयमम लाकर चित्तको एकाग्र करके आत्मज्ञानी आत्मामे ठहरे हुए अपने आत्माको अपने भीतर ही ध्यानमे लावे।

बध्यते मुच्यते जीव. सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ २६ ॥

भावार्थ—ममता सहित जीव कर्मोंसे बधता है, ममता रहित जीव कर्मोंसे छूटता है। इसलिये सर्व प्रयत्न करके निर्ममत्वभावका ध्यान करे।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहि·स्थिते ।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिन ॥ ४७ ॥
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं ।
न चासौ खिद्यते योगीबहिर्दु खेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो व्यवहारके बाहर जाकर आत्माके ध्यानमे लीन होता है उस योगीके ध्यानके बलसे कोई परमानन्द पैदा होता है। यही आनद निरतर कर्मोंके काष्ठको बहुत अधिक जलाता है। ऐसा योगी बाहर दु खोंके पडनेपर भी उनसे बेखबर रहता हुआ खेदको नहीं पाता है।

श्री अमितगति सामायिकपाठमे कहते है—

सर्वं निराकृत्य विकल्पजाल ससारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्वे ॥ २५ ॥

भावार्थ—ससारवनमे गिरानेवाले सर्व विकल्पोंके जालको दूर करके अपने आत्माको सबसे भिन्न २ अनुभव करता हुआ तू एक परमात्माके स्वरूपमे लीन हो।

वैराग्यमणिमालामे श्रीचन्द्रजी कहते है—

मुच परिग्रहवृन्दमशेष चारित्र पालय सविशेष ।
कामक्रोधनिपीलनयंत्र ध्यान कुरु रे जीव ! पवित्रं ॥ २१ ॥

भावार्थ—हे जीव! सर्व परिग्रह-समूहको त्याग यथार्थ चारित्रको पाल। काम, क्रोधके दूर करनेको यत्रके समान पवित्र ध्यानको कर।

विरमविरम बाह्यादिपदार्थे रम रम मोक्षपदे च हितार्थे ।
कुरु कुरु निजकार्यं च वितंद्रः भवभव केवलबोधयतीन्द्रः ॥

मुच मुंच विषयाऽमिषभोगं लुप लुंप निजतृष्णारोगं।
रुंध रुंध मानसमातंगं धर धर योगविमलतरयोगं ॥ ६९ ॥

भावार्थ—बाहरी सब पदार्थोंसे विरक्त हो विरक्त हो, परम हितकारी मोक्षपदमें रमण कर रमण कर आलस्य त्याग कर आत्मीक कार्यको करले करले, केवलज्ञानका धारी अरहंत होजा होजा, इन्द्रियोंको अभिलाषारूपी मांसके भोगको छोड छोड, अपने भीतरके तृष्णमाई रोगको दूर कर दूर कर, मनरूपी हाथीको रोक रोक, अत्यंत विमल योगाभ्यासको धार धार।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

झाणेण कुणउ मेयं पुग्गलजीवाण तह य कम्माणं।
घेत्तव्वो णियअप्पा सिद्धसरूवो परो बम्भो ॥ २५ ॥

भावार्थ—ध्यानके द्वारा पुद्गलसे तथा कर्मोंसे अपने जीवको भिन्न करके अपने ही सिद्ध स्वरूपी परम ब्रह्मरूप आत्माको ग्रहण करना चाहिये।

सयलवियप्पे थक्के उप्पज्जइ को वि सासओ भावो।
जो अप्पणो सहावो मोक्खस्स कारणं सोहु ॥ ६१ ॥

भावार्थ—मनके सर्व विकल्पोंके रुक जानेपर कोई एक अविनाशी भाव पैदा होता है जो आत्माका स्वभाव है वही मोक्षका कारण है।

द्वादसी गाथामें एक आचार्य कहते हैं—

मण रोहेण य रुद्ध करणसुहं सुहविणो य णिग्गंथो।
णिग्गंथो अकसाओ अकसाओ हिंसओ णत्थि ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनको रोकनेसे इंद्रियसुख रुक जाता है। निर्ग्रंथ ही सुखी है। जो कषाय रहित है वही निर्ग्रन्थ है, जो कषाय रहित है वह हिंसक नहीं होता है।

जो जाणइ अरहन्तो दव्वत्त गुणत्त पज्ज यत्थेहिं।
सो जाणइ अप्पाणं मोहो खलु जाइ तस्स लयं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो श्री अरहंत भगवानको द्रव्य, गुण, पर्यायोंके द्वारा समझता है वह अपने आपको समझता है। उसीका मोह अवश्य ही दूर हो जाता है।

श्री पद्मनंदि मुनि ज्ञानसारमें कहते हैं—

झाणेण विणा जोई असमत्थो होई कम्मणिड्डहणे ।

दाढाणहरविहीणो जह सीहो वरगयंदाण ॥ ७ ॥

भावार्थ—योगी ध्यानके विना कर्मोंको जलानेके लिये उसी तरह असमर्थ है जैसे दाढ़ व नखरहित सिंह बड़े २ हाथियोंको वश नहीं कर सकता। आत्मानुशासनमें श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं—

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः ।

तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज् ज्ञानभावनाम् ॥ १७४ ॥

भावार्थ—आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वभावी है। अपने स्वभावकी प्राप्ति मोक्ष है इसलिये मोक्षके अर्थीको ज्ञान भावना भानी चाहिये।

रागद्वेषौ प्रवृत्तिः स्यान्निवृत्तिस्तन्निषेधनम् ।

तौ च बाह्यार्थसम्बद्धौ तस्मात्तांश्च परित्यजेत् ॥ २३७ ॥

भावार्थ—रागद्वेष ही प्रवृत्ति है। उनका छोड़ना निवृत्ति है। वे रागद्वेष बाहरी पदार्थोंके सम्बन्धसे होते हैं इसलिये इनको भी त्यागदे।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः ।

तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तंदुलम् ॥४९-१०॥

भावार्थ—जो जन व्यवहार हीमें मूढतासे मगन हैं वे निश्चयतत्वको अनुभव नहीं करते हैं। जो भूसीके लेनेमें मूढ हैं वे तुषको ही तन्दुल जान रहे हैं। तन्दुलको तन्दुल नहीं जानते हैं।

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभि ।

क्लिश्यन्तां च परे महाव्रत तपोभारेण भग्नाश्चिरं ॥

साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं ।

ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥ १०।७ ॥

भावार्थ—कोई मोक्ष-विरोधी कठिन कठिन क्रियाकांडसे स्वयं क्लेश उठावे तो उठाव, या दूसरे कोई महाव्रत व तपके भारसे चिरकाल खेद

करते हुए बोझा उठावें तो उठावें। वह बोझ तो साक्षात् अपना ही एक अविनाशी पद है व अपने ही द्वारा अपने अनुभवमें आनेवाला है तथा शुद्ध ज्ञानमई है सो कोई भी आत्मज्ञानरूपी गुरुके बिना प्राप्त करनेको समर्थ नहीं हो सकते हैं।

वे ही अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहते हैं—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ ४४॥

भावार्थ—रागद्वेषादि भावोंका प्रगट न होना ही अहिंसा है तथा उन ही का प्रगट होना ही हिंसा है। यही जिन आगमका संक्षेप है।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

स्वबुद्धया यावद् गृह्णीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।

संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥ ६२॥

भावार्थ—जबतक मन, वचन, काय इन तीनोंको आत्माका स्वभाव माना जायगा या अपना माना जायगा वहींतक ही संसार है। इन तीनोंके भेदविज्ञानके अभ्याससे ही मोक्ष होजाती है।

श्री पद्मनंदि मुनि निश्चयपञ्चाशतमें कहते हैं—

शुद्धाच्छुद्धमशुद्धं ध्यायन्नाप्नोत्यशुद्धमेव स्वम्।

जनयति हेम्नो हैमं लोहाल्लोहं नरः कटकम्॥ १८॥

भावार्थ—जो मानव शुद्धात्माका ध्यान करता है वह अपनेको शुद्ध स्वरूपमें कर देता है। जो अशुद्ध स्वरूपका ध्यान करता है वह अशुद्ध ही आत्माको पाता है। जैसे सुवर्णसे सुवर्णके कड़े व लोहेसे लोहेके कड़े बनते हैं।

अहमेव चित्स्वरूपश्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव।

नान्यत् किमपि जडत्वात् प्रीतिः सदृशेषु कल्याणी॥ ४१॥

भावार्थ—मैं ही चैतन्य स्वरूप हूं, मुझ चैतन्य स्वरूपके वही एक आश्रय है और उसके सिवाय आश्रय योग्य नहीं है। क्योंकि सब जड हैं। चेतनको चेतन ही में प्रीति करनी चाहिये। बराबरवालों ही में प्रीति सुखदाई होती है।

शिष्य—क्या ये सब मतभेद दूर नहीं हो सकते ? क्या एक प्रकारका जैन धर्म नहीं हो सकता है ?

शिक्षक—मैं आपको बता चुका हूं कि दिगम्बर श्वेताम्बर सबका निश्चय मोक्षमार्ग एकसा ही है। सर्व ही आत्मध्यानसे व निर्विकल्प समाधिसे ही मोक्ष मानते हैं। सर्व ही अहिंसाको ही धर्म मानते हैं, व्यवहारमें बहुत थोड़ा मतभेद है।

यदि दिगम्बर, मूर्तिपूजक व स्थानकवासी श्वेताम्बर तीनोंके विद्वान व माननीय गुरु पक्ष, आग्रह व परम्पराको त्याग कर साम्यभावसे सम्मति करें और यह विचारें कि निश्चय मोक्षमार्गका साधक कितना व्यवहार मार्ग रक्खा जावे तो यह निश्चय हो सकता है और एक ही प्रकारका व्यवहारमार्ग भी रह सकता है—बहुत शीघ्र निर्णय हो सकता है। निष्पक्ष विद्वानोंके सम्मेलनकी जरूरत है। परन्तु जबतक ऐसा न हो, हम सब पढ़े लिखे भाइयोंको निश्चयधर्म समझकर व्यवहार धर्म उसके साधनरूप जो अपना अन्तःकरण गवाही दे उसे पालना चाहिये व जिस व्यवहार धर्ममें अपनी सम्मति न मिले उसपर माध्यस्थभाव या रागद्वेष रहित भाव रखना चाहिये, क्योंकि अल्पज्ञानवालोंकी बुद्धि सब ही विषयोंमें एकसी नहीं हो सकती है। नाना अपेक्षाओंसे भिन्न २ विचार किये जा सकते हैं।

इसीलिये श्री अमितगति महाराजने तथा उमास्वामी महाराजने चार भावनाओंको रखनेकी आज्ञा दी है। जिनसे सम्मति न मिले उनपर मध्यस्थ रखनेकी आज्ञा है, द्वेष भाव करनेकी नहीं है। देखिये कहा है—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

अर्थात्—हे भगवन ! मेरा आत्मा सर्व प्राणीमात्र पर मैत्रीभाव रक्खे, गुणवानों पर प्रमोद भाव रक्खे, दुःखी जीवों पर दया रक्खे व विपरीत स्वभाववालों पर माध्यस्थ भाव रक्खे।

शिष्य—मुझे आपके द्वारा बहुत ही लाभ हुआ है। मैं आपको कहांतक धन्यवाद दूं। अब कृपाकर यह बताइये कि जैनधर्म और बौद्ध धर्ममें क्या साम्यता है व क्या अन्तर है ? बौद्धोंकी संख्या संसारमें बहुत है तथा वे प्रसिद्ध भी बहुत हैं।

दशवां अध्याय।

जैन और बौद्ध धर्म।

शिक्षक—मैंने बौद्धोंकी कुछ पाली भाषाकी पुस्तकोंको इंग्रेजी द्वारा तथा उनके इंग्रजी उल्थाओंको पढा है, उससे मैं इस निर्णयपर आया हू कि गौतम बुद्धने कोई नया मत नहीं चलाया। जैनमतको ही एक ऐसा सरल व प्रचलित पद्धतिसे उपदेश किया कि जिससे दुनियाके लोगोंने बहुत जल्दी समझ लिया। जैनधर्म ही असलम बौद्धधर्मके रूपमें प्रचलित हुआ।

गौतम बुद्धके भावोंमे जैन तत्वज्ञान ही भरा था जिसे उन्होंने दूसरे ढङ्गसे प्रकाश किया। गौतम बुद्ध घर छोडनेके पीछे अपनी २९ वर्षकी आयुसे ३५ वर्षकी आयु तक ६ वर्षके बीचमें जैन मुनि भी रहे। जैन मुनिकी क्रियाएं पाली। ३५ वर्षकी आयुमे गयाजीमे जाकर इन्होंने जैन मुनिकी क्रियाको कठिन समझकर सरल और मध्यम मार्ग प्रचलित किया। दिगम्बर जैनोंके दर्शनसार ग्रन्थसे प्रगट है कि श्री पार्श्वनाथस्वामीकी परम्परा सम्प्रदायमे श्री पिहिताश्रव मुनि होगये हैं उनके शिष्य गौतम बुद्ध हुए और नग्न रहकर तपस्या की।

पिहिताश्रव मुनि बहुत प्रसिद्ध थे। यूनानदेशमें प्रसिद्ध एक तत्वज्ञानी पैथागोरस Pythagoras पिथागुरु व पिहितगुरु होगए हैं। यह पक्के शाकाहारी थे। जैनगजट इंग्रेजी जुलाई १९३३ में एक लेख डाक्टर क्राज Dr Charlotte Krause द्वारा लिखित है। उससे मालूम हुआ कि यह तत्वज्ञानी सन् ई० से ५९० वर्ष पहले युनियन सीके सोकासद्वीपमें जन्मे थे व इन्होंने भारतकी यात्रा की थी व भारतमे भी आए थे। फिर लौटकर दक्षिण इटलीके क्रोटोना नगरमें स्थिर रहे। वहांका राजा नूमा पोम्पिल्यस उनका शिष्य हुआ है।

लेटिन भाषाका कवि ओविद सन् १८ में हुआ है। उसने इस पिथागुरुका चरित्र व उनकी शिक्षाएँ 'Metamorphoses नामकी

पुस्तकमें दी हैं यह (Samian sage) समियाके साधु प्रसिद्ध थे। एक व्याख्यानका इंग्रेजीमें उल्था इस जैनगजटमें दिया हुआ है जो पिथागुरुने इटलीके राजा नूमाको दिया था। उसके पढ़नेसे इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि उनका तत्वज्ञान वही था जो जैनोंका था। इसके कुछ वाक्य नीचे दिये जाते है। बहुत सम्भव है कि यह **पिथागुरु ही पिहिताश्रव मुनि हों।**

(१) मरनेपर शरीर नष्ट हो जायगा परन्तु आत्माएं कभी नहीं मर सकती है। आत्माओंको पुराना घर छोडकर नए घरोंमें जाना पडता है।

(२) सर्व बस्तुए परिणमनशील हैं, किसीका सर्वथा नाश नहीं होता है All things change, there is no death anywere आत्मा पशुसे मानव व मानवसे पशु होजाता है। यह कभी मरता नहीं। जैसे मोम भिन्न २ शकलोंमे बदला जासकता है तथापि वह उतना ही मोम बना रखता हैं। इसी तरह आत्मा भिन्न २ पर्यायोंमें भिन्न २ शकलोंको रखता हुआ सदा वही बना रहता है।

नोट—इन वाक्योंसे साफ प्रगट है कि पिथागुरु द्रव्यको नित्य व अनित्य मानते थे, उत्पादव्ययध्रौव्यरूप मानते थे तथा अनेक आत्माओंको मानते थे व आत्माको एक प्रकारका आकारधारी होकर संकोच विस्तार करनेवाला मोमके समान जानते थे। यही जैनोंका विशेष सिद्धांत है।

(३) अपने जिह्वाके लोभसे धर्मका लोप मत करो, अपने साथी प्राणियोंकी हिंसा मत करो, रुधिर लेकर असर मत करो।

(४) मांस खाना हिंसाकारक है। इससे अपने शरीरको अपवित्र मत करो, वृक्षोंसे फलादि मिलते हैं, दूध मिलता है। इस पृथ्वी पर बहुत अधिक पवित्र भोज्य पदार्थ हैं जो बिना रुधिर बहाए मिल सकते हैं। जो मांस खाते हैं वे पशुतुल्य हैं। बहुतसे पशु मांस नहीं खाते हैं। घोड़े, भेड, गाय, भैंस घास पर बसर करते हैं।

पिथागुरुका जन्म सन् ई० से ५९० वर्ष पहले हुआ था, जबकि श्री महावीरस्वामीका जन्म सन् ई० से ५९९ वर्ष पहले हुआ। महावीरस्वामीने ४२ वर्षकी आयुमें शिक्षा देना प्रारम्भ किया तब पिथागुरु ३ वे

वर्षके थे। इससे मालूम पड़ता है कि पिथागुरु बीस वर्षके अनुमानमें ही भारतमें आये होंगे और श्री पार्श्वनाथकी सम्प्रदायके आचार्योंसे ही शिक्षा दीक्षा ली होगी। तथा वे यहां कई वर्षतक साधुपदमें रहे होंगे।

बौद्ध साधु महापण्डित त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित 'बुद्धचर्या' हिंदी पुस्तकसे प्रगट है कि गौतमबुद्ध जब ७६—७७ वर्षके थे तब पावापुरीमें श्री महावीर भगवानका निर्वाण हुआ था अर्थात् गौतमबुद्ध जब ४ वर्षके थे तब श्री महावीर भगवानका जन्म हुआ था। श्री महावीरकी आयु ७२ वर्षकी थी।

गौतमबुद्धने २९ वर्षकी आयुमें घर छोड़ा तब महावीर भगवान घर ही में थे। ६ वर्षतक गौतमबुद्ध भिन्न भिन्न प्रकारका तप करते रहे। उसीके मध्यमें जब जैन मुनिका तप भी पाला, ऐसा बौद्ध ग्रन्थोंसे प्रगट है। पिथा गुरु तब यहां मुनिपदमें २०—२१ वर्षकी आयुमें होंगे, यदि जन्म ५९० वर्ष पूर्व माना जावे। इसलिये पिहिताश्रव मुनि व पिथागुरुका सम्बन्ध बहुत कुछ मिल जाता है। पिथा गुरु अन्यवय ही में भारतमें आए होंगे ऐसा झलकता है।

जब ३५ वर्षके गौतमबुद्ध थे तब श्री महावीर भगवान् ३१ वर्षके थे। और तप अवस्थामें थे क्योंकि ३० वर्षकी आयुमें दीक्षा ली थी। और १२ वर्षतक तप साधा फिर उपदेश शुरू किया।

इससे सिद्ध है कि गौतमबुद्धका उपदेश श्री महावीरस्वामीके उपदेशसे १२ वर्ष पूर्व शुरू होगया था। तब गौतमबुद्ध ४७ वर्षके थे।

शिष्य—क्यों पाली ग्रन्थोंमें यह कथन मिलता है कि गौतमबुद्धने जैन मुनिकी तपस्या घर छोड़नेके बाद पाली थी?

शिक्षक—मज्झिमनिकाय पाली ग्रन्थके बारहवें महासीहनाद सुत्तमें नीचे लिखे वाक्योंसे दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है—

"अचेलको होमि...हत्थापलेखनो...नाभिहतं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियामि...न गब्भिनिया न पायमानाय न यत्थ मक्खिका संड संड चारिनी। न मच्छं न मंसं न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवामि।

सो एकागारिको वा होमि एकालोपिका, द्वागारिको होमि, द्वालोपिको, सत्तागारिको वा होमि सत्तालोपिको, एकाहपि आहारं आहारेमि, द्वीहिकपि आहारं आहारेमि, सत्ताहिकं पि आहारं आहारेमि। इति एवरूप अद्धमासिकपि परियायभत्त भोजनानुयोग अनुयुत्ता विहरामि, केसमस्सुलोच कोपिहोमि... याव उदुबिन्दुम्हि पि मे दया पच्चुपट्ठिताहो न माह खुद्दके पाणे पि समगते सघाते अप्पादेस्सति।

सो तत्तो सो सीनो एको भिंसनके वने।
नग्गो न च अग्गि आसीनो एसनापसुतो मुनीति॥

भावार्थ—मैं वस्त्ररहित रहा। हाथपर भोजन करता था। न लाया हुआ खाता था, न उद्दिष्ट भोजन करता था, न निमन्त्रणसे खाता था। गर्भिणी स्त्री व दूध पिलानेवाली स्त्रीके हाथसे नहीं खाता था, न जहां मक्खियां भिन्न २ करती हों, न मछली न मांस मदिरा न घासका पानी पीता था।

कभी एक घरसे एक ग्रास खाता था, कभी दो घर जानेका नियम रखकर दो ग्रास खाता था। इस तरह सात घर जानेका नियम रखके सात ग्रास तक खाता था। कभी एक दिन बाद, कभी दो दिन पीछे आहार लेता था, कभी पद्रह दिन पीछे आहार करता था।

इस तरह विहार करता था। सिरके केशोंका व डाढ़ीके केशोंका हाथसे लोंच करता था। एक जलकी बून्द भी न घात करूं ऐसी मेरेमें दया थी, मेरेसे कोई छोटा भी प्राणी घात न हो जावे ऐसा ध्यान रखता था। गर्मी, शर्दी सहता हुआ भयानक वनमें नग्न रहता था, आग नहीं तापता था, ध्यानमें मग्न मुनि था।

ये सब दिगम्बर मुनिका चारित्र श्री वट्टकेरस्वामी कृत मूलाचार दि० जैन ग्रन्थसे मिलता है।

जो कुछ सिंहानादसुत्तमें वर्णित है व गौतमबुद्धने घर छोड़नेके बाद बुद्ध होनेके पहले पाला था। इसके सम्बन्धमें पूछनेपर एक विद्वान बौद्ध भिक्षु श्रीयुत नारद थेरा, वजराम आश्रम वजिरारोड बम्बलपिटिया (सीलोन) से अपने पत्र ५ मई १९३३ में लिखते हैं—

I referred to the Sihanada Sutra, I am inclined to agree that these abservances were gone through after the Bodhisatta had left his home. In another place it is stated "Aham Bodhisatto samano" which clearly show that he practiced these austerities, whilst he was struggling for Buddhahood

भावार्थ—मैंने सिंहनाद सूत्र देखा, मैं इस बातसे सहमत हूं कि ये सब क्रियाएं बोधिसत्वने घर छोडने पर की थीं। दूसरे स्थान पर लिखा है कि उन्होंने इन तपस्याओंका उसी समय अभ्यास किया था जब वे बुद्धत्वके लिये उद्यम कर रहे थे।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि गौतमबुद्धने शक्तिसे अधिक तप कर लिया था। जैन शास्त्रोंकी आज्ञा है कि शक्तिके अनुसार उतना बाहरी तप करे जिससे आत्मामें आनन्द बर्ते, क्लेशभाव न पैदा हो। आत्मध्यानकी सिद्धिके लिये बाहरी तप किया जाता है। जैसा श्री अमृतचन्द्र आचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमे लिखते हैं—

चारित्रान्तर्भावात् तपोऽपि मोक्षागमागमे गदितम्।
अनिगूहितनिजवीर्यैस्तदपि निषेव्यं समाहितस्वान्तै.॥ १९७॥

भावार्थ—तप भी चारित्रके भीतर गर्भित है। आगममें इसे भी मोक्षमार्ग कहा है। अपने मनको समताभावमे रखनेवालोंको अपनी शक्तिके अनुसार उसे पालना चाहिये।

अधिक तप करनेसे गौतमबुद्धकी समझमें इस बाहरी कठिन तपस्यासे आकुलता होगई। उनकी समझमे यह आया कि वस्त्र रखके बाहरी सुगम मार्ग पर चलते हुए भी आत्माका ध्यान किया जा सकता है। इसीसे गौतमबुद्धकी पाली पुस्तकोंमें लिखा है कि बुद्धने अपनी ३५ वर्षकी आयुमें मध्यम मार्गका उपदेश सबसे पहले बनारस सारनाथ पर दिया, जहां श्री श्रेयांसनाथ ग्यारहवें जैन तीर्थंकरकी जन्मभूमि है।

बुद्धके अन्तरङ्गमे जैन तत्वज्ञान भरा था उसीको वे स्वयं पालते थे व उसीका उपदेश उन्होंने इतनी सुगम रीतिसे दिया कि जनताने सुगम समझकर शीघ्र ग्रहण कर लिया। और बुद्धमतका प्रचार भारतमें व विदे-

शोंमें बहुत अधिक फैल गया। आज इस मतके माननेवाले ४० या ५० करोड इस जानी हुई दुनियांमें होंगे। इनके सबसे पुराने ग्रन्थ पाली भाषाके हैं जो प्रथम शताब्दीमें सीलोनमें लिखे गए थे। उनसे जो बौद्ध धर्म झलकता है उसका तत्वज्ञान जैन तत्वज्ञानसे मिलता है।

(१) मोक्षका स्वरूप—

मज्झिमनिकाय अरिय परियेसन सुत्त २६ में वाक्य है—

"निव्वान परि येसमान अजात अनुत्तर योगक्खेम निव्वान अज्झगम। अजर अव्याधि अमत असोक असंकि०। अधिगमो ख्वा मे अय धम्मो गम्भीरो दुद्दसो, दुरनुबोधो, सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो।"

भावार्थ—जो निर्वाण खोजनेयोग्य है वह किसीसे उत्पन्न नहीं है अजन्मा है अर्थात् स्वाभाविक है, उससे बढकर कोई नहीं है इसलिये अनुत्तर है, योग अर्थात् ध्यानद्वारा अनुभव गम्य है, इसलिये योगक्षेम है, जरारहित है, व्याधिरहित है, मरणरहित है, शोकरहित है, क्लेशरहित है। मैंने वास्तवमें इस धर्मको जान लिया।

यह धर्म गंभीर है, कठिनतासे जाननेयोग्य है, शांत है, उत्तम है, तर्कके गोचर नहीं है, निपुण है तथा पंडितोंके द्वारा अनुभव करनेयोग्य है।

सुत्तनिपात कप्पमानवपुच्छामें कहा है—

अकिंचनं अनादानं एतं दीपं अनापरं।
निब्बानं इति तम ब्रूमि जरा मिच्चु परिक्खयम्॥

भावार्थ—मैं उस निर्वाण कहता हूं जो एक अनुपम द्वीप है। जहां न कुछ परपदार्थ है, न कुछ इच्छा ही है, जहां न जरा है, न मरण है।

इन वाक्योंसे सिद्ध है कि निर्वाण अस्तिरूप है। कोई वहां ऐसा है जो जन्मा नहीं है न मरता व जो अनुभवगम्य है व आनंदमय है। इससे यही मतलब निकलता है कि वह एक परमात्मपद है, आत्माका स्वाभाविक भाव है। सर्व संस्कारोंके छूट जानेपर जो कुछ शेष रह जाता है, यही मोक्ष है। जो गुप्त था, वह प्रकाश होजाता है। ऐसा ही स्वरूप जैनाचार्योंने मोक्षका बतलाया है।

श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरण्डमें कहते हैं—

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशंकं ।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजंति दर्शनशुद्धाः ॥ ४० ॥

भावार्थ—निर्मल सम्यक्ती जीव ऐसे निर्वाणको पाते हैं जो शिव है, अजर है, रोग रहित है, अक्षय है, अव्याबाध है, शोक, भय, व शंकासे शून्य है, उत्कृष्ट सुख व ज्ञानकी विभूति सहित है व निर्मल है।

(२) आत्माका स्वरूप—

निर्वाणका ऐसा स्वरूप मानते हुए यह स्वत. सिद्ध है कि आत्माका अस्तित्व माना गया है। जबतक कोई पदार्थ न होगा निर्वाण किसका होगा। मज्झिमनिकायके प्रथम सूत्र मूल परियायके पढ़नेसे विदित होगा कि सर्व पृथ्वी आदि पदार्थोंसे व क्षणिक ज्ञान, सुख आदिसे रहित जो है उसीपर लक्ष्य दिलाया है। उसके कुछ वाक्य हैं—

"अरियधम्मस्स अकोविदो...पथवीं पथवितो सञ्जानाति...पथविं मे ति मञ्ञति...अपरिञ्ञात तस्स. .योपि सो अरहं खीणसवो वुसितवा कतकरणीयो. सम्मदञ्ञाविमुत्तो पथविं मेति न मञ्ञति।"

भावार्थ—जो आर्यधर्मको नहीं जानता है, वह पृथ्वीको पृथ्वी जानता है, पृथ्वीको अपनी मान लेता है, क्योंकि उसका ज्ञान नहीं है जो कोई अर्हन् क्षीण आस्रव है, ब्रह्मचारी है, कृतकृत्य है, सम्यग्ज्ञानी है, वैरागी है, वह पृथ्वी आदि मेरी है ऐसा नहीं मानता है।

संयुत्तनिकाय (चुन्द० १३) में ये पाली वाक्य है—

तस्मातिह आनंद अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा ।
अनञ्ञसरणा धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा ॥

भावार्थ—इसलिये हे आनन्द! आत्मारूपी दीपमें विहारकर आत्मा ही शरण है, दूसरा कोई शरण नहीं है। धर्म ही द्वीप है, धर्म ही शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।

बुद्ध पाली साहित्यमें स्पष्ट आत्माका वर्णन न करके संस्कारोंको अनित्य बताकर व निर्वाणको अजात, अजर, अमर बताकर सिद्ध कर दिया है कि जो निर्वाणस्वरूप है वही आत्मा है। ऐसा ही जैन सिद्धान्त मानता है कि आत्मा व निर्वाण एक अनुभवगोचर पदार्थ है. आत्मा निर्विकल्प है।

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे तदहं निर्विकल्पक. ॥ १९ ॥

भावार्थ—मै दूसरोंके द्वारा समझाया जाऊं या मै दूसरोको समझाऊं यह मेरी उन्मत्त चेष्टा है, क्योंकि मे (आत्मा) निर्विकल्प हू। गौतमबुद्धने भी सयुत्तनिकाय अव्याकत सुत्त न० १० मे वच्छगोत्र परिब्राजकके आत्मा सम्बन्धी प्रश्नपर मौन धारण किया है। उन पाली वाक्योंका हिंदी भाव यह है-एक दफे वच्छगोत्र परिव्राजकने भगवान् गौतमसे प्रश्न किया कि क्या आत्मा है? भगवान मौन रहे फिर उसने पूछा क्या आत्मा नहीं है? फिर भी भगवानने कहाकि यदि मैं आत्मा है ऐसा कहता तो अनित्यवादीका साथी होता।

इस कथनसे बिलकुल साफ प्रकट है कि जैसे जैनी आत्माको नित्य तथा अनित्य उभयरूप भिन्न २ अपेक्षासे मानते है उसी तरहकी मान्यता गौतमबुद्धकी थी। यदि वह जडवादी होता तो ऐसा कभी नहीं कहता। मौन रहनेसे बुद्धने बता दिया था कि आत्मा वचनोंका विषय नहीं है, अनुभवका विषय है।

(३) **मोक्षका मार्ग**—

जन सिद्धान्तने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्रको मोक्षमार्ग माना है। उसी तरह बौद्ध पाली साहित्यमे आठ तरहका मोक्ष मार्ग माना है जो जैनोंके रत्नत्रयमे गर्भित होजाता है।

मज्झिमनिकायके नौम सम्मादिट्ठिसुत्तमे कहा है—

" अयमेव अरियो अट्ठंगिको मग्गो आसवनिरोधगामिनी पटिपदा सेय्यथिद-सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्मकम्मन्तो, सम्माआजीवो सम्मावायामो, सम्मासति सम्मा समाधि।"

भावार्थ—हे आर्यो! आस्रवके रोकनेका उपाय यह आठ प्रकारका मार्ग है। (१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्म, (५) सम्यक् आजीविका, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

जैनों द्वारा माना हुआ सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌दृष्टिके साथ सम्यक्‌ज्ञान सम्यक् संकल्पके साथ व शेष छहों सम्यक्‌चारित्रके साथ मिल जाते हैं।

बात एक ही है। चाहे रत्नत्रय मोक्षमार्ग कहो या अष्टांग मोक्षमार्ग कहो। जब निर्वाण स्वरूप आत्मापर श्रद्धान लाया जायगा उसीका ज्ञान होगा, व उसीकी तरफ चेष्टा या व्यायाम होगा। उसीका ही स्मरण होगा, उसीको समाधिभावमें ध्याया जायगा तब ही मोक्षमार्ग होगा। व्यवहार बर्तते हुए वचनयोग्य, कायकी क्रिया योग्य व भोजन शुद्ध हो-जाना चाहिये। जैन और बौद्ध दोनोंका एक ही कहना है।

जैसे जैनोंमें आत्मध्यानको भेद विज्ञानके द्वारा करके मोक्षका साधन बताया है ऐसा ही बौद्ध ग्रंथोंमें है।

मज्झिमनिकाय (१) महामालुक्यसुत्त चतुर्थ (६४) "सो यदेव तत्थ होति वेदनागतं, सञ्ञागतं, सङ्खारगतं, विञ्ञाणगतं ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति, सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटिवापेति सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटिवापेत्वा अमताय धातुया चित्तं उपसंहरति। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानन्ति-सो तत्थट्ठितो आसवानं खयं पापुणाति ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिसके भीतर ऐसा होवे कि वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान (अशुद्ध ज्ञान) सम्बन्धी विभाव धर्म नित्य हैं, दुःख हैं, रोग हैं, घाव हैं, शल्य हैं, पाप हैं, बाधा हैं, पर हैं, देखनेयोग्य नहीं हैं, शून्य हैं, अनात्मा हैं, जो ऐसा समझता है वह उन विभावोंसे चित्तको हटाता है। इन धर्मोंसे चित्तको हटाकर व अमरधातु अर्थात् मोक्षपदकी तरफ चित्तको लगाता है।

यह निर्वाण ही शांत है, उत्तम है, जहां सर्व संस्कार शांत होजाते हैं, सर्व उपाधि दूर होजाती हैं, तृष्णाका क्षय होजाता है, वीतरागता होती है, आस्रवोंका निरोध होजाता है, इस तरह वह इस भावमें ठहरा हुआ आस्रवोंका क्षय कर डालता है।

दिग्घनिकाय (३) ३३ संगीत सुत्त।

इसमें कथन है कि **एक धर्म** ब्रह्मचर्य है। **दो धर्म** स्मृति व समाधि बल है, या विद्या और विमुक्ति है या इन्द्रियोंका निग्रह और भोजनमें मात्रारूप संयम है। या अविद्या, तृष्णाका क्षय है या नाम-रूपका वियोग है।

तीन धर्म है मोह, लोभ, द्वेषका क्षय। **चार धर्म हैं**-शील, समाधि, प्रज्ञा विमुक्ति। **दश विभाव धर्म हैं**-प्राणातिपात, अदत्तादान (चोरी), कामेसुमिथ्याचार (कामभाव), मृषावाद, पिशुन वचन (चुगली), फरुसा वचन, (कठोर वचन), सम्फप्पलाप आलाप (वृथा बकबक) अभिज्झा (लोभ), व्यापाद (क्रोध) मिथ्यादृष्टि। इनसे विरक्त रहना चाहिये।

(४) **कर्म बंध**—

जसे जैनियोंमे कर्मोंके आस्रव अर्थात आनेके भावोंका वर्णन है वैसे बौद्धोंके पाली सूत्रोंमे है। मज्झिमनिकायका पहला सूत्र ही आस्रव सूत्र है। जिसमे यह वर्णन है कि काम भाव और अविद्याके भाव आस्रव है, मिथ्यादृष्टि आस्रव है, अर्थात् अपनेको निर्वाणरूप न मानकर और रूप मानना, पांच इन्द्रियोंमे आसक्तपना, क्रोधादि भाव आस्रव है।

आस्रवको रोकनेके लिये जैसे संवर शब्द जैन शास्त्रोंमे आता है वैसे इसी आस्रव सूत्रमे संवरका वैसा ही कथन है। नमूना-"इध भिक्खवे भिक्खु पटिसंखा योनिसो चक्खुन्द्रिय संवर संवुतो विहरति। यं हि'स्स भिक्खवे चक्खुंदिय संवर असंवुत्तस्स विहरतो उप्पज्जेय्यु आसवा विघात परिलाहा चक्खुन्दिय संवर संवुतस्स विहरतो एवं सते आसवा विघात परिलाहा न होति।"

भावार्थ—हे भिक्षुओ! जो भिक्षु आश्रवके कारणोंको ध्यानमे लेता हुआ चक्षु इंद्रियको रोककर विहार करता है उस साधुके चक्षुइन्द्रियको न रोककर विहार करनेसे जो घातक आश्रव होते वे नहीं होते है उनका संवर होजाता है।

भावोंकी अपेक्षा कर्मोके आस्रव व बंधका कथन बिलकुल मिलता

है। कर्मोंके पिंड हैं या कर्म वर्गणाएं हैं जो आकर बन्धती हैं, वे रुक जाती हैं। इनका यद्यपि क्रमवार साफ २ कथन अभीतक नहीं देखने में आया तथापि कुछ वाक्य ऐसे मिले हैं जिनसे सिद्ध होता है कि कर्मोंका बन्ध भी जैनकी तरह बौद्धमतमें स्वीकार था। उसका पीछे विपाक होना, पकना यह सब स्वीकार था। नीचे लिखे शब्दोंसे प्रगट होगा—

(१) दिग्घनिकाय अगञ्ञा सुत्त २७।

"खत्तियोपि खोवासेट्ठ, कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा मिच्छादिट्ठिको।"

मिच्छा दिट्ठिकम्म समादान हेतु कायस्सभेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं निरयं उप्पज्जति।

भावार्थ—हे वशिष्ट! क्षत्री भी यदि मिथ्यादृष्टि हो व मन, वचन कायसे दुष्ट आचरण करे तो मिथ्यादृष्टि कर्मको लिये हुए शरीर छूटनेपर मरणके पीछे दुर्गतिमें जाता है, नर्कमें उपजता है।

(२) दिग्घनिकाय ३ संगीत सुत्त—

जैसे जैन शास्त्रोंमे दर्शनमोहकर्मके तीन भेद हैं वैसे बौद्धोंमें भी तीन ऐसे नाम मिलते हैं—"तयोरासि—मिच्छत्त नियतो रासि, सम्मत्त नियतो रासि, अनियतो रासि—यहां रासि शब्द प्रगट करता है कि कोई समूह है—जिसको कर्म समूह ही मानना उपयुक्त होगा। अर्थात् मिथ्यादर्शन कर्मराशि, सम्यक्त कर्मराशि, मिश्र कर्मराशि।

(३) संस्कृतमें अपरिमितायु सूत्र है-"य इदम् सूत्र लिखिष्यति तस्य पञ्चान्तरायाणि कर्मावरणानि परिक्षय गच्छन्ति।" (पृ० २८९ Manuscript remains of Budhist literature in East Turkastan by Hoernle 1916) अर्थात् जो इस सूत्रको लिखेगा उसके पांच अन्तराय कर्मावरण नाश होजायगे इन वाक्योंसे जैनोंके समान पांच अन्तराय कर्मोंके ही सम्बन्धका कथन है।

(४) **अहिंसा**—जैसे जैनियोंमें कहा है कि स्थावर व त्रसकी रक्षा करो ऐसा ही बौद्ध पाली ग्रन्थोंमें है।

सुत्तनिपात धम्मिक सुत्त।

पाणं न हाने न च घातयेय्य न चानुमन्याहननं परेसं।
सव्वेसु भूतेसु निधाय दण्डं ये थावरा ये च तसंति लोके॥
कतंहि नाम समणा सक्यपुत्तिया हेमंतंपि गिम्हति वस्सेपि।
चरिक परिस्संति हरितानि तिनानि मद्दन· एकेंद्रियजीवे॥
विहेठित· बहु खुद्दके पाणे संघातं आपादयंत:। . . .

भावार्थ—स्थावर व त्रस सर्व प्राणियोंमेंसे किसी प्राणीको न तो मारो न घात कराओ, न किसी हिंसाकी अनुमोदना करो। कोई २ शाक-पुत्रके शिष्य हरे तृणोंका मर्दन करते हुए चलते हैं, एकेन्द्रिय जीवोंको घात करते हैं, बहुत क्षुद्र जन्तुओंको मारते हैं।

विनय पिटक महावग्ग (३–१) मे लेख है कि एकेंद्रियादि क्षुद्र प्राणियोंका घात न हो। इसलिये साधुओंको वर्षामें एक ही स्थान पर रहना चाहिये।

लंकावतार सूत्रमें हरएक बौद्ध धर्मपर विश्वास लानेवालेके वास्ते मांसाहारका निषेध है। कुछ वाक्य हैं–इस सूत्रके आठवें अध्यायमें मांस खानेका ही निषेध है—

मद्यं मांसं पलाण्डुं च न भक्षयेयं महामुने।
बोधिसत्वैर्महासत्वैर्भाषद्भिर्जिनपुंगवै ॥ १ ॥
लाभार्थं हन्यते सत्वो मांसार्थं दीयते धनम्।
उभौ तौ पापकर्माणौ पच्येते रौरवादिषु॥ ९॥
योऽतिक्रम्य मुनेर्वाक्यं मांसं भक्षति दुर्मतिः।
लोकद्वयविनाशार्थं दीक्षित· शाक्यशासने। १०।
त्रिकोटिशुद्धं मांसं वै अकल्पितमयाचितं।
अचोदितं च नैवास्ति तस्मान्मांसं न भक्षयेत्॥ १२॥
यथैव रागो मोक्षस्य अन्तरायकरो भवेत्।
तथैव मांसमद्याद्य अन्तरायकरो भवेत्॥ २०॥

भावार्थ—जिनेन्द्रोंने कहा है कि मदिरा, मांस, प्याज हे महामुनि! किसी बौद्धको न खाना चाहिये। लाभके लिये पशु मारा जाता है, मांसके

लिये वध किया जाता है। दोनों ही पापकर्मी हैं। नरकमें दुःख पाते हैं। जो कोई दुर्बुद्धि मुनिके वाक्यको उल्लंघन करके मांस खाता है वह शाक्य शासनमें दोनों लोकके नाशके लिये दीक्षित साधु हुआ है, विना कल्पना किया हुआ व विना मांगा हुआ व प्रेरणा किया हुआ मांस हो नहीं सकता इसलिये मांस न खाना चाहिये।

जैसे राग मोक्षमें विघ्नकारक है वैसे मांस मदिराका खाना भी अन्तराय करनेवाला है। साधुओंके लिये इतनी सुगमता दे दी है कि वे ब्रह्मचारीके समान वस्त्र पीले आवश्यक रख सकते हैं, स्नान भी कर सकते है। निमंत्रणसे या भिक्षासे दो प्रकारसे दिनमें १२ बजेसे पहले भोजन कर लेते हैं। पीछे भोजन नहीं करते है, पानी आदि लेते हैं।

अंगुत्तरनिकाय तिकनिपात के (१९) रथकार सूत्रमें है—भिक्षु प्रातःकाल, मध्याह्नकाल व सायकाल भलेप्रकार आत्मध्यान करे। इसीके महावग्ग (७०) में कहा है–साधु रात्रिको नहीं खाते हैं व दिनमें एकबार भोजन करते हैं।

जैसे जैन लोग जगतका कर्ता व फलदाता ईश्वरको नहीं मानते वैसे बौद्ध लोग भी नहीं मानते। बौद्धोंके मन्दिरोंमें ध्यानमई मूर्तियां वेदीमें उसी तरह विराजमान होती है जैसे जैनियोंमें होती हैं। ये लोग केवल वस्त्रका चिह्न दिखाते हैं, आगे पुष्प, दीप व धूपसे पूजन करते हैं। दण्डवत करके जैनोंकी तरह नमस्कार करते हैं।

बहुधा ये पढ़ते हैं—"बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।" बर्मा, सीलोनमें इनके विशाल मंदिरोंमें बड़ी २ अवगाहनाकी पद्मासन, कायोत्सर्ग व लेटे निर्वाण आसनकी मूर्तियें है। पगू (बर्मा) में एक मूर्ति निर्वाणकी १८१ फुट लम्बी है। ४५ फुट तककी बहुतसी मूर्तियां सीलोनमें हैं जो बड़ी सुन्दर पद्मासन हैं। केवल हाथ कभी उठे हुए होते हैं। सीलोनकी एक पहाड़ीपर गुफाके भीतर ध्यानमय बड़ी मूर्तियां हैं। ये लोग नंगे पैर विनयसे यात्रा करते हैं।

शिष्य—तब तो जैन और बौद्धका बड़ा भारी घनिष्ट संबंध है।

शिक्षक—दोनोंका तत्वज्ञान एकसा ही है। जैनोंको उचित है कि

बौद्धोंके ग्रन्थ देख तथा बौद्धोंको उचित है कि जैनोंके ग्रन्थ देखें।

शिष्य—परन्तु मैंने यह सुना है कि बौद्ध साधु व गृहस्थ दोनों मांसाहारी है, तब अहिंसाका तो कुछ पालन हुआ ही नहीं।

शिक्षक—सब तो नहीं है, बहुतसे साधु व गृहस्थ मांस मछली नहीं खाते है, बहुतसे खाते भी है। जो खाते है उनको यह मिथ्या श्रद्धान है कि मांस खरीदनेसे हिंसाका दोष नहीं लगता है जबतक मांसके लिये पशुघात किया न हो, कराया न हो, व पशु घात करनेकी अनुमोदना न की हो।

इसी तरह साधुको जो भिक्षाम मिल जावेगा वह लेकर खा लेगा। यदि वह मांस मांगे व यह भाव करे कि मास मिले व किसी प्रकारकी मांसकी प्रेरणा करे जिससे पशुघात हो तब तो उसको हिंसाका दोष लगेगा, नहीं तो साधुको मांस मात्र भिक्षामे लेनेपर पशुघातका दोष नहीं लगेगा। वे कहते है कि यदि साधुने पशुघात होते देखा हो वा सुना हो, यह कल्पना की हो कि उसके लिये पशुघात किया गया हो तो उसे मांस मछली न खाना चाहिये अन्यथा दोष नही है। इन सर्व कल्पनाओंका जवाब यह है—

जैसे संस्कृत लंकावतार सूत्रमे भी बौद्ध ग्रन्थकर्ताने भलेप्रकार समझा दिया है—जो बाजारमे मांस खरीदेगा, धन देगा, मांस लेगा, वह जानता है कि इस कसाईने कसाईखानेमे पशु घात कराया है या किया है। वह यह भी जानता है कि मांस खानेवाले मांस न खरीदें तो वह मांसकी दुकान न रक्खे तथा धन दिया जावेगा तो फिर दूसरे दिन पशु घात करके मांस बाजारमे लावेगा। ऐसा जानते हुए भी यदि वह मांस खरीदता है तो वह पशु घात करानेके या पशुघातकी अनुमोदनाके दोषसे मुक्त नहीं होसकता।

इसी तरह साधु भी यह जानते है कि पशुघातके बिना मांस नहीं आता है। गृहस्थोंका मांस खाना पशुघातकी उत्तेजना देना है। तथा यदि भिक्षाम मे मांस स्वीकार करूंगा तब अवश्य गृहस्थको यही उत्तेजना मिलेगी कि मांस खानेमे व लेनेमें जैसे साधुको दोष नहीं है, वैसे गृहस्थको भी बाजारसे खरीदनेमे व खानेम दोष नहीं है।

इसलिये साधुको हिंसाके कारणरूप मांसको स्वीकार करते हुए हिंसाकी पसन्दगी (approval) का दोष अवश्य लगता है। जैसे कोई देशहितैषी यह संकल्प करे कि मैं स्वदेशी वस्त्र पहनूंगा, जिससे मेरे देशकी कारीगरीको उत्तेजना मिले। तब वह यदि विदेशी वस्त्रको जो खास उसके लिये नहीं बना है, न उसे बनवाया है, स्वीकार करता है तो वह अपने संकल्पको खण्डन करता है व स्वदेश हितसे बाहर जाता है व विदेशी वस्त्र व्यवहारकी उत्तेजना देता है। ऐसेको स्वदेशी भक्त नहीं कहा जायगा किंतु स्वदेशद्रोही माना जायगा। इसी तरह जब मांस बहुधा पशुघातके बिना नहीं आता है, इसलिये जगह २ कसाईखाने खुले हैं। पशु निर्दयतासे मारे जाते हैं।

यदि मांसाहारी मांस न खावें तो पशु कभी भी न मारे जावें ऐसा गृहस्थ व साधु दोनों जानते हैं। जानते हुए भी यदि मांस स्वीकार करते हैं तो उनके मनके भीतर मांसकी पसन्दगी होनेसे हिंसा करानेकी उत्तेजनाका दोष अवश्य आयगा।

यदि कोई माल बाजारमें बिक रहा है और हमारे मनमें यह शंका होती है कि यह माल चोरीका मालूम होता है क्योंकि बहुत ही अल्प दाममें यह बेच रहा है, ऐसी शंका होनेपर यदि हम उसको खरीद लेते हैं तो हम अवश्य चोरीको उत्तेजना देनेके भागी होनेसे चोरीके दोषसे बिलकुल मुक्त नहीं होसकते।

जो कोई मन, वचन काय व कृत कारित अनुमोदनासे चोरीका त्यागी होगा वह कदापि चोरीका माल नहीं खरीदेगा। इसी तरह जो मन, वचन, काय व कृत कारित अनुमोदनासे हिंसाका त्यागी होगा वह कदापि मांस स्वीकार न करेगा, न खायगा।

यदि यह कहा जावे कि स्वयं मरे हुए पशुका मांस गृहस्थ लोग खावें व साधुको भिक्षामें मिले तो तो कोई पशु घात करने, कराने व पशु घातकी पसन्दगीका दोष नहीं आता है। तो इसका उत्तर यह है कि मांसाहारकी आदत न पड़ने पावे। इसलिये ऐसा मांस भी नहीं स्वीकार करना चाहिये।

जो आदत पड जायगी तो उसे पशुघातसे लाया हुआ भी मांस स्वीकार करना पड़ेगा। तथा बाजारमें खरीदते हुए व भिक्षामें लेते हुए यह जानना कठिन है कि यह मांस स्वय मरे हुए प्राणीका है। शका अवश्य रहेगी। जिसमे शका रहे उसको नहीं ही स्वीकार करना चाहिये।

जैसे मदिराको किसी भी तरहसे मिले स्वीकार न करना चाहिये। क्योंकि मदिराकी आदत अच्छी नहीं है उसी तरह मांसको किसी भी तरह मिले, स्वीकार न करना चाहिये, क्योंकि मांसाहारकी आदत हिंसाकी उत्तजनाका कारण होनेसे अच्छी नहीं है। स्वय मरे हुए प्राणीके मांससे कभी दुर्गंध नहीं जाती है।

इसका कारण यह है कि उसमे सडान पैदा होजाती है, जिससे बहुतसे कीडे उसमे पैदा होते है। जो मांस खायेगा वह उन कीडोंकी हिंसासे बच नहीं सकता है। जैनाचार्य श्रीअमृतचन्द्रने पुरुषार्थ सिद्धयुपायमे मांसाहार निषेधपर नीचे प्रकार लिखा है—

न विना प्राणविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात् ।
मांस भजतस्तस्मात प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥ ६५ ॥
यद्यपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः ।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोदनिर्मथनात् ॥ ६६ ॥
आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु ।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥ ६७ ॥
आमां वा पक्वां वा खादति यः स्पृशति वा पिशितपेशीम् ।
स निहन्ति सततनिचितं पिण्डं बहुजीवकोटीनाम् ॥ ६८ ॥

भावार्थ—क्योंकि पशुघातके विना मांसकी उत्पत्ति देखनेमें नहीं आती है। इसलिये जो मांस खाएगा उसको अवश्य हिंसाका दोष आयगा। यदि कोई कहे कि स्वय मरे हुए बैल व भैंस आदिका मांस खाया जावे तौ भी उचित नहीं है क्योंकि उस मांसमें पैदा होनेवाले अनेक कीड़ोंका घात करना पड़ेगा।

मांसकी डली चाहे कच्ची हो या पकी हो पकी हो या पक रही हो, उसमें हरसमय उसी पशुकी जातिके जंतु पैदा होते रहते हैं जिसका वह

मांस है। इसलिये जो कोई ऐसे मांसको भी खाता है व उसका स्पर्श करता है वह करोडों जंतुओंकी हिंसा करता है जो उसमें निरंतर पैदा होकर एकत्र हुए हैं।

अन्नादि फलादि स्वयं वृक्षोंसे फलते है, ये ही मानवोंका खाद्य होना चाहिये। गोवंश प्रचुर दूध देता है, दूध भी खाद्य होसकता है। दूधके लेनेमे पशुका घात नहीं करना पडता है। जैसे अपनी माताका दूध पीना है वैसे गो भैंसका दूध पीना है। गो भैंसको घास दाना देकर पालना, उनके बच्चोंकी रक्षा करना फिर जो विशेष दूध मिले सो मानवजाति काममे लेसकती है।

मांसाहार प्रकृतिविरुद्ध है, रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है, शरीरको पुष्टि देनेवाला भी नहीं है। अन्नादि मिलते हुए मांस लेना वृथा ही पशुघातको करानेका मार्ग चलाना है। जसे मानवोंको अपने प्राण प्यारे है वैसे पशुओको भी अपने प्राण प्यारे हैं।

शिष्य—बौद्धोंमे तो बडे बडे विद्वान साधु है वे क्या इतना भी नहीं समझते हैं कि मांसाहार पशुघातका कारण है फिर वे इसके त्यागका उपदेश क्यों नहीं करते है?

शिक्षक—जो बौद्ध भिक्षु स्वयं मांसाहार नहीं करते है वे तो मांसाहारके त्यागका उपदेश देते है। परन्तु जो स्वयं खाते है उनसे ऐसा उपदेश हो ही नहीं सकता है। वे अपने कृत्यकी पुष्टि करते हैं कि भ० गौतम बुद्धने मांस खानेकी मनाई नहीं की है—केवल प्राणातिपातकी मनाई की है व गौतमबुद्धने स्वयं मांस स्वीकार किया है।

पालीसूत्र सीलोनमे रचे गए थे, समुद्रका मध्य द्वीप होनेसे यहांके निवासी मछली खाते है। इसलिये सूत्रोंके लिखनेवालोंने दो तीन सूत्रोंमें ऐसा झलका दिया है कि गौतम बुद्धने स्वयं मांस लिया व मांसका निषेध नहीं किया है। इन सूत्रोंका आधार लेकर वे मांसाहारी साधु अपने मनको समझा लेते हैं और मांसाहारको स्वयं भी नहीं छोडते है और न दूसरोंसे छुडवाते हैं।

लंकावतार सूत्रमे तो बिलकुल स्पष्ट कहा है कि जो कहते हैं कि गौतमबुद्धने मांस खाया व मांस खानेकी प्रेरणा की है वे बौद्ध शासनकी

अवज्ञा करते हैं। वहां कहा है " भविष्यति अनागतेऽध्वनि ममैव शासने प्रव्रजित्वा शाक्य पुत्रीयत्व प्रति जानाना मम तृष्णाभ्यवसिताः तां तां मांस-भक्षणहेत्वाभासा ग्रन्थयिष्यन्ति मम च अभूताभ्याख्यान दातव्य मन्यन्ते तत्त-दर्थोत्पत्ति निदान कल्पयित्वा कल्पयिष्यन्ति इय अर्थोत्पत्तिरस्मिन्निदान भगवता मांस भोजनमनुज्ञात कल्पमिति, प्रणीत भोजनेषु चोक्त स्वयं च किल तथा-गतेन परिभुक्तमिति-न च महामते कुत्रचित् सूत्रे प्रतिसेवितव्यमित्यनुज्ञात प्रणीतभोजनेषु वा देशित कल्पमिति। "

भावार्थ—मेरे ही शासनमें भविष्यमें शाक्य सम्प्रदायी ऐसे साधु होंगे जो मांसरसकी तृष्णाके कारण मांसाहारकी पुष्टिमें मिथ्या हेतुओंको ग्रथकर कहेंगे। मेरे न हुए कथनोंको मानके यह कहेंगे कि भगवानने मांस भोजनकी आज्ञा दी है, स्वयं मांस भोजन किया है व खाने योग्य भोजनोंमे बताया है। हे महामते! मैंने किसी भी सूत्रमें मांस खानेकी आज्ञा न दी है न इसे भक्ष्य पदार्थोंमें कहा है।

शिष्य—यह ग्रन्थ कितना पुराना है व कहां मिलता है?

शिक्षक—यह ग्रन्थ पुराना है, इसकी संस्कृतसे चीनी भाषामें टीका मालवाके गुणभद्रने सन् ४४३ में की थी। इसको ओटनी यूनि० क्यूटो (Otani University Kyoto Japan) ने संस्कृत मूल सन् १९२३ में छपाया है। सम्पादक Bunyin Nanjid M. A है।

यदि बौद्ध देशोंसे मांस मत्स्यका आहार निकल जावे और व पाली ग्रन्थोंके अनुसार चलने लगें तो श्वेताम्बर जैनोंमें और बौद्धोंमें कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ेगा। दोनोंके साधु वस्त्र रखते, वस्त्र सहित प्रतिमा बनाते, उसी प्रकार भिक्षासे एकत्र कर भोजन करते हैं। जैनोपदेशकोंका कर्तव्य है कि बौद्ध देशोंमें जाकर उनहींके ग्रंथोंसे उनका मांस मछली निषेधका उपदेश देकर इसका प्रचार बन्द करावें। हमने जैन बौद्ध तत्वज्ञान हिन्दीमें और Jainism and Budhism इंग्रेजीमें छपवाई है। इसको पढ़नेसे आपको और भी अधिक, जैन और बौद्धकी साम्यता मालूम पड़ेगी।

शिष्य—कृपा करके अब यह बताइये कि हिन्दू धर्म और जैनधर्ममें क्या सभ्यता है व क्या मतभेद है?

ग्यारहवाँ अध्याय।

भगवद्गीता और जैनधर्म।

शिक्षक—श्रीमद् भगवद्गीता हिन्दू धर्म माननेवालोंका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। गीता प्रेस गोरखपुरसे मुद्रित सटीक पुस्तकको पढ़कर जहां २ जैनधर्मसे साम्यता है व जहां जहां नहीं है सो आपके जाननेके लिये कुछ बताता हूं—

जैनसिद्धांतका यह रहस्य है कि यह जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छ द्रव्योंको सत् मानता है, इन्हींका समुदाय यह जगत भी सत् है। सत् उस ही कहते हैं जिसमें एकसाथ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हो, द्रव्य व गुणोंकी अपेक्षा ध्रौव्य व पर्यायोंके पलटनेकी अपेक्षा उत्पाद व्यय होते हैं।

इसलिये यह जगत नित्य अनित्य उभयरूप है। जीव कर्म पुद्गलोंके अनादि संयोगसे संसारमें भ्रमण कर रहा है। यह जीव अज्ञानसे अपने स्वरूपको भूले हुए भिन्न पर्यायको अपनी ही पर्याय मानकर संसारमें आसक्त हो रहा है।

जब यह जीव इस मिथ्या बुद्धिको त्यागता है और अपनेको पहचानता है कि मैं कर्म-पुद्गलोंसे भिन्न एक शुद्ध ज्ञाता दृष्टा वीतराग पदार्थ हूं—मेरा सच्चा सुख मेरे हीमें है, मैं स्वयं परमात्मा स्वरूप हूं तब इसकी आसक्ति संसारसे दूर होजाती है और यह मोक्षका या अपने स्वरूपका प्रेमालु होजाता है तब पूर्ववत् कर्मोंके उदयके अनुसार यह जिस गतिमें रहता है अनासक्त हुआ रहता है।

पाप व पुण्यका फल ज्ञातादृष्टा होकर भोगता है तब वे कर्म झड़ जाते हैं, नवीन बन्ध नहीं होते हैं। जितना अंश राग होता है उतना अंश कुछ कर्मबन्ध होता भी है परन्तु यह ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव उस कर्मबन्धसे भी आसक्त नहीं होता है।

इसलिये जितना उसका योगाभ्यास या आत्मानुभव बढ़ता जाता है उतना २ अधिक झड़ता है व अल्प कर्म बन्धता है। जबतक गृहस्थमें रहता है वह जलमें कमलवत् अनासक्त रहता हुआ गृहस्थ योग्य सर्व कार्य करता हुआ भी मोक्षमार्गपर ही बढ़ता चला जाता है, क्योंकि उसका प्रेम निज तत्वपर है-पर तत्वसे वैराग्यवान है। उस ज्ञानीका सर्व कर्म निष्काम कर्म कहलाता है। वह परोपकार दान धर्म करता हुआ उससे किसी लौकिक व पारलौकिक फलकी कामना नहीं रखता है। वह तो एक शुद्ध स्वभावका ही प्रेमी रहता है। वह केवल एक स्वतन्त्रता या स्वाधीनताकी ही भावना रखता है। जब उसका राग बहुत क्षीण होजाता है, तब विरक्त साधु होजाता है और परिग्रह त्यागकर आत्मध्यानका विशेष अभ्यास करता है।

जब ऐसा आत्मानुभवरूप समाधिभाव पुष्ट होजाता है कि दुर्वचनोंका सुनना द्वेष नहीं पैदा करता है। शरीरपर वध बन्धनादि व उपसर्ग पडते हुए भी क्रोधभाव नहीं आता है। शरीरके कुचलनेपर भी आत्मस्थ दृढ रहता है, ऐसा समाधिभावमें स्थित मुनि बहुत अधिक कर्मोंको दूर करता है।

वीतरागताका पूर्ण अंश होनेपर नवीन कर्मबन्ध नहीं करता है क्योंकि बन्धका कारण राग, द्वेष, मोह है तब यह जीवन्मुक्त परमात्मा या अर्हन्त होजाता है। फिर शरीरकी आयु-प्रमाण रहकर आयु क्षयके पीछे शुद्ध सिद्ध परमात्मा मोक्षरूप होजाता है, अपनेसे ही अपना उद्धार होजाता है, अपनेसे ही अपना बिगाड होता है। यह जैनसिद्धांतका मर्म है।

गीताके नीचे लिखे श्लोकोंसे जैनधर्मके रहस्यसे साम्यता झलकती है-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥ १६-२॥

भावार्थ—*असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है। सत्का अभाव नहीं* होता है। तत्वज्ञानियोंने इन दोनोंका ही सार जाना है।

नोट—इससे सिद्ध है कि इस जगतमें जो कुछ है वह सत् रूप है, कभी अभाव नहीं था, न कभी होगा। इससे अनादि अनन्त जगत् सिद्ध होता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०-२॥

भावार्थ—यह आत्मा न कभी जन्मा है, न कभी मरा है न यह आत्मा होकरके फिर होनेवाला है; क्योंकि यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है, शरीरके नाश होनेपर भी यह नाश नहीं होता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६-२ ॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७-२ ॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८-२ ॥

भावार्थ—जिसका मन दुःखोंके पड़ने पर घबड़ाता नहीं; सुखोंकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं करता है, जिसने राग, भय व क्रोधको नष्ट कर दिया है वही मुनि स्थिरबुद्धि कहलाता है।

जो सर्वसे स्नेह छोड़कर अच्छी बुरी वस्तुओंको प्राप्त करके न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, उसीके भीतर प्रज्ञा अर्थात् (भेदविज्ञान) स्थिर है। जैसे कछुआ अपने अंगोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी तरह जो अपनी इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके विषयोंसे समेट लेता है उसीकी प्रज्ञा स्थिर है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९-२॥

भावार्थ—जो सर्व प्राणियोंकी रात्रि है उसमें संयमी जागता है अर्थात् शुद्ध आत्मज्ञानमें मग्न रहता है। जिस क्षणिक विषयसुखमें प्राणी जागते हैं उसमें मुनि रात्रिको ही देखते हैं।

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१-२॥

भावार्थ—जो पुरुष सर्व कामनाओंको त्यागकर इच्छारहित, ममतारहित, अहंकाररहित आचरण करता है वही शांतिको पाता है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९–३ ॥

भावार्थ—इसलिये अनासक्त होकर तू निरन्तर कर्तव्यकर्मको कर, क्योंकि जो अनासक्त हो कर्म करता है वह पुरुष परमात्मा पदको पाता है।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४–४ ॥

भावार्थ—मुझे कर्मोंके फलकी इच्छा नहीं है इसलिये मुझे कर्म नहीं लिपते हैं। इस तरह जो आत्माको जानता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता है।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते ॥ २२–४ ॥

भावार्थ—अपने आप जो कुछ प्राप्त हो उसमें ही सन्तुष्ट रहनेवाला हर्ष शोक द्वन्द्वसे रहित, ईर्षारहित, सिद्धि व असिद्धिमें समभाव रखनेवाला पुरुष कर्मोंको करके भी नहीं बन्धता है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ३७–४ ॥

भावार्थ—हे अर्जुन! जैसे जलती हुई आग ईंधनको भस्म कर देती है, वैसे ही आत्मज्ञानकी अग्नि सर्व कर्मोंको भस्म कर देती है।

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९–४ ॥

भावार्थ—श्रद्धावान आत्मज्ञानको पाता है, आत्मज्ञानमें लीन इन्द्रियोंको संयमम रखता है, फिर वही पूर्ण ज्ञानको पाकर परम शांतिको शीघ्र ही पा लेता है।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५–६ ॥

भावार्थ—अपने आत्माका उद्धार अपनेसे करे, अपने आत्माको दुःखित न रक्खे, आत्मा ही आत्माका मित्र है तथा आत्मा ही अपना शत्रु है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १०–६ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२-६ ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३-६ ॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४-६ ॥
युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः ।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५-६ ॥

भावार्थ—योगी मनका विजयी वासनारहित व परिग्रहरहित एकांतमें अकेला ही बैठा हुआ निरन्तर आत्माका ध्यान करे। वहां मनको एकाग्र करके इन्द्रियोंको व मनको वश रखता हुआ आसनपर बैठकर आत्माकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। काय, मस्तक व गलेको समान व निश्चल धारकर, दृढ होकर अपने नाकके अग्रभागको देखता हुआ, अन्य दिशाएं न देखता हुआ—शांतचित्त हो, भयरहित हो, ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित हो, मनको संयम करके आत्मामें उसे जोडकर आत्मामें लीन रक्खे। इस तरह योगी मनको निश्चल रखता हुआ सदा अपने आत्माका ध्यान करे, जिससे वह आत्मामें स्थितिरूप निर्वाणकी उत्कृष्ट शांतिको प्राप्त करेगा।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियं ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१-६ ॥

भावार्थ—जहां वह योगी इन्द्रियोंसे परे ज्ञानगम्य परम सुखको अनुभव करता है, फिर वह निजतत्वमें स्थित हुआ उससे चलायमान नहीं होता है।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१-८ ॥

भावार्थ—जो अप्रगट अविनाशी कही गई है उसे ही परमगति (मोक्ष) कहते हैं। उसे पाकर कोई पीछे नहीं लौटते हैं; वही आत्माका परम धाम है।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनन्तरम् ॥ १२-१२ ॥

भावार्थ—ज्ञानशून्य अभ्याससे ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है। ज्ञानसे आत्मध्यान श्रेष्ठ है, ध्यानसे कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है—त्यागसे तत्काल परमशांति होती है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३-१२ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५-१२ ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६-१२ ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७-१२ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८-१२ ॥

भावार्थ—जो सर्व प्राणियोंपर द्वेषरहित हो, सबसे मैत्रीभाव रक्खे, दयवान हो, ममता व अहंकारसे रहित हो, दुःख व सुखमें समान हो, क्षमावान हो, जिससे किसीको भय न हो व जो स्वयं भी भय रहित हो, जो हर्ष, ईर्षा, भय, उद्वेगसे रहित हो, वही मेरेको प्रिय है अर्थात् वही आत्मप्रमी है। जो इच्छा रहित हो, पवित्र हो, चतुर हो, उदासीन हो, दुःख भावरहित हो, सर्व आरम्भका त्यागी हो, आत्मामें भक्त हो वही आत्मप्रेमी है। जो कभी न हर्ष करता है न द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना करता है, जो शुभ या अशुभ भावोंका या फलोंका त्यागी है वही भक्त है, वही आत्मप्रेमी है। जो शत्रु मित्रमें, मान अपमानमें, शीत व उष्णमें, सुख व दुःखमें समान हो व परिग्रहरहित हो वही आत्मरमी है।

भावार्थ—अहिंसा, सत्य, क्रोधका अभाव, त्याग, शांति, परनिंदाका त्याग, प्राणियोंपर दया, लोलुपताका अभाव, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, वैर रहितपना, अभिमान रहितपना ये सब संपत्तियां पुण्यवान पुरुषके होती हैं।

नोट—ऊपर लिखित जो श्लोक दिये गए हैं उनका सब तात्पर्य

जैन सिद्धान्तसे मिल जाता है। जैन सिद्धांतमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-चारित्रकी एकताको मोक्षमार्ग कहा है, जो निश्चयसे एक आत्मध्यान ही है, जहां आत्मामें परमात्मारूपकी श्रद्धा हो, उसीका ज्ञान हो व उसीमें अन्चरण हो या लीनता हो, इसी मोक्षमार्गके प्रेमीको सम्यग्दृष्टी कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि परम तत्वको जानता हुआ आत्माके अतीन्द्रिय आनन्दका आसक्त होता है। उसकी तृष्णा इन्द्रियोंके नाशवन्त अतृप्तिकारी पराधीन सुखसे छूट जाती है। वह इस लोककी कोई सम्पत्तिको नहीं चाहता है। केवल आत्मानन्दकी भावना करता है, जो उसको आत्मध्यानसे आप ही प्राप्त हो जाती है। ऐसा तत्वज्ञानी गृहस्थमें रहते हुए जो कुछ पूर्व कर्मके उदयसे सुख या दुःख होता है उसमें समान भाव रखता है। क्षणिक सुखके होने पर उन्मत्त नहीं होता है। दुःखोंके पड़ने पर घबराता नहीं। तथा लौकिक व पारलौकिक कार्योंको विना इच्छाके विना बदलेमें उसका फल चाहे हुए करता है। इससे वह तीव्र कर्मोंसे नहीं बन्धता है उसको संसारके भ्रमण करानेवाले कर्मोंका बन्ध नहीं होता है।

जितना अंश रागादिका होता है उतना अंश कर्मका बन्ध होता है। गाढ़ चिक्कण बन्ध नहीं पड़ता है, क्योंकि वह संसारमें अलिप्त है। ऐसे तत्वज्ञानी सम्यक्तीकी क्रियाको निष्काम कर्म कहते हैं। क्योंकि वह फलको नहीं चाहता है। वह भीतरसे सर्व कामनाओंका त्यागी है।

यदि ऐसे सम्यक्तीके पूर्वमें बांधा हुआ मोह कर्म न हो तब तो यह दो घड़ी आत्मध्यानमें परिग्रह रहित व मनको सर्व आरम्भोंसे रोक करके जोड़ दे तो केवलज्ञानको प्राप्त करके जीवन्मुक्त या अरहंत होजावे। परन्तु पूर्वबद्ध मोहके विपाकसे यह पूर्ण वैराग्यवान जबतक नहीं हो पाता है गृहस्थावस्थामें जलमें कमलवत् रहता है।

जब आत्मानुभवके अभ्याससे मोह घट जाता है तब स्वयं साधु हो जाता है। साधुपदमें वह अकर्मण्य नहीं होता है। जिस समय या जितनी देरतक आत्मध्यानमें उपयोग लगाता है, ध्यान करता है। जैन शास्त्रानुसार कोई भी ध्याता एक ध्येय पर ४८ मिनिटसे अधिक नहीं जम सकता है। ध्यान अति सूक्ष्म तत्व है।

यदि कोई साधु ४८ मिनिटके अनुमान जमा रहे तो केवलज्ञान होजावे। शक्तिके अभावसे नहीं जमा सकता है। इसलिये रात दिनमें बहुतसा समय साधुको आत्मानुभवसे बाहर मन, वचन, कायकी क्रियामें विताना पड़ता है। तब ज्ञानी साधुको उचित है कि जगतके उपकारमें मन, वचन, कायको लगाकर सफल करता रहे। कभी भी आलसी न होवे, कर्मयोग व ज्ञानयोग साथ ही चलते है, निर्विकल्प समाधि ज्ञानयोग है, सविकल्प विचार व कार्य कर्मयोग है। एकके पीछे दूसरा हुआ करता है। अन्तमें ज्ञान योगसे मुक्ति होती है। सम्यग्दृष्टि तत्वज्ञानीके भोग कर्मोंके छूटनेके लिये है, ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं—

उवभोजमिंदियेहिय दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं॥ २०२॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु तत्वज्ञानी जो कुछ इन्द्रियोंके द्वारा अचेतन तथा चेतन पदार्थोंका भोग करता है वह सब कर्मोंकी निर्जराके लिये है। (क्योंकि वह उनमें रंजायमान नहीं है। जैसे-रोगी कडवी दवा खाते हुए उसमें रागी नहीं है।)

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणोवि सेवगो कोवि।
पगरणचेट्ठा कस्सवि णयपायरणोत्ति सो होदि॥ २०६॥

भावार्थ—तत्वज्ञानी भीतरमें वैरागी भोगोंका भोगता हुआ भी भोगता नहीं है। अज्ञानी भोगासक्त भोगोंको न भोगते हुए भी भोगनेवाला है। कोई किसीके यहां विवाहादि कामके लिये जाकर काम करता है परन्तु उस कामका स्वामी नहीं होता है, जबकि न काम करनेवाला घरका स्वामी उसमें तीव्र रागी है।

श्री अमृतचन्द्राचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः॥ ३-७॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी ज्ञानी विषयोंको सेवते हुए भी विषयसेवनका फल कर्मबन्धको नहीं पाता है, क्योंकि उसके भीतर ज्ञानकी विभूति है व वैराग्यका बल है, इसलिये वह सेवता हुआ भी नहीं सेवनेवाला है।

जिस आसनसे ध्यान जैन शास्त्रोंमें बताया है वही यहां गीतामें अध्याय ६ में श्लोक १०, १२, १३, १४, १५ से बताया है। इसी ध्यानमई आकारको दिखलानेवाली मूर्ति भी जैन लोग बनाते है व उसके ध्यानकी सिद्धिमें मदद लेते है। ऊपर दिये हुए गीताके श्लोक न० १४।४, २१।४, ३६।४ से यह प्रगट है कि कर्मोंका बन्ध होना है व कर्मोंको भस्म किया जाता है। यहां कर्मसे प्रयोजन वही झलकता है जैसा जैनसिद्धांतने सात तत्वोंमे आस्रव, बन्ध, सवर व निर्जरातत्वमे बताया है।

बन्ध शब्द व भस्म शब्द प्रगट करता है कि कोई सूक्ष्म स्कन्ध हैं जिनके कारण शरीर बनता है, इसीको जैन लोग कार्मण शरीर कहते है। उन सूक्ष्म स्कन्धोंको कार्मण वर्गणाए कहते हैं। हमारे तत्वप्रेमी अजैन बन्धुओंको उचित है कि कर्मबन्धके सिद्धान्तका गहरा विवेचन जैन शास्त्रोंकी सहायतासे जाने।

मुख्य ग्रन्थ श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत श्री गोमटसार कर्मकांड है। इसका हिन्दी व इंग्रेजी दोनोंमे उल्था मिलता है, बहुत उपयोगी है। यदि जैन सिद्धान्तका मनन किया जायगा तो गीताके ऊपर लिखित श्लोकोंका भाव और भी स्पष्ट सत्यखोजीको झलक जायगा।

जैन सिद्धान्त यह मानता है कि परमात्मा शुद्ध कृतकृत्य परमानन्दमय है, वह जगतको न बनाता है और न वह जगतके प्राणियोंको सुख दुःख देता है। जगतमे बहुतसे पदार्थोंकी रचना स्वभावसे हुआ करती है। जैसे—मेघ बनना, पानी बरसना आदि। बहुतसे कार्योंको ससारी प्राणी अपनी इच्छासे प्रयत्न करके करते है।

जैसे—चिडियाका घोसला बनना, मकडीका जाला बनना, कपडा बुनना, मकान बनना आदि। तथा कर्मोंका फल भी स्वभावसे उसी तरह होजाता है जैसे भोजन व औषधि पेटमे जाकर स्वयं रुधिर बनाती है व वीर्यको उत्पन्न करती है, जिसके फलसे हम काम करते है। गीतामे भी इसी तत्वको नीचेके श्लोकोंमें झलकाया है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥ १४-५॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५-५ ॥

भावार्थ—ईश्वर प्रभु लौकिक प्राणियोंके न कर्तापनेको न कर्मोंको न कर्मोंके फलके सयोगको वास्तवमे रचता है, किन्तु स्वभावसे ही प्रवृत्ति होती है। परमात्मा न किसीके पाप कर्मको न किसीके पुण्य कर्मको ग्रहण करता है। अज्ञानसे प्राणियोंका ज्ञान ढका हुआ है इससे जगतके प्राणी मोहित होरहे है।

नोट—यहां भी आवृत शब्द किन्हीं सूक्ष्म स्कन्धोंका बोधक है जो ज्ञानको ढकते है। इसीको जैनसिद्धान्तमे ज्ञानावरण कर्म कहते है।

शिष्य—तब क्या गीतामे जैनसिद्धान्त भरा है?

शिक्षक—जैनसिद्धान्तसे मिलता हुआ कथन तो अवश्य है। हिन्दुओंमे सांख्य सिद्धान्त एक ऐसा दर्शन है, जिसका कथन बहुत अशमें मिल जाता है। सांख्य प्रकृति (जड) और पुरुष (आत्मा) को अनादि मानता है। जैसे जैनसिद्धान्त पुद्गल और जीवको अनादि मानता है। प्रकृति और पुरुषका सयोग ही ससार है। व प्रकृतिका पुरुषसे छूट जाना ही सांख्यमे मोक्ष है। इसी तरह जैनोंमे कर्म-पुद्गलोंका छूट जाना मोक्ष है। गीतामे बहुतसा कथन सांख्यदर्शनके अनुसार है। जैसा नीचेके श्लोकोंमे झलकता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७-३ ॥

भावार्थ—सर्व कर्म प्रकृतिके गुणों द्वारा किये हुए हैं। तौभी अहंकारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष मै कर्ता हू ऐसा मान लेता है।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५-५ ॥

भावार्थ—जो स्थान सांख्योंके द्वारा प्राप्त किया जाता है वही योगोंके द्वारा प्राप्त किया जाता है, इसलिये जो सांख्य और योगको एक समझता है वही यथार्थ देखता है। यहां ग्रन्थकारने सांख्यको निष्काम कर्मयोग व योगको ज्ञानयोग कहा है।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३-७ ॥

भावार्थ—सात्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारके भावोंसे अर्थात् रागद्वेष विकारोंसे यह सब जगत मोहित होरहा है, इसलिये इन तीनोंसे परे अविनाशी आत्माको नहीं जानता है।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ २०-१३ ॥

भावार्थ—प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अनादि जान रागादि विकारोंको व सत्व, रज, तम गुणोंको प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुआ जान।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २१-१३ ॥

भावार्थ—कार्य कारणके उत्पन्न करनेमे हेतु प्रकृति कही गई है। जीव सुख दुःखोंके भोगनेमें हेतु कहा जाता है।

शिष्य—जैन दर्शन और सांख्य दर्शनमें अंतर क्या है?

शिक्षक—सूक्ष्म अन्तर यह है कि जैनदर्शनमें आत्माको परिणमनशील माना है, क्योंकि वह द्रव्य है। जो २ द्रव्य होता है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होता है, उसमे पर्यायें होती हैं इसलिये परिणमनशील है। जब एक पर्याय उत्पन्न होती है पुरानी पर्यायका व्यय होता है तथापि आत्मद्रव्य वही है। मोहनीय कर्मके निमित्तसे आत्मा रागद्वेष भावोंमे परिणमन कर जाता है, उस समय उसमे शांत व वीतराग भाव नहीं होता है। रागद्वेष भाव नाश होता है तब वीतराग भाव पैदा होता है। सांख्य सिद्धान्तमें पुरुष या आत्माको अपरिणामी तथा अकर्ता माना है। सर्व कार्यमे प्रकृतिको ही कर्ता माना है।

"पुरुषस्यापरिणामित्वात्" (१८ पाद ४ योगदर्शन पातंजल १९०७ में छपा) अर्थात् आत्मा परिणमन रहित है "अकर्तुरपि फलोपभोगो अन्नादिवत्" (सांख्य दर्शन छपा सं० १९५७) अर्थात् अकर्ता पुरुष है तोभी फल भोगता है। जैसे किसान अन्न पैदा करता है, राजा भोगता है। जैनसिद्धान्त कहता है कि यदि द्रव्य दृष्टिसे वस्तुके स्वभावकी अपेक्षा

विचार करो तो यह आत्मा नित्य अपने स्वभावमें रहनेवाला, न रागद्वेषका कर्ता है और न सुख दुखका भोक्ता है। परन्तु जब कर्म संयोगकी अपेक्षा विचार किया जायगा तब जैसे यह रागद्वेषादि भावोंका कर्ता है वैसे मैं सुखी, मैं दुःखी इन भावोंका भोक्ता भी है। कर्मका फल भोगे और, कर्ता कोई और हो यह नहीं बन सकता है। किसान खेती करके उसका फल भोगता है। राजा प्रजाकी रक्षा करता है। इसलिये किसान द्वारा दिया हुआ कर लेकर उसे भोगता है। जिस दृष्टिसे भोक्ता है उस दृष्टिसे कर्ता भी है। जिस दृष्टिसे अकर्ता है उस दृष्टिसे अभोक्ता भी है। यदि पुरुषके परिणमन न माना जावे तो वह समागम मोही हो ही नहीं सकता है। परिणमन माननेसे ही संसार और मोक्ष दोनों बन सकते है। अकेली जड़ प्रकृतिमें ज्ञानमई रागादि नहीं हो सकते है। जब मोह कर्मका विपाक होता है, तब आत्माका चारित्रभाव ढक जाता है व रागद्वेष भाव होजाता है।

जैसे स्फटिकमणिमें लाल रंगकी उपाधि लगनेपर स्फटिकमणिका निर्मलपना ढक जाता है लालपना प्रगट होजाता है-स्फटिकके बिना केवल लाल रंगके, क्रांतिका होना असम्भव है, इसी तरह पुरुषके बिना केवल प्रकृतिके रागद्वेष होना असम्भव है। प्रकृतिके संयोगवश आत्माके ज्ञानमें विकार होते है। यदि पुरुष या आत्माको परिणाम रहित मानगे तो वह सदा एकरूप ही रहना चाहिये। सो ऐसा प्रत्यक्ष नहीं दीखता। जीवकी अवस्था एकरूप नहीं दीखती। कभी क्रोधी होना है, कभी शांत होता है। दोनों बातें एक साथ पुरुषमें नहीं दीखती हैं। क्योंकि यह ज्ञानकी एक पर्याय है। अवस्था एक प्रकारकी एक समय रहती है। जब यह अवस्था मिटती है, तब दूसरी पैदा होती है। इसीलिये जैनसिद्धांतने आत्मा व पुद्गल प्रकृति सबको नित्य व अनित्य उभयरूप माना है, द्रव्य अपेक्षा नित्य है, पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है। सर्वथा नित्य माननेसे क्या दोष आयगा उसे श्री समन्तभद्राचार्यने आप्तमीमांसामें कहा है—

नित्यत्वैकांतपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलं ॥ ३७ ॥

भावार्थ—पदार्थको यदि एक ही अपेक्षासे नित्य ही माना जावेगा

तो उसमें कोई विकार या परिणाम या अवस्थाएँ नहीं हो सकती है। जब कर्ता, कर्म, करण आदि कारक न होंगे तब न उसमें मिथ्याज्ञान हटकर यथार्थ ज्ञान होगा और न उसके ज्ञानका फल होगा कि यह त्याग करो व यह ग्रहण करो। अनेकांतमय स्वभाव वस्तुका माननेवाला जैनदर्शन है। एक ही अपेक्षा जीवको अकर्ता माननेसे उसके संसारका अभाव आता है। व्यवहारकी अपेक्षा कर्ता है, निश्चयकी अपेक्षा अकर्ता है, इसी सूक्ष्म अन्तरसे जैनदर्शन व सांख्य दर्शनका मतभेद है। वैसे बहुत अंशमें एकता है।

शिष्य—क्या गीतामें कोई और दर्शन भी झलकता है ?

शिक्षक—गीताके नीचे लिखे श्लोकोंसे वेदांत दर्शन भी झलकता है जिसका यह सिद्धांत प्रगट है कि यह दृश्य जगत व दर्शक दोनों एक है। ब्रह्मरूप जगत है, ब्रह्म हीमें पैदा हुआ है, ब्रह्म हीमें लय हो जायगा। (वेदांतदर्पण व्यासकृत स० १९५९) ब्रह्मका लक्षण है—"जन्माद्यस्य अत इति" (सूत्र १ अ० ८) अर्थात् जन्म, स्थिति, नाश उससे होता है।

"आकाशस्तल्लिंगात्" (सूत्र २२ अ० २)—आकाश भी ब्रह्म है, ब्रह्मका चिह्न होनेसे।

"कार्योपाधिरयं जीव. कारणोपाधिरीश्वरः" (वेदांत परिभाषा परि० ७)—यह जीव कार्यरूप उपाधि है, कारणरूप उपाधि ईश्वर है। वेदांतका सिद्धांत यही प्रगट है कि यहां एक ब्रह्मकी ही वास्तविक सत्ता है। यह जगत् ब्रह्मका ही विकाश है—वही सब कुछ है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६-४ ॥

भावार्थ—मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा होनेपर भी तथा सर्व भूत प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको आधीन करके अपनी मायामें प्रगट होता हूं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७-४ ॥

भावार्थ—जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने रूपको रचता हू–प्रगट करता हू ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८-४ ॥

भावार्थ—साधुओंकी रक्षाके लिये, द्रव्योंके नाशके लिये व धर्मके स्थापनके लिये मै युग युगमे प्रगट होता हू।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहं ॥ ७-९ ॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८-९ ॥

भावार्थ—हे अर्जुन ! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिको प्राप्त होजाते हैं । और कल्पकी आदिमे उनको मै फिर रचता हू । अपनी प्रकृतिको अंगीकार करके मै परतन्त्र इस सर्व प्राणी समुदायको वारवार उनकी प्रकृतिके अनुसार रचता हू ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूत चराचरम् ॥ ३९-१० ॥

भावार्थ—हे अर्जुन ! जो सर्वभूतोंकी उत्पत्तिका कारण है वह भी मैं ही हू । क्योंकि ऐसा वह चर व अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरेसे रहित होवे । इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ ४६-१८ ॥

भावार्थ—जिससे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत व्याप्त है उस परमेश्वरको अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होता है ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१-१८ ॥

भावार्थ—शरीररूपी यन्त्रमें आरूढ हुए सर्व प्राणियोंको ईश्वर अपनी मायासे भ्रमाता हुआ सर्व भूत प्राणियोंके हृदयस्थानमें विराजित है ।

शिष्य—सांख्य और वेदांतमे अन्तर मालूम पड़ता है। सांख्य तो ईश्वर कर्ता व फलदाता नहीं मानता है। वेदांत तो ईश्वरको ही कर्ता मानता है व जगतको ईश्वररूप ही मानता है। ऐसे दो सिद्धान्त एक पुस्तकमे क्यों?

शिक्षक—वक्ताकी इच्छा अनुसार दो प्रकारके सिद्धांतोंसे ही ईश्वरको बताया गया है। जिसको जो रुचे सो माने। जैन वेदांतका इस सम्बन्धमे बहुत अन्तर है क्योंकि जैन द्वैत सिद्धांत है। छ द्रव्योंकी मूल सत्ता मानता है जब कि वेदांत एक ब्रह्मको ही मानता है। वेदांतकी अपेक्षा सांख्यसे जैन दर्शनका साम्य अधिक है।

शिष्य—क्या कोई अपेक्षा है जिससे वेदांतका और जैनका साम्य हो सकता है?

शिक्षक—शुद्ध निश्चयनयसे सर्व जीव एक जातिमय शुद्ध है। तथा सर्व लोक जीवोंसे व्याप्त है, इस अपेक्षा यह विश्व जीवरूप है या ब्रह्मरूप है। एक तत्वज्ञानी अपनी दृष्टि सर्व अजीवोंसे हटाकर समताभाव लानेके लिये एक ब्रह्ममय जगतको अनुभव करता है तब उसे एक ब्रह्म ही दिखता है। अथवा जब ध्याता ध्यानमे लीन होकर आत्मानुभवमें जम जाता है तब वहा उसके अनुभवमे कोई तर्क वितर्क विचारोंकी तरंगे नहीं होती है, एक अद्वैत आत्मभाव ही स्वादमे आता है। ध्याताकी अपेक्षा मानो सिवाय एक अद्वैतके और कुछ है ही नहीं ऐसा झलकता है। यदि वेदांतके अद्वैत सिद्धांतका यह भाव हो जो जैन सिद्धातसे एकता होजाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पदार्थोंकी सत्ता ही मिट जाती है, पदार्थ रहते हैं, जड़ व अन्य चेतन पदार्थ रहते है परन्तु ध्याताके स्वानुभवमे एक आत्मीक आनन्दके स्वादके और कुछ नहीं भास रहा है। यदि वेदांतका यह मत हो कि विश्वमे और पदार्थकी सत्ता ही नहीं है, सत्ता मानना ही भ्रम है, केवल एक ब्रह्मकी ही सत्ता है वही विश्वरूप होता है, वही विश्वरूप समेट लेता है, वही नाना अवतार धारण करता है, उसीकी सब माया है तौ तो जैन सिद्धांतसे अन्तर पड़ता है। क्योंकि जैन दर्शन छः द्रव्योंकी व उनमें भी अनन्तानन्त आत्माओंकी व पुद्गलोंकी

सत्ता सदा मानता है। मोक्ष प्राप्त आत्माएं भी भिन्न सत्ताको रखती हुई स्वात्मानंदमें मगन रहती हैं। स्वात्मानुभवीकी अपेक्षा एक अद्वैतभाव ही स्वानुभवमें झलकता है ऐसा श्री अमृतचन्द्र आचार्यने समयसार कलशमें कहा है.—

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं।
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रं॥
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥ ९-१॥

भावार्थ—जब स्वात्मानुभव प्रकाशमान होता है जो अनुभव सर्व नयोंका मन्द करनेवाला है तब नयोंकी या अपेक्षाओंकी लक्ष्मी उदय नहीं होती है। प्रमाण प्रमेय प्रमितिका विचार नहीं आता है। नाम स्थापनादि निक्षेप मालूम नहीं कहां विलय होजाता है और अधिक क्या कहें, जहां कोई द्वैत ही नहीं भासता है। एक अद्वैत आत्मरस ही स्वादमें आता है।

जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्त्रिलोकी-
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः।
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः॥ २२-१७॥

भावार्थ—स्वानुभवके समय सहज आत्मतेजके पुंजमें मानों तीन लोक डूब गये हैं, सर्व विकल्प दूर होगये हैं, एक ही स्वरूप झलक रहा है। आत्मिक रसके विस्तारके पूर्ण अखण्ड तत्त्वका लाभ होगया है। यहां अत्यन्त निश्चल आत्मज्योतिका ही चमत्कार होरहा है। यही वेदांत है, ज्ञानका अन्त है, ज्ञानका सार है। जहां आपको आपका ही स्वाद आवे वही सिद्धांतका सार है। जैनधर्मका यह विवेचन स्वानुभवकी दशाका है। यदि वही ध्याता ध्यानसे हटे व विचारोंमें लग जावे तो उसे फिर यह छहों द्रव्य भेद प्रभेद सब दिखलाई पड़ेंगे। फिर जब वह स्वानुभवमें लय होगा, एक अद्वैत आत्मरसका ही पान करेगा।

बारहवां अध्याय।

जैनधर्म और हिन्दू दर्शन।

शिष्य - हिन्दुओंके मुख्य २ दर्शनोंका और जैनदर्शनका क्या साम्य है व क्या असाम्य है थोडासा बता दीजिये जिससे मुझे मुकाबला करनेपर सुभीता हो।

शिक्षक—यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो मै संक्षेपसे बताता हूं और इस विवेचनमें डाक्टर शिवाजी गणेश पटवर्धन एम० बी० (हामियो) अमरावती (बरार) लिखित हिंदूधर्म मीमांसा (छपी सन् १९२४) पुस्तकका सहारा लेकर कुछ कहता है—

(१) **न्यायदर्शन—**

न्यायदर्शनके प्रवर्तक गौतम ऋषि है। इनका यह मत है कि संसार दुःखमय है। इससे छूटनेका उपाय तत्वज्ञान है। जब रागद्वेष, मोह नष्ट होजावेंगे तब मोक्ष होजायगी। कहा है—"दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानां उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग।" (न्या० सू० १-१-२१)। इसकी व्याख्या यह है कि जब तत्वज्ञानसे मिथ्याज्ञान चला जाता है तब दोष मिट जाते है, फिर प्रवृत्ति मिटती है उससे जन्म मिटता है, फिर दुःखोंका क्षय होनेसे मोक्ष होजाती है। बारह प्रकारके पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

(१) आत्मा, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) इन्द्रियोंके विषय, (५) बुद्धि, (६) मन, (७) प्रवृत्ति, (८) दोष (राग द्वेष मोह), (९) पुनर्जन्म, (१०) कर्मफल, (११) दुःख, (१२) अपवर्ग या मोक्ष, ये सब बातें जैन दर्शनसे बहुत अंशमें मिल जाती हैं। अन्तर यह है कि यह दर्शन एक ईश्वरको जगतका कर्ता और फलदाता मानता है। जगतका उपादान कारण परमाणु या प्रकृतिको मानकर निमित्त कारण ईश्वर है ऐसा मानता है। कहा है:—

"ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्" (न्या० सू० ४–१–१९)

भावार्थ—ईश्वर पुरुषोंके कर्मोंके फल देनेमें कारण है, नहीं तो फल न हो। और भी कहा है—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ ६ ॥

भावार्थ—यह जन्तु अज्ञानी है, इसका सुख दुःख स्वाधीनता रहित है। ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग या नर्कमें जाता है। जैन दर्शनमें जब मुक्तात्मा स्वाधीन होजाता है तब नैयायिक दर्शनमें एक परमात्माके आधीन रहते हैं। जैसा कहा है—

मुक्तात्मनां विद्येश्वरादीनां च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वरपारतन्त्र्यात् स्वातन्त्र्य नास्ति। (सर्वदर्शनसंग्रह पृ० १३४–१३५)

भावार्थ—मुक्ति प्राप्त जीव विद्याके ईश्वर शिवरूप हैं तथापि परमेश्वरके वश हैं, वे स्वतंत्र हैं।

जैन दर्शन आत्माको द्रव्य अपेक्षा नित्य व पर्यायकी अपेक्षा अनित्य, तथा लोकाकाश व्यापी होके भी शरीर प्रमाण मानता है तब नैयायिक आत्माको नित्य व सर्वव्यापक मानते हैं। कहा है—

अनवच्छिन्नसद्‌भावं वस्तु यद्देशकालतः ।
तन्नित्यं विभु चेच्छन्तीत्यात्मानो विभुनित्यतेति ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह पृ० १३९)

भावार्थ—किसी देश व कालमें आत्मा निरोध रूप नहीं है। आत्मा व्यापक है और नित्य है।

(२) वैशेषिक दर्शन—

वैशेषिक दर्शन सूत्र है। इसके कर्ता महर्षि कणाद होगए हैं। यह दर्शन भी संसारको दुःखमय मानता है और मोक्षकी प्राप्ति तत्वज्ञानसे कहता है। इस दर्शनमें द्रव्य नौ माने हैं—

(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु, (५) आकाश, (६) काल, (७) दिशा, (८) आत्मा, (९) मन।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनके परमाणु भिन्न २ होते हैं। इसलिये ये चारों परमाणुओंकी अपेक्षा नित्य हैं परन्तु स्कन्धके बननेकी अपेक्षा अनित्य हैं। शेष पांच द्रव्य भी नित्य हैं, मनको अणु मानता है। आत्मा व्यापक है परन्तु अनेक है। हर शरीरमें भिन्न २ आत्मा है। आत्मा ज्ञानका आश्रय है। जैनदर्शनमें पृथ्वी आदिके भिन्न २ परमाणु नहीं माने गए हैं। किंतु एक पुद्गल द्रव्य परमाणु रूप माना गया है, उन परमाणुओंके मिलनेसे व नानाप्रकार परिणमन होनेसे पृथ्वी जल आदिके स्कन्ध बनते हैं।

न्यायदर्शनकी तरह यह भी ईश्वरको जगतके बननेमें निमित्त कारण व कर्मके फलका दाता मानता है। यद्यपि न्याय व वैशेषिक दोनों जैन-दर्शनके समान यह मानते हैं कि यह आत्मा स्वयं अपने तत्वज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है तथापि ईश्वरके समान स्वतन्त्र नहीं होता है।

(३) सांख्य दर्शन—

गीताके अध्यायमें कुछ वर्णन सांख्यका आगया है तथापि कुछ विशेष जाननेके लिये कहा जाता है कि सांख्यदर्शनके प्रवर्तक महर्षि कपिल होगए हैं। सांख्य सूत्रमें विदित है "ज्ञानान्मुक्ति" ज्ञानसे मुक्ति होती है (सांख्यसूत्र ३-२३) प्रकृति और पुरुषका भेद ज्ञान ही मुक्तिका कारण है। जैन सिद्धांतमें भी कहा है कि जीव और अजीवका भेद ज्ञान ही मोक्षका कारण है।

सांख्यकारिकामें कहा है—

"एवं तत्वाभ्यासान्नाऽस्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्। अविपर्याद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥

भावार्थ—पुरुष प्रकृतिसे भिन्न ऐसे तत्वके अभ्यास करनेसे निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है कि मैं प्रकृति नहीं हूं न प्रकृति मेरी है, न प्रकृति मुझ रूप है, मैं प्रकृतिसे बिलकुल अलग निष्क्रिय ज्ञान रूप हूं।

सांख्यदर्शनमें नीचे लिखे २५ तत्व माने गए हैं—

"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान्, ततो अहंकारः

अहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।" (सांख्य सूत्र १-६१)

भावार्थ—(१) सत्व, रजस और तमोगुणकी साम्यावस्था रूप मूल प्रकृति, (२) उससे उत्पन्न महान तत्व, (३) उससे उत्पन्न अहंकार, (४) अहंकारसे उत्पन्न पांच तन्मात्रा और ग्यारह इंद्रियां—१६ (५) पांच तन्मात्रासे उत्पन्न पंचमहाभूत, (६) पुरुष=२५ तत्व।

पांच तन्मात्रा-शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श।

ग्यारह इंद्रियां-स्पर्शनादि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेंद्रिय जैसे हाथ, पांव, वाक्, लिंग, गुदा।

पंचमहाभूत-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।

मूल प्रकृतिका लक्षण नीचे प्रकार है—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा च नित्यं रसगंधवर्जितम्।
अनादिमध्यं महतः परं ध्रुवं प्रधानमेतत् प्रवदन्ति सूरयः॥

भावार्थ—प्रकृति शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, अविनाशी तथा नित्य, रस रहित, गन्ध रहित, अनादि, मध्य रहित, महान तत्वसे परे, ध्रुव, इसीसे आचार्य प्रधान कहते हैं।

जैनियोंके माने हुये पुद्गल द्रव्यसे प्रकृतिका मिलान नहीं होता है। पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णमय है। प्रकृति इन गुणोंसे रहित है तो भी प्रकृतिसे स्पर्शादि व पृथ्वी आदि बन जाते हैं, यही बात एक जैनदर्शनके ज्ञाताके समझमें नहीं आती है, क्योंकि उपादान कारणके समान कार्य होता है। जब उपादान या मूल कारणमें स्पर्शादि गुण नहीं तब उससे स्पर्शादि गुणवाली वस्तु कैसे उपजेगी? विद्वानोंके लिये विचारने योग्य है।

पुरुषका लक्षण है—

पुरुषोऽनादिः सूक्ष्मः सर्वगतश्चेतनोऽगुणो।
द्रष्टा भोक्ता अकर्ता क्षेत्रविदमलोऽप्रसवधर्मीति॥

भावार्थ—पुरुष अनादि है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, चेतन है, सत्व रजादि गुणोंसे रहित है, देखनेवाला है, भोगनेवाला है, कर्ता नहीं है,

क्षेत्रका ज्ञाता है, निर्मल है, असंग है अर्थात् पुरुष कूटस्थ, केवल सुख-दुःखसे अतीत, नित्य, मुक्त और असंग है।

जैनदर्शनसे जीवका शुद्ध स्वरूप तो बहुत अंशसे मिल जाता है परन्तु पुरुष कूटस्थ व अकर्ता होनेसे उसका संसारी व रागी, द्वेषी होना नहीं बन सकता है। न वह सांसारिक दुःख सुखका भोक्ता हो सकता है, यह अन्तर पडता है।

जैनोंके समान सांख्य भी पुरुषोंको अनेक मानते हैं।

"पुरुषबहुत्वम् अवस्थात्" (सांख्य सूत्र ६–४५)

भावार्थ—पुरुष बहुत न माननेसे जन्म आदिकी अवस्था नहीं बन सकती है।

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत् प्रवृत्तेश्च ।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्च ॥

(सांख्यकारिका १८)

भावार्थ—सब जीवोंकी एक ही साथ जन्म, मरण, या इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं दिखलाई पडती है। एकमें एक गुण प्रबल है, दूसरेमें उसका विपरीतपना है, इसलिये पुरुष अनेक हैं।

सांख्यवादी ईश्वरको मानते ही नहीं हैं। सांख्य प्रवचन सूत्रमें साफ २ ईश्वरका प्रतिषेध किया है। यहां यही भाव है कि वे ईश्वरको कर्मकर्ता व फलदाता नहीं मानते हैं, मुक्त पुरुषको ही ईश्वर स्वरूप मानते हैं जैसे जैन लोग मानते हैं। भगवद्गीता १८ वें अध्यायसे प्रगट है कि सत्वगुण सहित होना राग, द्वेष रहित, विचारशील ज्ञानी होना है। रजोगुण सहित संसारमें लीन भाव है परन्तु अन्यायी नहीं है। तमोगुण सहित हिंसक है। तीनोंके लक्षण ये हैं—

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥ २३ ॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो कर्म नियमित, ममता रहित, राग द्वेष रहित, फलकी इच्छा बिना किया जावे वह सात्विक कर्म कहा जाता है। जो कर्म इच्छा-पूर्वक, अहंकारके साथ बहुत परिश्रमसे किया जाता है वह राजस कर्म कहाता है। जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर मोहवश किया जाता है वह तामस कहाता है।

नोट—जैनदर्शनकी अपेक्षा एक सम्यक्दृष्टि गृहस्थ या साधुका भाव सात्विक है। सरल परिणामी मिथ्यात्वीका भाव राजस है। कठोर परिणामी मिथ्यात्वीका भाव तामस है। केवल प्रकृतिका ही तीन रूप परिणमन होता है। जीव कूटस्थ नित्य अक्रिय रहता है यह बात जैन दर्शनसे नहीं मिलती है। शुद्ध निश्चयनयसे जीवका स्वरूप एकसा रहता है परन्तु व्यवहार नयसे जब कर्मोंका सम्बन्ध है तब जीव ही ज्ञानरूप व अज्ञानरूप, वीतराग रूप व रागद्वेषरूप परिणमन करता है। चेतना रहित केवल जड़में ये बात नहीं होसकती है।

(४) योगदर्शन—

योगदर्शनके प्रणेता महर्षि पातंजलि हो गये हैं। यह सांख्यदर्शनसे मिलता है। सांख्यके समान यह दर्शन भी २५ तत्व मानता है, केवल एक तत्व और मानता है वह तत्व है—एक पुरुषविशेष अर्थात् ईश्वर।

ईश्वरका स्वरूप है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-विशेष ईश्वरः। तत्र निरतिशय सर्वज्ञ-बीजम्। स एव पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्।

(१। २४–२६ योगसूत्र।)

भावार्थ—जो पुरुष-विशेष क्लेश, कर्मविपाक और आशयके सम्पर्कसे शून्य है वह ईश्वर है। वह परम अतिशयरूप सर्वज्ञ है। वही सर्व ब्रह्मा आदिका गुरु है, सदा काल रहता है। मोक्षका उपाय योग-साधन बताया है। उसके आठ अंग हैं—

" यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। "
(२-२९)।

(१) यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्याग।

(२) नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर ध्यान।

(३) आसन—पद्मासन, वीरासन आदि ८४ आसन, जिससे शरीर स्थिर रहे, कोई भी आसन।

(४) प्राणायाम—श्वासके रोकनेका विधान।

(५) प्रत्याहार—इंद्रियोंका निरोध करना।

(६) धारणा—एक जगह मनको रोकना।

(७) ध्यान—चित्त निरोधका प्रवाह होना।

(८) समाधि—ध्यान पककर जब ध्येयके साथ तन्मय हो जावे। कहा है—' तदेवार्थनिर्भासस्वरूपशून्यमिव समाधिः। ' (३-३)

भावार्थ—जहां आत्मा पदार्थका ही अनुभव हो, स्वरूपमें शून्य हो वही समाधि है। निर्विकल्प भावको समाधि कहते हैं। यही मोक्षमार्ग है। इसीसे केवलज्ञान होकर मुक्ति होती है। कहा है—

" तस्मिन्निवृत्तेः पुरुष स्वरूपप्रतिष्ठः अतः शुद्धो मुक्त इत्युच्यते (१-५) उस समाधिकी पूर्णतापर आत्मा अपने स्वरूपमें तिष्ठता हुआ शुद्ध या मुक्त कहाता है।

योगसाधनका विषय जैन सिद्धान्तसे बहुत कुछ मिल जाता है—

(५) पूर्व (कर्म) मीमांसा दर्शन—

इस दर्शनके प्रवर्तक महर्षि जैमिनि होगए हैं।

इस दर्शनका ध्येय स्वर्ग प्राप्ति है। इसका साधन यज्ञ करना है। स्वर्ग सुखका लक्षण बताया है—

यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम्॥

भावार्थ—जिस सुखके साथ दुःख नहीं मिला है, जिसके अन्तमें दुःख नहीं है, जो इच्छासे उसे प्राप्त होता है वही सुख स्वर्गमें मिलता है। ' स्वर्गकामो यजते ' स्वर्गका इच्छुक यज्ञमें होम करता है। इसमें क्रियाकांड तथा पूजाकी ही मुख्यता है।

यह दर्शन सांख्यकी तरह किसी पुरुष-विशेषको ईश्वर नहीं मानता है। वेदको ही नित्य और अभ्रान्त मानता है। वेद ईश्वर वाक्य है ऐसा स्वीकार नहीं करता है। जगतका कोई बनानेवाला व रक्षा करनेवाला नहीं मानता है। उसके मतमे जीव अपने कर्मोके अनुसार फल भोगता है, उसमें ईश्वरका कोई सम्पर्क नहीं है। यज्ञयागादि कर्म ही सब कुछ है। किन्हींके मतमे पशुबलि करना, पशुओंको यज्ञमे होमना, ऐसा मत इस दर्शनका है। वे अश्वमेध यज्ञ, अजमेध यज्ञ आदिसे स्वर्गफल बताते हैं। भारतमे कभी ऐसे यज्ञोंका बहुत प्रचार था।

श्री महावीर भगवान व गौतमबुद्धके समय इन यज्ञोंके प्रचारको इन महान आत्माओंने अपने उपदेशसे बंद कराया। यदि पूजा पाठ भक्तिमे गृहस्थ लोग मनके आलम्बनको अन्नादि योग्य पदार्थोसे काम ले व शुद्धात्मा पर लक्ष देकर क्रिया करे तो जीव पुन्य बांधकर स्वर्ग जाते है, यह मत जैन दर्शनका भी है, परन्तु स्वर्ग अन्तिम ध्येय नहीं है, अन्तिम ध्येय मुक्ति है।

(६) उत्तर मीमांसा वेदांत दर्शन—

वेदांतदर्शनके प्रवर्तक महर्षि बादरायण हो गये हैं, ब्रह्मसूत्रमे इसका वर्णन है। इसके चार मुख्य भेद है—

(१) अद्वैत, (२) शुद्धाद्वैत, (३) विशिष्टाद्वैत, (४) द्वैत।

(६-१) अद्वैत दर्शन।

अद्वैत दर्शनके प्रधान आचार्य श्री शंकराचार्य होगए है। यह दर्शन केवल एक ब्रह्मको ही सत्य मानता है, ब्रह्मके सिवाय और सब मिथ्या है। जीवको ब्रह्मसे अलग नहीं मानता है।

"जीवो ब्रह्मैव नापर, नित्य शुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभाव प्रत्यक् चैतन्यमेव आत्मतत्वम्" (वेदांतसार)।

भावार्थ—जीव ब्रह्म ही है। दूसरा नहीं। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वभावी, वीतराग, चैतन्यरूप ही आत्मतत्व है।

ब्रह्मस्वरूपी जीव मायाके साथ होकर संसारी जीव नाम पाता है—

माहेश्वरी तु या माया तस्या निर्माणशक्तिवत्।
विद्यते मोहशक्तिश्च तं जीवं मोहयत्यसौ॥
मोहादनीशतां प्राप्य मग्नो वपुषि शोचति॥ (पञ्चदशी)।

भावार्थ—महेश्वरकी जो माया है उसमें निर्माण होनेकी शक्ति है। उसमें मोह शक्ति होती है। वह जीवको मोहित कर लेती है। मोहसे जीव ईश्वरताको भूलकर शरीरमें मग्न हो शोच करता रहता है।

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा॥
(मांडूक्यकारिका १-१६)।

भावार्थ—अनादि मायाके कारण सोया हुआ जीव जब जागता है तब वह जानता है कि वह स्वयं ही जन्म रहित, निद्रा रहित, स्वप्न रहित एक अद्वैत ब्रह्म वस्तु है।

मायाको भी यह दर्शन ब्रह्मकी शक्ति मानता है। कहा है—

"शक्तिशक्तिमतोरभेदात्" माया और ब्रह्म अभिन्न है। क्योंकि माया ब्रह्मकी ही शक्ति है।

भ्रमसे जगत नानारूप दीखता है, संसार भ्रम मात्र है। केवल एक ब्रह्म ही ब्रह्म है।

जैन दर्शन द्वैत सिद्धान्त है. इस अद्वैतसे नहीं मिलता है। शुद्ध ब्रह्मसे माया कैसे होती है व वही क्यों मायासे मिलकर जीव हो जाता है। और संसारमें कष्ट भोगता है, ब्रह्मका संसाररूप होना भी शुद्ध ब्रह्मके लिये शोभनीक नहीं होता है, ऐसी शंकाएं एक जैन दर्शनको माननेवालेके चित्तमें पैदा होती है।

जैसा पहले द्वैतके अध्यायमें कहा जाचुका है कि यदि स्वानुभवके समयकी अपेक्षा अद्वैतभाव लिया जावे तो जैन दर्शनसे अद्वैत मिल जाता है। परन्तु सत् पदार्थकी अपेक्षा नहीं मिलती है, क्योंकि जैन दर्शन छःद्रव्य सत् मानता है। जीवोंको भिन्न २ सत्तावान अनेक मानता है। परमाणुओंको अनेक भेदरूप मानता है।

(६-२) विशिष्टाद्वैत—

इस विशिष्टाद्वैतके प्रधान आचार्य रामानुजाचार्य हो गए हैं। इस दर्शनने ब्रह्मका स्वरूप माना है—

वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुत।
भुवनानामुपादानं कर्ता जीव नियामकः॥

भावार्थ—कल्याण गुणसे युक्त वासुदेव ही परब्रह्म है, वह ही सब भुवनोंम उपादानकर्ता है और जीवोंके नियामक हैं।

उसीसे सृष्टि, स्थिति व प्रलय होती है। इस दर्शनके मतमे यद्यपि ईश्वर, जीव, अजीव ये तीन पदार्थ है तथापि जीव व जड ईश्वराधीन हैं। ईश्वर ही भोक्ता और भोग्य (जीव और जड) दोनोंमे अन्तर्यामी रूपसे विराज रह हैं।

तदेतत कार्यावस्थस्य च कारणावस्थस्य च चिदचित।
वस्तुनः सकलस्य स्थूलस्य सूक्ष्मस्य च परब्रह्मशरीरत्वम॥

(२-१-१५) भाष्य।

भावार्थ—कार्यावस्थापन्न, कारणावस्थापन्न, चित् अचित्, स्थूल, सूक्ष्म सभी वस्तुए परब्रह्मके शरीर है।

यह जीव परमात्माकी भक्तिसे व अपनेको ईश्वरार्पण कर देनेसे मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर परब्रह्मके साथ मिलता नहीं है। यद्यपि उसके गुण ब्रह्मके समान होजाते हैं। लिखा है—

एव गुणा समाना. स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च सर्वकर्तृत्वमेवक देवे विशिष्यते—जगद् व्यापारवर्जनम्। (सूत्र ४-४-१७)।

भावार्थ—मुक्त पुरुषोंके गुण सब ईश्वरके समान होजाते है। परन्तु सर्वका कर्तापना गुण ईश्वरमे ही रहता है, यही विशेषता है। मुक्तात्माओंका सम्बन्ध जगत्के व्यापारसे नहीं रहता है।

नोट—जैनदर्शन यही शंका करता है कि शुद्धब्रह्म जड व अशुद्ध जीवोंका उपादान कर्ता किस तरह होगा? तथा निर्विकार ब्रह्ममे कर्तापनेका भाव भी कैसे होगा? विद्वानोंके लिये विचारणीय है।

(६-३) शुद्धाद्वैत—

इस दर्शनके प्रधान आचार्य श्री वल्लभाचार्य होगए हैं।
इस दर्शनमे ब्रह्मका स्वरुप माया रहित माना है।

"मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धब्रह्म न मायिकम् ॥"

भावार्थ—मायाके सम्बन्धसे रहित शुद्ध ज्ञाता ब्रह्म कहाता है। वह शुद्ध ब्रह्म कार्यकारण रूप है। परन्तु माया सहित नहीं है। यह दर्शन दृश्य जगतको ब्रह्मका कार्य मानकर उसे भी शुद्ध ब्रह्म ही मानता है। यह जगत ईश्वरकी लीला है।

जीवोंको यह ब्रह्मका अंश मानते हैं, जैसे सोनेके रज। जीव नित्य है और अणुरूप ब्रह्मका अंश है।

सर्व दृश्य और अदृश्य जगतको शुद्ध ब्रह्म समझकर भक्ति द्वारा आत्म समर्पण करनेसे जीवकी मुक्ति हो जाती है।

(६-४) द्वैत—

इस द्वैतके प्रधान आचार्य मध्वाचार्य हैं। इस दर्शनके अनुसार दो तत्व है-एक स्वतन्त्र, दूसरा अस्वतन्त्र—

स्वतंत्रमस्वतंत्रं च द्विविधं तत्वमिष्यते।
स्वतंत्रो भगवानविष्णुर्निर्दोषोऽशेषसद्गुणः ॥

भावार्थ—दो तत्वोंमेसे स्वतन्त्र तत्व भगवान विष्णु दोष रहित व सर्व गुण सहित है।

अस्वतन्त्रतत्वमे भिन्न २ अनेक जीव है और जड है। जगतमें जीव, जड व विष्णु तीनों पदार्थोंको ये सत्य मानते हैं।

नोट—हिंदू-धर्ममीमांसा पुस्तकके आधारसे। हिंदूधर्मके ६ मुख्य दर्शनोंका कुछ हाल पाठकोंके ज्ञान हेतु बताया गया है।

शिष्य - छः दर्शनोंका कुछ हाल जाना। विशेष तो उनकी पुस्तकोंके पढ़नेसे ज्ञात होगा। यह तो बताइये कि निर्मोहोपनी भी क्या कोई हिन्दूमत है?

थियोसोफी।

शिक्षक—यह हिन्दु मतमें मान लिया गया है। परन्तु छः दर्शनोंसे मिलता नहीं है। क्योंकि इसका मत है कि एक मूल जड़ पदार्थ है, उसीसे उन्नति करते २ जीव होता है। वह जीव उन्नति करते २ मानव होता है। अनुभव प्राप्त करके फिर वह मुक्त होजाता है।

देखो पुस्तक-First Principles of Theosophy by C Jinarajdas M A 1921 Adyer Madras लिखा है—

The Great Nebula—It is a chastic mass of matter in its intensely heated condition millions and millions of miles in diameter It is a Vague cloudy mass full of energy It revolves into another Nebula Then solar system, then hydrozen, iron and others will be there They will enter into certain combinations and then will come the first appearance of life We shall have a protoplasm, first form of life, then it takes form of a vegetable Then animals and lastly man A soul once become human cannot reincarnate in animal or vegetable forms (p 42)

भावार्थ—एक बहुत बडा जड पिंड है जो बहुत ही उष्ण है। व करोडों मीलका उसका व्यास है। वह एक मेघ समूह सदृश शक्तियोंका समूह है। यह घूमते २ दूसरा समूह होकर फिर सूर्यका परिकर हो जाता है। फिर उसीसे हैड्रोजन वायु, लोहा व दूसरे पदार्थ होजाते है। फिर कुछ मिलाप होते २ प्रथम जीवनशक्ति प्रगट हो जाती है। इसको प्रोटोप्लैडम कहते हैं। इसीसे वनस्पतिकाय बनती है। फिर उन्नति करते २ वही पशु, फिर वही मनुष्य होजाता है।

आत्मा मनुष्यकी दशासे पशु या वनस्पतिकी अवस्थामें कभी नहीं गिरता। यह एक विकाशवादका सिद्धांत है। जडसे चेतन बन जाता है। यह बात ऊपर लिखित छ. दर्शनोंमें नहीं है। यह एक अनोखी बात है। जैन दर्शनसे तो बिल्कुल मिलती नहीं है। जडसे जड ही बन सकता है, चेतन नहीं। तथा जीवोंकी उन्नति तथा अवनति दोनों बातें सम्भव है। पशु भी मानव होसकता है तथा मानव भी अशुभ भावोंसे पाप बांधकर पशु हो सकता है।

शिष्यक—आर्यसमाजका बहुत प्रचार है। इसका जैन धर्मसे क्या अन्तर है?

आर्यसमाज।

शिक्षक—यह दर्शन बहुत अशसे नैयायिकसे मिलता है। यह ईश्वरको जगतका बनानेवाला कर्ता व सुख दुःखका फलदाता मानता है। मुक्ति होनेपर भी जीव अल्पज्ञ रहता है। वह परमात्माके समान नहीं होता है।

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९ मे नीचे लिखे वाक्यसे आप इनका मत समझ जांयगे। यह परमात्मा, जीव व प्रकृति तीन पदार्थोंको अनादि मानते है।

"मुक्तिमे जीव विद्यमान रहता है। जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमे मुक्त जीव विना रुकावटके विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है। (२५२ पृष्ठ)

"जीव मुक्ति पाकर पुनः ससारमे आता है।" (२५४–पृष्ठ)

"परमात्मा हमे मुक्तिमे आनन्द भुगाकर फिर पृथ्वीपर माता पिताके दर्शन कराता है।" (२५५ पृष्ठ)

"महाकल्पके पीछे फिर ससारमे आता है। जीवकी सामर्थ्य परिमित है। जीव अनन्त सुख नहीं भोग सकते।" (२५६ पृष्ठ)

"जीव अल्पज्ञ है।"

परमेश्वरके आधारम मुक्तिके आनन्दको जीवात्मा भोगता है। मुक्तिमें आत्मा निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सर्व सन्निहित पदार्थोंका ज्ञान यथावत् होता है।" (२६७ पृष्ठ)।

नोट - जैन दर्शनकी मान्यता है कि जीव स्वभावसे परमात्मारूप है। कर्म बन्ध छूटनेके पीछे यह स्वय परमात्मा हो जाता है। मुक्त होनेपर विना कारणके अशुद्ध नहीं हो सकता है।

ईसाई मत।

शिष्य—यह तो बतायें कि ईसाई मतसे भी जैन दर्शनकी कुछ बातें मिलती हैं?

शिक्षक—ईसाई मतकी न्यू टेस्टामेन्ट New Testament को मैंने पढा है जिसको सन् १९१६ मे British Foreign Bible society 146 Queen Victoria street London ने प्रकाश किया है। इसमे बहुतसे वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि यह जीव स्वय परमात्मापनेकी शक्ति रखता है तथा यह स्वय अपने पुरुषार्थसे पूर्ण परमात्मा बन सकता है। यह बात जैनसिद्धान्तसे मिलती है। इसको सूचित करनेवाले जो बाइबिलमे ईसाई साधुओंके वाक्य है वे नीचे दिये जाते है—

(१) सेन्ट मैथ्यू (St. Mathew) अध्याय सातवेंमे कहते हैं—

7-Ask, and it shall be given you, seek, and ye shall find, knock, and it shall be opened unto you

8-For every man that asketh receiveth and he that seeketh findeth, and to him that Knocketh it shall be opened

भावार्थ—इच्छा करो और तुम प्राप्तकर लोगे। खोजो और तुमको मिल जायगा। खटखटाओ और तुम्हारे लिये दरवाजा खुल जायगा, क्योंकि जो चाहता है वह पा सक्ता है जो खोजता है वह ले सकता है। जो खटखटायगा उसके लिये द्वार खुल जायगा। इसका भाव यही है कि मुक्ति तुम्हारे ही पास है, जो खोजता है वह पाता है। और अध्याय १९ उन्नीसवेंमे भी कहा है—

16-And behold, one came & said unto him Good Master, what good thing shall I do, that I may have eternal life

18-He said unto him which Jesus said "thow shalt do no murder thou shalt not commit adultory thou shalt not steal, thou shalt not bear false witness 19 Honour thy father & thy mother and thou shalt love thy neibour as thyself 21 Jesus said unto him, If thou wilt be perfect, go and sell that thou hast" and give to the poor and thou shalt have treasure in heaven and come and follow me

भावार्थ—और देखो, एक मानव आया और उनसे कहने लगा—अविनाशी जीवन पानेके लिये मैं क्या करूं ! तब जो कुछ ईसाने कहा

था वह उसने कहा। (१) हिंसा न करो, (२) व्यभिचार न करो, (३) चोरी न करो, (४) झूठी गवाही न दो, (५) अपने माता पिताका सन्मान करो, (६) अपने पडोसीको अपने समान समझकर प्यार करो। इसने उसको कहा था कि यदि तुम पूर्ण होना चाहते हो तो जाओ, जो कुछ तुम्हारे पास है उसको बेच डालो, गरीबोंको देदो, तुम्हे मुक्तिमे भण्डार प्राप्त होगा। आओ और मेरे साथ चलो।

(२) सेन्ट मार्क St mark ने कहा—

अध्याय १०—

17 What shall I do that I may inherit eternal live 18 and Jesus said unto him, why callest thou me good, there is none good but one God 19 Thou knowest the commandments Dont commit adaltory, dont kill, dont steal

भावार्थ—अविनाशी जीवनके लिये मैं क्या करू? तब ईसाने कहा कि तू मुझे क्यों उत्तम कहता है? परमात्माके सिवाय कोई श्रेष्ठ नहीं है। तू आज्ञाओंको जानता ही है कि व्यभिचार न करो, हिंसा न करो, चोरी न करो।

(१) सेन्ट ल्युक St Luke ने कहा है—

Ch 35-Take heed therefore that the light which is in thee be not darkness ch 12-29 And seek not ye what ye shall eat and what ye shall drink, neither be ye of doubtful mind

भावार्थ—खयाल रक्खो कि जो प्रकाश तुम्हारे भीतर है उसमें अन्धकार न आने पावे, (अज्ञानको न होनेदो) खानेपीनेकी चिन्ता न करो, न मनमे कोई शका रक्खो।

31 But rather seek ye the kingdon of God, and all these things shall be added unto you

किन्तु तुम मात्र परमात्माके राज्य या प्रांतिक स्वतन्त्रताकी खोज करो अन्य वस्तुएं अपने आप प्राप्त हो जायगी।

Ch 17-21—Neither shall they say, lo here and lo there; for behold, the kingdom of God is within you.

भावार्थ—वे यह न कहेंगे कि इधर देखो या उधर देखो, क्योंकि देखो, परमात्माका राज्य तुम्हारे भीतर ही है।

(४) सेन्ट जान St. John ने कहा है—

Ch 3-15—That whatsoever believeth in him should not perish, but have eternal life. Ch 4-14—But whatsoever drinketh of the water that I shall give him shall never thirst, but the water that I shall give him shall be in him a well of water springing up into ever-lasting life 21 God is a spirit and they that worship him must worship him in spirit and in truth Ch 6 27 Labour not for the meat which perisheth, but for that meat which endureth unto everlasting life Ch 8 32 and ye shall know the truth and the truth shall make you free Ch 10-30 I and my father are one

Ch 14-6 Jesus said unto him, I am the way, the truth and the life 10 Believest thou not that I am in the father and the father in me.

भावार्थ—जो कोई उसका (परमात्म स्वरूप आत्माका) विश्वास करता है वह नष्ट न होगा, किन्तु अविनाशी जीवन प्राप्त करेगा। जो कोई उस जल (आत्मानन्दरूपी जल) को पीएगा, जो मैं उसको दूंगा, सदाके लिये प्याससे मुक्त हो जायगा। किंतु वह मेरा दिया हुआ जल उसके भीतर नित्य जीवनके लिये एक जलका श्रोत हो जायगा (सदा ही आनन्द लाभ करेगा) परमात्मा आत्मा एक समान हैं। जो उस परमात्माकी भक्ति करें वे उसको अपनी आत्मामें और सत्यमें करें। उस आहारके लिये परिश्रम न करो जो नष्ट हो जायगा किन्तु उस आहार (आत्मानन्द) के लिये मिहनत करो जो नित्य जीवनमें बना रहेगा। तुम सत्यको जब पहचानोगे तब सत्य तुम्हें स्वाधीन कर देगा। मैं और मेरे पिता परमात्मा एक समान हैं। ईसाने उससे कहा—मैं ही मार्ग हूं, सत्य हूं, जीवन हूं, क्या तू विश्वास नहीं करता है कि मैं पिता में हूं और परमात्मा पिता मेरेमें हैं।

(4) **Corinthians**-Ch 3-16 Know ye not that ye are the temple of God and that the spirit of God dwelleth in you 17 If any man defile the temple of God, him shall God destory, for the temple of God is holy which temple ye are Ch 5-26—The last enemy that shall be destroyed is death. 50-Now this I say, brethren, that flesh and blood cannot inherit the kingdom of God 51—Behold we shall not all sleep, but we shall be changed

भावार्थ—कोरनिथियन्स—कहते हैं, क्या तुम नहीं जानते हो कि तुम ही परमात्माके मन्दिर हो। परमात्मा रूप ही आत्मा तुम्हारेमें है। यदि कोई आदमी इस परमात्माके मन्दिरको अपवित्र करेगा तो उसे परमात्मा नष्ट कर देगा (वह अपवित्र हो जायगा) क्योंकि परमात्माका मन्दिर पवित्र होना है और तुम ही वह मन्दिर हो।

अन्तिम शत्रु मौत है जिसे नष्ट करना होगा। ऐ भाइयो, मैं तुमसे कहता हूं, मांस व रक्त परमात्माके राज्यको नहीं ले सकते। वास्तवमें हम सब सोएंगे नहीं किन्तु बदल जावेंगे।

(6) **Cornithians** II Ch 2-17 Now the Lord is that spirit and where the spirit of the Lord is There is liberty. 18 But we all, with open face beholding as in a glass the glory of the Lord are changed into the same image from glory to glory, even by the spirit of the Lord Ch. 13-11 be perfect, be of good comfort, be of one mind, live in the peace and the God of love and peace shall be with you.

भावार्थ—कोरनिथियन्स-(२) कहते हैं, परमात्मा वही वह आत्मा है जहां परमात्मा रूप आत्मा है, वहीं स्वाधीनता है। किन्तु हम सब जब खुले हुए मुखमें दर्पणकी तरह परमात्माके ऐश्वर्यका दर्शन करते रहते हैं, उसी रूपमें बदल जाते हैं। परमात्मामई आत्माके द्वारा ज्योतिसे ज्योति रूप हो जाते हैं-पूर्ण हो, उत्तम सुखी हो, एकमन हो, शांतिमें रहो, प्रेम व शांतिमई परमात्मा तुम्हारे साथ रहेगा।

(7) G latians Ch 5-21—Envying, murder, drunkenness, etc that they which do such things shall not inherit the kirgdom of God 5 For every mass shall bear h s own burden.

गैलेशियन्स—कहते है-ईर्षा, हिसा, मद्यपानादि जो ऐसे काम करते है वे परमात्माके राज्यको नहीं प्राप्त कर सकते। क्योंकि हरएक मानवको अपना ही भार स्वयं सहना होगा।

शिष्य—इन वाक्योंसे तो यही सिद्ध होता है कि आत्मध्यान ही मोक्षका उपाय है व अहिसा ही धर्म है। यही बात जैन सिद्धांतने बताई है, फिर ईसाइयोंका ध्यान इस तत्वपर क्यों नहीं है ?

शिक्षक—जो ज्ञानी होंगे उनका ध्यान होसकता है परन्तु इनका विस्तारसे कथन नहीं है। जैनसिद्धान्त विस्तारसे बताता है। जैनसिद्धांतके जाननेसे इन बाइबिलके वाक्योंका यथार्थ अर्थ समझमें आएगा।

शिष्य—अहिंसा व मांसाहार त्यागके सम्बन्धमें कुछ बाईबलके वाक्य बताईये।

शिक्षक—सुनिये—

(1) St Mathew ch 7-12 Therefore all things whatsoever ye would that m n should do to you do you even so to them; for this is the law of the prophe's

भावार्थ—सेन्ट मैथ्यू कहते है-इसलिये जो कुछ चाहते हैं कि मानव तुम्हारे साथ जैसा वर्ताव करें तुम्हे भी उनके साथ ऐसा ही वर्ताव करना चाहिये। क्योंकि यह महान पुरुषोंका नियम है।

(2) Romans ch. 14--20 For meat destroy not the work of God All things indeed are pure, but it is evil for that man who eate h with offence 21 It is good neither to eat flesh, nor to drink wine, nor anything whereby the brother stumbleth or is offended or is made weak"

भावार्थ—रोमन्स कहते हैं-मांसके लिये परमात्माके कामको मत बिगाड़ो। सब वस्तुएं वास्तवमें पवित्र हैं। यह पाप है जो आपको हानि

पहुँचाकर भोजन करता है। यही उत्तम है कि कभी मांस मत खाओ, मदिरा न पिओ, न ऐसी चीज खाओ जिससे तेरा भाई दुःखी हो या निर्बल हो।

(3) **Heberws** ch 9--12 Neither by the blood of goats and calves, but by his own blood he entered atonce into the holy place, having obtained holy redemption Ch 10-4 For it is not possible that the blood of bull and of goats should take away sins

भावार्थ—हेबरयू कहते है—बकरों व बछडोंके रक्तसे नहीं किन्तु अपने ही परिश्रमसे पवित्र स्थानमे वह गया है। पवित्र मुक्तिको उसने प्राप्त कर लिया है। क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि बैलों और बकरोंका रुधिर पापोंको धो सकेगा।

(4) **James** ch 2-11 For he that said do not commit adultory, said also—dont kill Now if thou commit no adultory, yet if thou kill, thou art become a transgrassor of the law 26 For as the body without the spirit is dead, so faith without work is dead also

भावार्थ—जेम्स कहते है—उसने जैसे कहा है कि व्यभिचार न करो वैसे यह भी कहा है कि हिंसा मत करो। जो कोई व्यभिचार न करे किंतु हिंसा करे वह भी नियमका खण्डन करनेवाला होगा। जिस तरह आत्माके बिना शरीर मुरदा है, वैसे चारित्रके बिना श्रद्धान मुरदा है।

शिष्य—गुरुजी! तब तो यह जरूरी है कि ईसाई दुनियामें जैनधर्म फैलाया जावे। कर्तावाद तो बाइबलमे होगा ही।

शिक्षक—कर्तावाद तो बहुत थोडे वाक्योंमें है, मुख्य नहीं है। मुख्य बात बाइबलकी यही है कि अपनेको शुद्धात्माके ध्यानसे शुद्ध करो, पवित्र करो, तथा अहिंसाको पालो, किसीको कष्ट देकर भोजनपान न करो। मांस न खाओ। वास्तवमें जैनधर्मकी शिक्षाके प्रचारकी बहुत ही जरूरत है।

पारसी धर्म।

शिष्य—पारसियोंकी धर्मपुस्तकोंमें भी क्या कुछ समानता है?

शिक्षक—मैंने यह पुस्तक इंग्रेजीमें देखी है—

Gatha or hymns of Atharva Zarthustra by J N Chaterji M A and Ardeshar N Billimoria, Cherag office, Navsari Surat 1933

इससे यह बात सिद्ध होती है कि हरएक मानवको सुख, शांति तथा त्यागके लिये अपने आत्मामें तिष्ठनेका उद्यम करना चाहिये। तथा प्रेममई जीवन बिताना चाहिये। कुछ वाक्य बताये जाते हैं—

Ch 33 Gatha 9—Let absolute conscience. 6 Mazda give me that spirit, viz, Truth which is the ideal of all ideals for my guidance and for the attainment of vatitude Thereby I shall achieve realisation which way the soul inclines

Ch 33 G 10 On a/c of conscience, give us nonchalence, rectitude and Higher Soul

Ch 34 G 4—Now we would with rectitude adore yon Fire Ahura, which is resplendent, purest, strong, everdelightful and wonderfully beneficent

Ch 34 G 6—O Mazda, teach me the mark of the perfect ideal of life, so that with prayers and hymus for you I can proceed on the way to self realization

भावार्थ—हे परमात्मा! मेरी अन्तरंग विवेक बुद्धि मुझे वह सत्य बताव जो मेरी रक्षार्थ व शांतिके लाभार्थ सर्व सिद्धांतोंमें उत्तम सिद्धान्त है। इसीसे मैं आत्माको इष्ट जो स्वानुभव है, उसे प्राप्त करूंगा। विवेक बुद्धिके प्रतापसे हमें त्यागभाव, शांति व उच्चतर आत्माका भाव प्रदान कर अब हम शांतिसे तुम्हारी अग्नि (आत्मध्यानकी आग) को पूजेंगे। यह अग्नि ज्योतिमय है, परम पवित्र है, बलिष्ट है, सदा ही आनंदमय है और आश्चर्यकारक लाभकारी है।

हे परमात्मा! जीवनके पूर्ण सिद्धांतका चिह्न मुझे बता जिससे मैं तेरा भजन करता हुआ स्वात्मानुभवको प्राप्त कर सकूं।

Ch 48 G 3—Let me now learn the best of all lessons, that which is the secret wisdom and that which for the sake of Rectitude the holy wise beneficient Ahura teaches by the deed of conscience one becomes like you, O Mazda

भावार्थ—सब पाठोंसे उत्तम उपदेश अब मुझे सीखना चाहिये। यही गुप्त ज्ञान है। इसीको अहुरा पवित्र, ज्ञानमय, लाभदायक शांतिके लिये सिखाता है कि विवेकसे ही हरएक तेरे समान हो जाता है। ऐ परमात्मा!

शिष्य—यहां भी सुखशांतिका मार्ग स्वानुभवको ही बताया है। कृपाकर यह बताइये कि अहिंसा और मांसाहार त्यागके भी कुछ वाक्य पारसियोंकी धर्म पुस्तकमें हैं।

शिक्षक—सुनिये, कुछ वाक्य बताता हूं—

Zartusht—Namah P 495—He will not be acceptable to God who shall thus kill any animal Angel Asfundarmad says "O holy man, such is the command of God that the face of the earth be kept clean from blood filth and carrion Angel Amardad says about Vegetable "It is not right to destroy it uselessly or to remove it without purpose"

भावार्थ—इस तरह जो कोई किसी पशुका मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैगम्बर ऐसुकन्दरमदने कहा है—ए पवित्र मानव! परमात्माकी यह आज्ञा है कि पृथ्वीका मुख रुधिर, मैल तथा मांससे पवित्र रक्खा जावे। अमरदाद पैगम्बर वनस्पतिके लिये कहते हैं कि इसे वृथा नष्ट करना न चाहिये, न वृथा हटाना चाहिये।

शिष्य—पारसी धर्ममें भी अहिंसा व मांसाहार विरोधका सिद्धांत जानकर बड़ा हर्ष हुआ। अब आप यह बताइये कि मुसलमानोंके कुरानमें जैन धर्मसे मिलती क्या २ बातें हैं।

मुस्लिम धर्म।

शिक्षक—मैंने कुरानका इंग्रेजी उल्था पढा है, जिस पुस्तकका नाम है—

The Koran translate from the Actic by the Rev Jems Rodwell M A London 1924

उसमेंके कुछ वाक्य बताता हूं—

(59) S 38—Follow not thy passisons lest they couse thee to err f om the way of God

भावार्थ—अपने क्रोधादि कषायोंको वश करो, नहीं तो तुम परमात्माके मार्गसे पतित हो जाओगे।

(67) S 17—If ye do well, to your own behalf will ye do well and if ye do evil, against yourselves will ye do it verily this Koran guided to what is most upright, and it announ es to belıevers, who do the things that one right, that for them is a great reward and foes them who believe not in life to come we have got ready a painful pun shment (C N)

भावार्थ—यदि तुम भलाई करोगे तो अपने ही लिये भलाई करोगे। यदि तुम बुरा करोगे तो अपने हीके लिये बुरा करोगे। वास्तवमें यह कुरान बहुत ही भला मार्ग बताता है। यह कुरान श्रद्धालुओंको सूचित करता है कि जो भले काम करेंगे उनके लिये बड़ा इनाम मिलेगा परन्तु जो भावी जीवनका विश्वास न करेंगे उनको दुःखपूर्ण दण्ड मिलेगा।

Ob-erve prayer and say—Truth is come and falsehood is vanished

भक्ति प्रार्थना करो तब कहो कि सत्य आयगा, असत्य नाश होगया।

(82 S 31—O my son, observe prayer and enjoin the right and forbid the wrong, and be patient under whatever shall betide thee, for this is a bounded duty And distort not th face at men, nor walk there lottily on the earth, for God loveth no arrogant Vani—glorious one

भावार्थ—ऐ मेरे पुत्र! प्रार्थना पढ़ते रहो भले काम करो, बुरोंसे

बचो। जो दया हो उसमें सन्तोष मानो। यही नियमित कर्तव्य है। मानवोंपर घमड मुखसे न देखो, न पृथ्वीपर ऊचा मुख करके चलो, क्योंकि परमात्मा घमण्डी आदमीको प्यार नहीं करता है।

(86) S 35—And who ever shall keep himself pure, he purifieth himself to his own behalf, for unto God shall be the final gathering (10–20) Verily they who recite the book of God and observe prayer and give alms in public and in private from what we have bestowed upon them, may hope for a merchandize that shall not perish (20–30)

भावार्थ—जो कोई अपनेको पवित्र रखेगा वह अपने ही को पवित्र करता है। परमात्माके पास अन्तिम सबको एकत्र होना होगा। वास्तवमें जो परमात्माकी पुस्तक पढ़ेंगे, प्रार्थना करेंगे व जो कुछ हमने उनको दिया है, उसमेंसे सर्व साधारणको व गुप्त रीतिसे दान करेंगे उनको ऐसा सौदा मिलेगा जो कभी नष्ट नहीं होगा।

(69) S 6—May Lord embraceth all things in knowledge

भावार्थ—परमात्मा सर्व बातोंको जाननेवाला है।

113 (S 6)—Those who turn to God, and those who serve, who praise, who fast, who bow down, who protect themselves, who injoin what is just and forbid what is evil and keep to the bounds of God—wherfore bear these good tid'ngs to the faithful (110)

भावार्थ—जो परमात्मा परभक्तियुक्त है, जो सेवाधर्म पालते हैं, जो स्तुति करते है, उपवास करते है, झुकते है व स्वय दण्डवत करते हैं, जो कुछ न्याय है उसपर चलते हैं, बुराईका निषेध करते हैं, परमात्माकी मर्यादामे रहते हैं। ईमानदारोंको यही अच्छी खबर देना चाहिये।

शिष्य—इससे यद्यपि गूढ़ आत्मध्यानका पाठ नहीं झलकता है तथा भक्तिमार्ग व शुभ काम करनेकी प्रेरणा मिलती है तथा जीवन अमर प्रगट होता है। ऐसा भी भला काम है जिससे जीवन पवित्र व अमर होजायगा। अच्छा, यह तो बताइये कि अहिंसा व खानपान सम्बन्धमे क्या वाक्य है?

शिक्षक—सुनिये, कुछ वाक्य बताता हूं—

(18) S 90—Enjoin steadfastness on each other and enjoin compassion on each other

भावार्थ—हरएकके साथ स्थिरताके साथ वर्ताव करो, हरएक पर दया रक्खो।

(24) S 80—Let man look at his food It was we who rained down the copious rains, and caused the upgrowth of grain and grapes and healing herbs and the olive and the palm and enclosed gardens thick with trees, fruits and herbage for the service of yourselves and your cattle (20-40)

भावार्थ—मानवको अपने भोजनपर ध्यान देना चाहिये। हमने बहुत पानी बर्साया। अनाज, अंगूर, औषधिये, खजूर आदि उगवाए। उनके चारों तरफ वृक्षोंसे, फलोंसे व वनस्पतिसे घन भरे हुए बाग लगवाए, तुम्हारी और तुम्हारे पशुओंकी सेवाके लिये।

(54) S 50—And we send down the rain from heaven with its blessings, by which we cause gardens to spring forth and the grain of the harvest and the tall palm trees with date bearing branches one over the other for man's nourishment

भावार्थ—हमने आशीर्वादके साथ पानी बर्साया है जिससे बाग फल, अन्नकी फसल हो। लम्बे २ खजूरके वृक्ष खजूरोंसे भरे रहें। ये सब मानवके पोषणके लिये।

(55) S 20—He hath spread the earth as a bed and hath traced out paths for you therein and hath sent down rains from heaven and by it we bring forth the kinds of various herbs—eat ye and feed your cattle.

भावार्थ—उसने पृथ्वीको बिछौनेके समान बिछाया है। तुम्हारे लिये मार्गके चिह्न बताए हैं। पानी बर्साया है कि जिससे नाना प्रकारकी वनस्पति पैदा हो, तुम खाओ और अपने पशुओंको खिलाओ।

(94) S 23—Eat of things that are good and do what is right

भावार्थ जो अच्छे पदार्थ हैं उनको खाओ और जो कुछ उत्तम काम हैं उनको करो।

(67) S 17—Neither slay any one whom God hath forbidden you to obey unless for a just cause

भावार्थ—जिनको मैंने वध करनेसे मना किया है उनको मत मारो, सिवाय किसी न्याययुक्त कामके लिये।

(107) S 22—By no means can this flesh reach unto God, neither their blow, but peity on your part reacheth them

भावार्थ—किसी भी तरह बलि किये हुए ऊँटोंका मांस परमात्माके न पहुचता है न उनका रुधिर, परन्तु जो कुछ धर्म पालते हों वही वहां पहुचता है।

शिष्य—इनमें तो फलादि खानेकी आज्ञाए कही हैं, इनपर मानवोंको चलना चाहिये।

शिक्षक—ठीक है, जगतके मानव किसी कारणसे अपनी आदत जैसी बना लेते हैं वैसा चलते हैं। मानवका खाद्य आजकल मांसादि ही है। अब मैंने कुछ धर्मका विवेचन तुम्हारे हितके लिये किया है, उनपर नित्य मनन करो। और यह उपदेश लाभकारी हो तो दूसरोंको भी इसका लाभ देओ।

समाप्त।